मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

तृतीय सेमेस्टर

भारत का इतिहास: छठी सदी ईस्वी पूर्व से तृतीय सदी ईस्वी के मध्य तक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन-

ब्लाक एक

इकाई एक- मगध का उत्कर्ष, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महा.,हल्द्वानी।

इकाई दो- छठी सदी ईस्वी पूर्व के गणतन्त्र तथा उनकी प्रशासनिक प्रणाली, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी. स्नात. महा.,हल्द्वानी।

इकाई तीन- चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महा.,हल्द्वानी।

ब्लॉक दो

इकाई एक - अशोक, शिखा पंवार, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जे.एन.यू.नई दिल्ली

इकाई दो - मौर्य कालीन प्रशासन,स्थापत्य ,कला एवं मौर्य साम्राज्य का पतन, शिखा पंवार, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जे.एन.यू.नई दिल्ली

इकाई तीन - संगमकालीन दक्षिण भारत तथा संगम साहित्य,डॉ. बदरे आरा,इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

ब्लॉक तीन

इकाई एक - शुंग एवं कण्व वंश, डॉ. मोना राठौड़, इतिहास विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इकाई दो - आन्ध्र या सातवाहन वंश तथा दक्षिणापथ की राजनैतिक स्थिति, डॉ. मोना राठौड़, इतिहास विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इकाई तीन नौ -पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप,डॉ. बदरे आरा,इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

ब्लॉक चार

इकाई एक - कुषाणों का उदय, डॉ. राजेश गर्ग इतिहास विभाग, डी.ए.वी. स्नातकात्तर महाविद्यालय, बुलंदशहर

इकाई दो - कनिष्क प्रथम एवं उसकी उपलब्धियां,सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय, हल्द्वानी।

इकाई तीन - कुषाण साम्राज्य का विस्तार, डॉ. तनवीर,हुसैन,इतिहास विभाग,फैज-ए-आम कालेज,शाहजहांपुर

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

ब्लॉक एक

इकाई एक; मगध का उत्कर्ष

1.2 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.3 भौगोलिक स्थिति

1.4 खनिज पदार्थो की प्रचुरता

1.5 भौतिक समृद्धि

1.6 पाटलीपुत्र की सामरिक स्थिति

1.7 शहरों का उदय

1.8 सैन्य संगठन

1.9 मगध के शासकों का योगदान

1.10 मगध का प्राचीन इतिहास

1.11 मगध का स्वतंत्र वातावरण

1.12 मगध का प्रथम राजवंश–हर्यकं या शिशुनाग वंश

1.13 बिम्बिसार

1.14 अजातशत्रु

1.15 उदायिन या उदयभद्र

1.16 उदायिन के उत्तराधिकारी तथा हर्यक कुल का अन्त

1.17 शिशुनाग

1.18 कालाशोक (काकवर्ण)

1.19 नन्द वंश

1.20 इक्ष्वांकु

1.20.1 पांचाल

1.20.2 काशेय

1.20.3 हैहय

1.20.4 कलिंग

1.20.5 अश्मक

1.20.6 कुरू

1.20.7 मैथिल

1.20.8 शूरसेन

1.20.9 वीतिहोत्र

1.21 महापदमा नन्द के उत्तराधिकारी तथा नन्द सत्ता का विनाश

1.22 नन्द शासन का महत्व

1.23 सारांश

1.24 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.25 संदर्भ ग्रन्थ

1.2 प्रस्तावना

ई0पू0 छठी सदी की एक प्रमुख विशेषता भारत की आर्थिक सम्पन्नता और अनेक नगरों का निर्माण भी था। मगध कोशल अवन्ति व वत्स चार प्रमुख राज्य थे। इसके अतिरिक्त अनेक गणराज्य भी थे, पर इन सब में मगध का इतिहास बड़ा ही रोचक है। सोलह महाजनपदों में से यही राज्य ऐसा था जिसके राजनीतिक प्रभुत्व का लगातार विकास होता चला गया और देखते ही देखते मगध के इस छोटे राज्य ने एक साम्राज्य का कारूप धारण कर लिया। मौर्यो के काल में तो यह अपने शिखर तक पहुंच चुका था।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

- मगध का उत्कर्ष एवं उन्नति कैसे हुआ।
- मगध के उत्कर्ष में वहां कि भौगोलिक एवं प्राकृतिक सम्पदा का क्या योगदान रहा।
- मगध के उत्थान में हर्यक वंश, शिशुनाग वंश एवं नन्द वंश इत्यादि की क्या भूमिका रही।
- मगध के शासकों की नीतियाँ एवं कार्यशैली।
- मगध साम्राज्य के पतन के कारण।

मगध साम्राज्य की प्रगति के निम्न कारण थे–

1.3 भौगोलिक स्थिति

यह राज्य प्राकृतिक दृष्टि से काफी सुरक्षित था। इसकी पहली राजधानी गिरिव्रज या राजग्रह, चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई थी। अतः इन पर आसानी से दुश्मनों का आक्रमण नहीं हो सकता था। बाद की राजधानी पाटलीपुत्र गंगा और सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ था तथा इसके इर्दगिर्द अन्य नदियाँ भी थी। अतः इसे बाहरी आक्रमण का खतरा नहीं रहता था। इस प्रकार दुश्मनों के आक्रमण की चिन्ता से मुक्त होकर मगधवासी अपने विकास एवं प्रसार का निरन्तर प्रयास करते रहे।

1.4 खनिज पदार्थो की प्रचुरता

मगध में खनिज पदार्थो की प्रचुरता थी। यहां लोहा मिलता था, जिससे शुद्ध हथियार बनाए जाते थे, यह सुविधा अन्य राज्यों को प्राप्त नहीं थी। लोहे की खाने पूर्वी मध्य प्रदेश में भी थी जो अवन्ति की राजधानी उज्जैन के निकट थी। यही कारण था कि उत्तरी भारत में अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए मगध को अवन्ति के साथ दीर्घ कालीन संघर्ष करना पड़ा। उज्जैन को अपने अधीन लाने में मगध को लगभग सौ वर्ष लग गये।

1.5 भौतिक समृद्धि

यहां की भूमि अत्यन्त उर्वरा थी तथा उद्योग धन्धे विकसित थे। साम्राज्य आर्थिक दृष्टिकोण से काफी सम्पन्न था। राजाओं ने इस भौतिक सम्पन्नता का लाभ उठाया। वे कृषकों और व्यापारियों से कर वसूलने लगे जिसका उपयोग विशाल सेना खड़ी करने में किया गया।

1.6 पाटलीपुत्र की सामरिक स्थिति

पाँचवी शताब्दी में मगध की राजधानी पाटलीपुत्र थी। यह गंगा, गंडक और सोन के संगम पर बसी हुई थी। इससे इसका सामरिक महत्व काफी था। इसके पश्चिम में सोन, उत्तर में गंगा तथा पूर्व और दक्षिण में पुनपुन नदियाँ बहती थी। अतः पाटलीपुत्र पानी की नाव की तरह था और इस पर कब्जा करना कठिन था।

1.7 शहरों का उदय

मगध के राजाओं ने शहरों के उदय और सिक्कों के प्रचलन का भी लाभ उठाया। उत्तर–पूर्व भारत में व्यापार–व्यवसाय के कारण नए–नए शहरों का उदय हुआ। वहां व्यापारी कई विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए थे। उनसे चुंगी, तटकर शुल्क आदि लिए जाते थे। राजा इनका उपयोग सैन्य संगठन में करता था।

1.8 सैन्य संगठन

सैन्य संगठन में मगध को विशेष सुविधाऐं प्राप्त थी। भारतीय राज्यों को अश्व और रथ के उपयोग की जानकारी थी। मगध साम्राज्य की सेना एक प्रमुख अंग हस्ति सेना थी। अपने पड़ोसियों के साथ लड़ने में मगध साम्राज्य ने ही पहले–पहल बड़े पैमाने पर हाथियों का प्रयोग किया। मगध के पूर्वी भाग से हाथी की आपूर्ति होती थी। यूनानी स्रोतों के आधार पर हम जानते है कि नन्द की सेना में 6 हजार हाथी थे। दुर्गो या किलो को ध्वस्त करने में हाथी बड़े उपयोगी थे। दलदल भूमि या दुर्गम स्थानों में भी हाथी की सवारी सम्भव थी।

1.9 मगध के शासकों का योगदान

मगध के उत्थान में वहां के शासकों की भी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मगध में एक के बाद एक अनेक ऐसे शक्तिशाली शासक हुए जिन्होंने सैन्यबल और कूटनीति के आधार पर मगध की सीमा का विस्तार किया। मगध साम्राज्य की नींव बिम्बिसार और अजातशत्रु जैसे महान सेनानायकों और नीतिनिपुण शासकों ने डाली। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन शासकों ने उचित–अनुचित प्रत्येक प्रकार का मार्ग अपनाया। बाद में शिशुनाग और महापद्मानन्द जैसे प्रतापी शासकों ने भी मगध की सीमा का विस्तार किया।

1.10 मगध का प्राचीन इतिहास

हर्यक वंश के पहले मगध का इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं है। मगध का उल्लेख पहली बार अथर्ववेद में मिलता है। ऋग्वेद में यद्यपि मगध का उल्लेख नहीं मिलता तथापि कोकट (किराट) नामक जाति और इसके शासक प्रेमचन्द्र का उल्लेख मिलता है। इसकी पहचान मगध से की जाती है। मगध और व्रात्यों का उल्लेख वैदिक साहित्य में उपेक्षा और अवहेलना की दृष्टि से किया गया है। अथर्व संहिता के व्रात्य भाग में ब्राह्मण सीमा के बाहर रहने वाले व्रात्य को पुंश्चली या वेश्या और मगध से सम्बन्ध कहा गया है। वेदों में मगध के ब्राह्मणों को निम्न श्रेणी का माना गया है क्योंकि उनके संस्कार ब्राह्मण विधियों के अनुसार नहीं हुए थे, वैदिक साहित्य से मगध की इतिहास की स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। इसमें

प्रमगन्द के अतिरिक्त मगध के अन्य किसी शासक का उल्लेख नहीं हुआ है। मगध के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा महाभारत तथा पुराणों में मिलती है। इन ग्रन्थों के मुताबिक मगध के सबसे प्राचीन राजवंश का संस्थापक बृहद्रथ था। वह जरासंध का पिता एवं वसु वैश्य–उपरिचर का पुत्र था।

मगध की आरम्भिक राजधानी वसुमती या गिरिव्रज की स्थापना का श्रेय वसु को ही दिया जाता था। वृहद्रथ का पुत्र जरासंध एक पराक्रमी शासक था, जिसने अनेक राजाओं को पराजित किया। अन्ततोगत्वा उसे श्रीकृष्ण के हाथो पराजित होकर मरना पड़ा।

1.11 मगध का स्वतंत्र वातावरण

मगध का वातावरण अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र था। चूंकि इसे अनार्यो का देश माना जाता था। इसलिए यहां ब्रह्मण व्यवस्था का कट्टरपन नहीं था। अनार्य तत्वों की बहुलता के कारण आर्यो का प्रभाव यहां कम था। यहां के लोगों में प्रसार की प्रवृत्ति और उत्साह उन राज्यों की अपेक्षा अधिक थी। जो बहुत दिनों से आर्यो के प्रभाव में थे। इन बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों का एक परिणाम विभिन्न प्रादेशिक और लोकप्रिय भाषाओं का विकास भी था। संस्कृति उस समय तक श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों और पुरोहितों की भाषा बनकर रह गयी थी। इस कारण जन भाषाओं की आवश्यकता थी। इस कारण उस समय संस्कृत पर आधारित विभिन्न लोकप्रिय भाषाओं की उत्पत्ति हुई। संस्कृत का एक अधिक लोकप्रिय स्वरूप प्राकृत भाषा बनी। इसी कारण पाली और मगधी भाषा जिसमें महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश दिये, इस समय में विकसित और लोकप्रिय हुई। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव भारतीयों के धार्मिक विचारों पर आया। नवीन व्यापारी औद्योगिक मजदूर वर्ग तथा उपजातियों के निर्माण ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने वाली परिस्थितियों का निर्माण किया। नवीन जैन और बौद्ध धर्मो की उत्पत्ति और विकास का एक कारण बदलती हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ थी।

1.12 मगध का प्रथम राजवंश–हर्यक या शिशुनाग वंश

मगध साम्राज्य पर शासन करने वाले प्रथम राजवंश के विषय में पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थो में अलग–अलग विवरण मिलता है। पुराणों के अनुसार मगध पर सर्वप्रथम बृहद्रथ वंश का शासन था। इसी वंश का राजा जरासंध था। जिसने गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनाई थी। उसके बाद वहां प्रद्योत वंश का शासन स्थापित हुआ। प्रद्योत वंश का अन्त करके शिशुनाग ने अपने वंश की स्थापना की। शिशुनाग वंश के बाद नन्द वंश ने शासन किया।

1.13 बिम्बिसार

मगध साम्राज्य की महत्ता का वास्तविक संस्थापक राजा बिम्बिसार(544–492 ई0पू0) था। वह हर्यक कुल से सम्बन्धित था। हर्यक कुल के लोग नागवंश की एक उपशाखा थे। डी0आर0भण्डारकर का विचार है कि बिम्बिसार प्रारम्भ में लिच्छवियों का सेनापति था जो उस समय मगध में शासन करते थे। सुत्तनिपात में वैशाली को मगध पुरम कहा गया है। कालान्तर में वह मगध का स्वतंत्र शासक बन बैठा। परन्तु बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार बिम्बिसार जब 15 वर्ष का था तभी उसके पिता ने उसे मगध का राजा बनाया था। दीपवंश में बिम्बिसार के पिता का नाम बोधिस मिलता है। जो राजगृह का शासक था।

मत्स्य पुराण में उसका नाम क्षेत्रोजस दिया गया है। यह इस बात का सूचक है कि बिम्बिसार का पिता स्वयं राजा था। ऐसी स्थिति में उसका लिच्छवियों का सेनापति होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैन साहित्य में उसे श्रेविक कहा गया है। सम्भवतः यह उसका उपनाम था। जिस प्रकार अजातशत्रु का उपनाम कुणिक था।

बिम्बिसार एक महत्वकांक्षी शासक था। गद्दी पर बैठते ही उसने विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। वह एक कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी सम्राट था। सर्वप्रथम उसने अपने समय के प्रमुख राजवंशो में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ किया। इन वैवाहिक सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पहले उसने लिच्छवि गणराज्य के शासक चेटक की पुत्री चेलना (छलना) के साथ विवाह कर मगध की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। वैशाली व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र भी था। इसकी दक्षिणी सीमा से होकर गंगा नदी बहती थी और उसके जरिये यह कुछ सीमा तक पूर्वी भारत के जलीय व्यापार को नियन्त्रित किये हुए था। इस वैवाहिक सम्बन्ध ने परोक्ष रूप से मगध के आर्थिक विकास में भी योगदान दिया। विनयपिटक के अनुसार लिच्छवि लोग रात को मगध की राजधानी पर उत्तर की ओर से आक्रमण करके लूट–पाट करते थे। इस वैवाहिक सम्बन्ध से वे शान्त हो गये। दूसरा प्रमुख वैवाहिक सम्बन्ध कोशल राज्य में स्थापित हुआ। उसने कोशल नरेश प्रसेनजित की बहन महाकोशला के साथ विवाह किया। इस विवाह के फलस्वरूप उसका न केवल कोशलनरेश के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। अपितु दहेज में उसे एक लाख की वार्षिक आय का काशी का प्रान्त एवं उसके कुछ भाग भी प्राप्त हुए। इस सम्बन्ध में उसने मद्र देश (कुरन के समीप) वत्स की ओर से भी मगध को सुरक्षित बना दिया। क्योंकि कोशल तथा वत्स परस्पर मिले हुए थे। इसके बाद उसने मद्र देश की राजकुमारी क्षेमा के साथ अपना विवाह कर मद्रों का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त कर लिया। सम्भव है कुछ अन्य राजवंशों के साथ भी उसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया हो क्योंकि महावंश में उनकी 500 रानियों का उल्लेख हुआ है।

अवन्ति के शक्तिशाली राजा प्रद्योत के साथ भी उसने मैत्री संबंध स्थापित किया। एक बार जब वह पाण्डु रोग से ग्रसित था तो बिम्बिसार ने अपने राजवैध जीवक को उसके इलाज के लिए भेजा। रोरूक (सिंध) के शासक रूद्रायन तथा गान्धार के पुक्कुसाति भी उसके मित्र थे। गन्धार नरेश ने उनके पास एक दूत भेजा था। इस प्रकार उसके कूटनीतिज्ञ तथा वैवाहिक सम्बन्धों ने उसके द्वारा प्रारम्भ की गयी आक्रमण नीति में पर्याप्त सहायता प्रदान किया होगा।

विवाहों तथा मैत्री सम्बन्धों द्वारा अपनी आन्तरिक स्थिति मजबूत कर लेने के बाद उसने अपना विजय कार्य प्रारम्भ किया। इस विजय की प्रक्रिया में उसने अपने पड़ोसी राज्य अंग को जीतकर मगध साम्राज्य में मिला लिया। बिम्बिसार के पहले से ही मगध तथा अंग के बीच शत्रुता चल रही थी। ज्ञात होता है कि एक बार अंग के शासक ब्रह्मदत्त ने बिम्बिसार के पिता को युद्ध में पराजित किया था। विधुर पण्डित जातक से पता चलता है कि मगध की राजधानी राजगृह पर अंग का अधिकार था। अतः बिम्बिसार जैसे महत्वाकांक्षी शासक के लिए अंग की विजय करना अनिवार्य था। उसने अंग के ऊपर आक्रमण किया। वहाँ का राजा ब्रह्मदत्त मारा गया तथा वहीं बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को

उपराजा के पद पर नियुक्त किया। इस विजय से मगध के विजय तथा विस्तार का दौर प्रारम्भ हुआ। जो अशोक द्वारा कलिंग विजय के बाद तलवार रख देने के बाद समाप्त हुआ अंग के मगध में मिल जाने पर मगध की सीमा अत्यधिक विस्तृत हो गई और वह पूर्वी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन किया। मगध का लगभग सम्पूर्ण बिहार पर अधिकार हो गया। बुद्धघोस के अनुसार बिम्बिसार के साम्राज्य में 80 हजार गांव थे तथा उसका विस्तार लगभग 900 मील था। बिम्बिसार ने पहली बार मगध में व्यवस्थित शासन की नींव डाली। उसने सड़कों और नहरों का निर्माण कराया विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति की और नियमित रूप से लगान वसूल करने की व्यवस्था की जो उसकी आर्थिक और सैनिक शक्ति का आधार बना। बिम्बिसार के राज्य में 80,000 गांव बताये गये हैं और सभी सम्पन्न थे।

बिम्बिसार एक महान एवं योग्य शासक था। गांव का शासन ग्राम सभाए करती थी। उसने अपने साम्राज्य में एक संगठित एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था की नींव डाली। मगध शीघ्र ही एक समृद्धिशाली राज्य बन गया। बिम्बिसार शासन की विविध समस्याओं में व्यक्तिगत रूचि लेता था। महावंश जातक में कहा गया है कि उसकी राज्यसभा में 80 हजार ग्रामों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। उसकी राजसभा तथा ग्रामिकों के कार्यो के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। बौद्ध साहित्य में उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं। सब्बतथक महामात्त, बोहारिक महामात्त, सेनानायक महामात्त। इसके प्रथम सामान्य प्रशासन का दूसरा न्यायिक अधिकारी तथा तीसरा सेना का प्रधान अधिकारी होता था।

प्रान्तों में राजकुमार वाइसराय अर्थात उपराजा के पद पर नियुक्त किये जाते थे। बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को चम्पा का उपराजा बनाया था। वह अपने उत्तराधिकारियों तथा कर्मचारियों को उनके गुण–दोषों के आधार पर पुरस्कृत अथवा दण्डित किया करता था। वह एक निर्माता भी था और परम्परा के अनुसार उसने राजगृह नामक नवीन नगर की स्थापना करवाई थी। बिम्बिसार महात्मा बुद्ध का मित्र एवं संरक्षक था। विनय पिटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध से मिलने के बाद उसे बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया तथा वेलुवन नामक उद्यान बुद्ध तथा संघ के मिमित्त प्रदान कर दिया। किन्तु वह जैन तथा ब्राह्मण धर्मो के प्रति भी सहिष्णु बना रहा। जैन ग्रन्थ भी उसे अपने मत का पोषक मानते हैं। दीर्घनिकाय से पता चलता है कि बिम्बिसार ने चम्पा के प्रसिद्ध ब्राह्मण सोनदण्ड को वहां की सम्पूर्ण आमदनी दान में दे दी थी।

1.14 अजातशत्रु

बिम्बिसार के पश्चात उसका पुत्र ''कुणिक'' अथवा अजातशत्रु लगभग 492–460ई0पू0 मगध का शासक हुआ। वह अपने पिता के ही समान साम्राज्यवादी था। इसके समय में कोशल से मगध का संघर्ष छिड़ गया। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि बिम्बिसार की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी कोशला देवी की भी दुख से मृत्यु हो गयी। प्रसेनजित इस घटना से बड़ा क्रुद्ध हुआ तथा उसने काशी पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। यही कोशल तथा मगध के बीच संघर्ष का कारण सिद्ध हुआ। संयुक्त निकाय में इस दीर्घकालीन संघर्ष का विवरण मिलता है।

पहले युद्ध में प्रसेनजित पराजित हुआ तथा उसने भाग कर श्रावस्ती में शरण ली। किन्तु दूसरी बार अजातशत्रु पराजित हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। बाद में दोनों नरेशों के बीच सन्धि हो गई तथा प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया तथा पुनः काशी के ऊपर उसका अधिकार स्वीकर कर लिया। ऐसा लगता है कि अजातशत्रु के समय में काशी का प्रान्त अन्तिम रूप से मगध में मिला लिया गया। कोशल से निपटने के बाद अजातशत्रु ने वज्जि संघ की ओर ध्यान दिया। वैशाली, वज्जि संघ का प्रमुख केन्द्र था। जहां के शासक लिच्छवि थे। बिम्बिसार के ही समय से वज्जि संघ तथा मगध में मनमुटाव चल रहा था। जो अजातशत्रु के समय में संघर्ष में बदल गया। इस संघर्ष के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बताये जाते हैं।

सुमंगल विलासिनी से पता चलता है कि गंगा नदी के किनारे एक रत्नों की खान थी। वज्जि तथा मगध दोनों ने इसके बराबर–बराबर भाग लेने के लिए समझौता किया था। वज्जियों ने इस समझौते का उल्लंघन करके सम्पूर्ण खान पर अधिकार कर लिया। यही मगध के साथ युद्ध का कारण बना।

जैन ग्रन्थ इस कारण यह बताते हैं कि बिम्बिसार ने लिच्छवि राजकुमारी चेलना से उत्पन्न अपने दो पुत्रों हल्ल और बेहल्ल को अपनी हाथी सेशनाग तथा रत्नों का एक हार दिया था। अजातशत्रु ने बिम्बिसार की हत्या कर सिंहासन ग्रहण कर लेने के बाद इन वस्तुओं की मांग की। इस पर हल्ल तथा बेहल्ल अपने नाना चेटक के पास भाग गये। अजातशत्रु ने लिच्छवि सरदार से अपने सौतेले भाईयों को वापस देने को कहा। जिसे चेटक ने अस्वीकार कर दिया। इसी पर अजातशत्रु ने लिच्छवियों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इन दोनों कारणों में से पहला अधिक तर्क संगत जान पड़ता है। वस्तुतः मगध तथा वज्जि संघ के बीच संघर्ष के बीच संघर्ष गंगा नदी के ऊपर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए ही हुआ था। क्योंकि यह नदी पूर्वी उत्तर भारत में व्यापार का प्रमुख माध्यम थी।

लिच्छिवियों की शक्ति और प्रतिष्ठा काफी बढ़ी हुई थी तथा उन्हें परास्त कर सकना सरल नहीं था। जैन ग्रन्थ निरयावलि सूत्र से पता चलता है कि उस समय चेटक लिच्छिवि गण का प्रधान था। उसने 9 लिच्छिवियों 9 मल्लों तथा काशी कोशल के 18 गणराज्यों की एकत्र कर मगध नरेश के विरूद्ध एक सम्मिलित मोर्चा तैयार किया। भगवती सूत्र में अजातशत्रु को इन सबका विजेता कहा गया है। रायचौधरी का विचार है कि कोशल तथा वज्जि संघ के साथ संघर्ष पृथक–पृथक घटनायें नहीं थी। अपितु वे मगध साम्राज्य की प्रभुसत्ता के विरूद्ध लड़े जाने वाले समान युद्ध का ही अंग थी। अजातशत्रु ने कूटनीति से काम लिया। वज्जियों के सम्भावित आक्रमण से अपने राज्य की सूरक्षा के लिए सर्वप्रथम पाटलिग्राम में उसे एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया।

तत्पश्चात् अपने–अपने मंत्री वत्सकार को भेजकर वज्जि संघ में फूट डलवा दी। ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध में अजातशत्रु ने महात्मा बुद्ध से परामर्श किया तथा उन्होंने ही उसे यह बताया कि वज्जि संघ का विनाश भेद द्वारा ही संभव है। वत्सकार ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक इस कार्य को पूरा किया तथा वज्जियों को परस्पर लड़ा दिया। फलतः वे असंगठित रूप से अजातशत्रु का सामना नहीं कर सके। अजातशत्रु ने एक बड़ी सेना के साथ लिच्छवियों पर आक्रमण किया। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि

इस युद्ध में उसने प्रथम बार रथमूसल तथा महाशिला कण्टक जैसे दो गुप्त हथियारों का प्रयोग किया। प्रथम आधुनिक टैंको के प्रकार का कोई अस्त्र था। जिसमें भारी संख्या में मनुष्य मारे जा सकते थे तथा दूसरा मारी पत्थरों की मार करने वाले शिला प्रक्षेपास्त्र था।

इससे ऐसा लगता है कि युद्ध बड़ा भयानक हुआ, जिसमें लिच्छिवी बुरी तरह पराजित हुए तथा उनका भीषण संहार किया गया। उनका भू–भाग मगध साम्राज्य में मिला लिया गया। अब मगध राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक पहुँच गयी। वज्जि संघ को पराजित करने के बाद अजातशत्रु ने मल्ल संघ को भी परान्त किया तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक बड़े भूभाग पर उसका अबिधकार हो गया। इन सफलताओं के फलस्वरूप मगध साम्राज्य की सीमा पर्याप्त विस्तृत हो गई। अब मगध का प्रतिद्वन्दी केवल अवन्ति का राज्य था। मज्झिम निकाय से पता चलता है कि प्रद्योत के आक्रमण से अपनी राजधानी राजगृह को सुरक्षित रखने के लिये अजातशत्रु ने उसका दुर्गीकरण करवाया। जिस समय अजातशत्रु कोशल के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था उसी समय प्रद्योत मगध पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। किन्तु आजतशत्रु तथा प्रद्योत के बीच प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं हो सका। इसका कारण संभवतः यह था कि दोनों एक दूसरे की शक्ति से डरते थे। भास के अनुसार अजातशत्रु की कन्या पद्मावती का विवाह वत्सराज उदयन के साथ हुआ था।

इस वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अजातशत्रु ने वत्स को अपना मित्र बना लिया तथा अब उदयन मगध के विरूद्ध प्रद्योत की सहायता नहीं कर सकता था। ऐसा लगता है कि अब उदयन दोनों राज्यों अवन्ति तथा मगध के बीच सुलहकार बन गया। अजातशत्रु की धार्मिक नीति उदार थी। बौद्ध तथा जैन दोनों ही ग्रन्थ उसे अपने–अपने मत का अनुयायी मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले वह जैन धर्म से प्रभावित था परन्तु बाद में बौद्ध हो गया। भरहूत स्तूप की एक वेदिका के ऊपर अजातशत्रु भगवान बुद्ध की वन्दना करता है। (अजातशत्रु भगवतों बन्दते) उत्कीर्ण मिलता है। जो उसके बौद्ध होने का पुरातात्विक प्रमाण हैं उसके शासनकाल के आठवें वर्ष में बुद्ध को महापरिनिर्माण प्राप्त हुआ था। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके अवशेषों पर उसने राजगृह में स्तूप का निर्माण करवाया था। उसके शासन काल में राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया। इस संगीति में बुद्ध की शिक्षाओं को दो पिटकों सुत्तपिटक तथा विनय पिटक में विभाजित किया गया। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार लगभग 32 वर्षो तक शासन करने के बाद अजातशत्रु अपने पुत्र उदायिन द्वारा मार डाला गया।

1.15 उदायिन या उदयभद्र

अजातशत्रु के बाद उसका पुत्र उदायिन या उदयभद्र मगध का राजा हुआ। जैन ग्रन्थों में उसकी माता का नाम पदमावती मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में उसे पितृहन्ता कहा गया है। परन्तु जैन ग्रन्थों का साक्ष्य इसके विपरीत है। परिशिष्टपर्वन के अनुसार वह पितृ भक्त था। वह अपने पिता के शासनकाल में चम्पा का उपराजा था। पिता की मृत्यु से उसे बड़ा दुख हुआ तथा उसे कुलीनों और अमात्यों ने राजा बनाया। उदायिन के शासनकाल की सर्वप्रमुख घटना गंगा और सोन नदियों के संगम पर पाटलिपुत्र नामक नगर की स्थापना की है। उसने राजगृह से इसी स्थान पर अपनी राजधानी स्थानान्तरित की।

चूंकि अजातशत्रु की विजयों के फलस्वरूप मगध साम्राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक पहुंच गयी थी। अतः पाटलिपुत्र राजगृह की अपेक्षा अधिक उपयुक्त राजधानी थी।

यहां से वज्जियों के ऊपर भी दृष्टि रखी जा सकती थी तथा व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से भी यह नगर गंगा और सोन नदियों के संगम पर स्थित होने के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण था। बिम्बिसार के ही समय से अवन्ति का राज्य मगध का प्रतिद्वन्दी था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उदायिन के समय में भी मगध एवं अवन्ति के बीच निर्णायक युद्ध नहीं हो सका। उदायिन जैन मतानुयायी था। इसी कारण जैन ग्रन्थ उसकी प्रशंसा करते है। आवश्यक सूत्र से पता चलता है कि अपनी राजधानी के मध्य उसने एक जैन चैत्यगृह का निर्माण कराया था। वह नियमित रूप से व्रत करता था आचार्यों के उपदेश सुनता था। एक दिन जब वह किसी गुरू से उपदेश सुन रहा था। एक व्यक्ति ने छुरा भोंककर उसकी हत्या कर दी। यह हत्यारा अवन्ति नरेश पालक द्वारा नियुक्त कोई गुप्तचर था।

1.16 उदायिन के उत्तराधिकारी तथा हर्यक कुल का अन्त

बौद्ध ग्रन्थों में उदयिन के तीन पुत्रों का उल्लेख है– (1) अनिरूद्ध (2) मुंडक (3) नागदशक। इन तीनों को पितृहन्ता कहा गया है, जिन्होंने बारी–बारी से राज्य किया। अन्तिम राजा नागदशक कुछ प्रसिद्ध था। पुराण में उसे (दर्शक) कहा गया है। ये तीनों शासक अत्यन्त निर्बल एवं विलासी थे। अतः शासन तन्त्र शिथिल पड़ गया। चारों और षड़यन्त्र और हत्याये होने लगी। फलस्वरूप जनता में व्यापक असन्तोष छा गया। इनके शासन के विरूद्ध विद्रोह हुआ तथा जनता ने इन पितृहन्ताओं को सिंहासन से उतार कर शिशुनाग नामक एक योग्य अमात्य को राजा बनाया। शिशुनाग के राज्यारोहण से मगध में जिस नवीन वंश की स्थापना हुई वह शैशुनाग वंश के नाम से प्रसिद्ध है। उदायिन के उत्तराधिकारियों ने लगभग 412 ई0पूर्व तक राज्य किया।

1.17 शिशुनाग

शिशुनाग भी नाग वंश से ही सम्बन्धित था। महावंश टीका में उसे एक लिच्छवि राजा की वेश्या पत्नी में उत्पन्न कहा गया है। पुराण उसे क्षत्रिय कहते हैं पुराणों का कथन अधिक सही लगता है क्योंकि यदि वह वेश्या की सन्तान होता तो रूढ़िवादी ब्राह्मण उसे कभी भी राजा स्वीकार न करते तथा उसकी निन्दा भी करते। पुराणों के विवरण से ज्ञात होता है कि पांच प्रद्योत पुत्र 138 वर्षो तक शासन करेंगे। उन सब को मारकर शिशुनाग राजा होगा। अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाकर वह गिरिव्रज को प्रस्थान करेगा। इससे स्पष्ट है कि शिशुनाग ने अवन्ति राज्य को जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। सुधाकर चट्टोपाध्याय की धारणा है कि शिशुनाग अन्तिम हर्यक शासक नागदशक का प्रधान सेनापति था और इस प्रकार उसका सेना के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण था। उसने अवन्ति के ऊपर आक्रमण नागदशक के शासन काल में ही किया होगा तथा इसी के तत्काल बाद नागदशक को पदच्युत कर जनता ने उसे मगध का राज सिंहासन सौंप दिया होगा।

अवन्ति राज्य की विजय एक महान सफलता थी। इससे मगध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा मालवा तक जा पहुंची। इस विजय से शिशुनाग का वत्स के ऊपर भी अधिकार हो गया क्योंकि यह अवन्ति के अधीन था। आर्थिक दृष्टि से भी अवन्ति की विजय लाभदायक सिद्ध हुई। पाटलिपुत्र से एक व्यापारिक

मार्ग वत्स तथा अवन्ति होते हुए भड़ौच तक जाता था। वत्स तथा अवन्ति पर अधिकार होते हुए भड़ौच तक जाता था। वत्स तथा अवन्ति पर अधिकार हो जाने से पाटलिपुत्र को पश्चिमी विश्व के साथ व्यापार वाणिज्य के लिए एक नया मार्ग प्राप्त हो गया। इस प्रकार शिशुनाग की विजयों के फलस्वरूप मगध का राज्य एक विशाल साम्राज्य में बदल गया तथा उसके अन्तर्गत बंगाल की सीमा से लेकर मालवा तक का विस्तृत भू–भाग सम्मिलित हो गया उत्तर प्रदेश का एक बड़ा भाग भी उसके अधीन था। भण्डारकर का अनुमान है कि इस समय कोशल भी मगध की अधीनता में आ गया था। इस प्रकार अब मगध का उत्तर भारत में कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं बचा। मगध साम्राज्य में उत्तर भारत के वे सभी मनुष्य राजतन्त्र सम्मिलित हो गये जो बुद्ध के समय विद्यमान थे। इस प्रकार शिशुनाग एक शक्तिशाली राजा था। गिरीब्रज के अतिरिक्त वैशाली नगर को उसने अपनी दूसरी राजधानी बनाई थी। जो बाद में उसकी प्रधान राजधानी बन गई। ऐसा उसने सम्भवतः वज्जियों के ऊपर कठोर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से किया होगा।

1.18 कालाशोक (काकवर्ण)

शिशुनाग ने सम्भवतः 412 ईसापूर्व तक शासन किया महावंश के अनुसार उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र कालाशोक राजा बना। पुराणों में उसी को काकवर्ण कहा गया है। उसने अपनी राजधानी पुनः पाटलिपुत्र में स्थानान्तरित कर दिया। इस समय के बाद पाटलिपुत्र में ही मगध की राजधानी रही। कालाशोक के शासन काल में वैशाली में बौद्ध धर्म की दूसरी संगीति का आयोजन हुआ। इसमें बौद्ध संघ में विभेद उत्पन्न हो गया तथा वह स्पष्टतः दो सम्प्रदायों में बट गया। (1) स्थाविर (2) महासंघिका पराम्परागत नियमों में आस्था रखने वाले लोग स्थविर कहलाये तथा जिन लोगों ने बौद्ध संघ में कुछ नये नियमों को समाविष्ट कर लिया वे महासंघिक कहे गये। इन्हीं दोनों सम्प्रदायों से बाद में चलकर क्रमशः हीनयान और महायान की उत्पत्ति हुई।

बाणभट्ट के हर्षचरित से पता चलता है कि काकवर्ण की राजधानी के समीप घूमते हुए किसी व्यक्ति ने गले में छुरा भोंककर हत्या कर दी। यह राजहन्ता कोई दूसरा नहीं अपितु नंदवंश का पहला राजा महापदमानन्द ही था। कालाशोक ने सम्भवतः 366 ई0पू0 तक राज्य सम्मिलित रूप से 22 वर्षों तक राज्य किया। इसमें नन्दिवर्धन का नाम सबसे महत्वपूर्ण लगता है। पुराणों के अनुसार नन्दिवर्धन शिशुनाग वंश का अन्तिम राजा था। जिसका उत्तराधिकारी महानंदिन हुआ। ग्रेगर महोदय ने इन दोनों नामों को एक ही माना है। इस प्रकार नन्दिवर्धन अथवा महानन्दिन शैशुनाग वंश का अन्तिम शासक था। कालाशोक के उत्तराधिकारियों का शासन 344 ई0पू0 के लगभग समाप्त हो गया।

1.19 नन्द वंश

जिस व्यक्ति ने शिशुनाग वंश का अन्त कर नन्दवंश की स्थापना की वह निम्न वर्ग से सम्बन्धित था। उसका नाम विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न दिया गया है। पुराण उसे महापदमानन्द कहते है जबकि महाबोधि वंश में उसे उग्रसेन कहता है। भारतीय तथा विदेशी दोनों ही साक्ष्य नन्दों की शूद्र अथवा निम्न जातीय उत्पत्ति का स्पष्ट संकेत करते है। पुराणों के अनुसार महापदमानन्द शिशुनाग वंश के अन्तिम राजा महानन्दिन की शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। विष्णु पुराण में कहा गया है कि

महानन्दी की शूद्रा से उत्पन्न महापदमानन्द अत्यन्त लोभी तथा बलवान एवं दूसरे परशुराम के समान सभी क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा। जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन के अनुसार वह नापित पिता और वेश्या माता का पुत्र था। आवश्यक सूत्र उसे नापितदास (नाई का दास) कहता है। महावंश टीका में नन्दों को अज्ञात कुल का बताया गया है जो डाकुओं के गिरोह का मुखिया था। उसने अवसर पाकर मगध पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया।

जैन मत की पुष्टि विदेशी विवरणों से भी हो जाती है। यूनानी लेखक कर्टियस सिकन्दर के समकालीन मगध के नन्द सम्राट अग्रमीज यह संस्कृत के औग्रसेन अर्थात उग्रसेन का पुत्र का रूपान्तर है, के विषय में लिखते हुए बताता है कि उसका पिता जाति का नाई था। वह अपनी सुन्दरता के कारण रानी का प्रेम पात्र बन गया तथा उसके प्रभाव से राजा का विश्वास प्राप्त कर उसके अत्यन्त निकट पहुंच गया। उसने छल से राजा की हत्या कर दी तथा राजकुमारों के संरक्षण के बहाने कार्य करते हुए उसने राजगढ़ी हथिया ली। अन्ततः उसने राजकुमारी की भी हत्या कर दी तथा वर्तमान राजा का पिता हुआ। यहाँ कार्टियस ने जिस राजा की चर्चा की है वह नन्दवंश का संस्थापक महापदम नन्द ही था। महाबोधि वंश में कालाशोक के 10 पुत्रों का उल्लेख हुआ है। सम्भव है कि सभी अल्पवयस्यक रहे हो तथा महापदम नन्द उसका संरक्षक रहा हो।

डियोडोरस इससे कुछ भिन्न विवरण देता है। उसके अनुसार धनानन्द का नाई पिता सुन्दर स्वरूप का होने के कारण रानी का प्रेम पात्र बन गया। रानी ने अपने वृद्ध पति की हत्या कर दी तथा अपने प्रेमी को राजा बनाया। वर्तमान शासक उसी का उत्तराधिकारी था। इस प्रकार जहाँ कार्टियस अन्तिम शिशुनाग राजा का हत्यारा प्रथम नन्द शासक को बताता हैं वही डियोडोरस उसकी रानी पर हत्या का लांछन लगाता है। महाबोधिवंश में महापदम नन्द का नाम उग्रसेन मिलता है। उसका पुत्र धनानन्द सिकन्दर का समकालीन था। इस प्रकार नन्द वंश शुद्र अथवा निम्न वर्ण से सम्बन्धित था। पुराणों में विवरण से स्पष्ट है कि इस वंश का संस्थापक क्षत्रिय पिता (महानन्दी) तथा शूद्र माता की सन्तान था। मनुस्मृति में इस प्रकार से उत्पन्न सन्तान को 'अपसद' अर्थात निकृष्ट बताया गया है।

नन्दवंश में कुल 9 राजा हुए और इसी कारण उसे नवनन्द कहा जाता है। महाबोधिवंश में उनके नाम इस प्रकार मिलते है– (1) उग्रसेन (2) पण्डुक (3) पण्डुगति (4) भूतपाल (5) राष्ट्रपाल (6) गोविषाणक (7) दशसिद्धक (8) कैवत (9) धंग। इसमें प्रथम अर्थात उग्रसेन को ही पुराणों में महापद्म कहा गया है। शेष आठ उसी के पुत्र थे। महापदम नन्द अभी तक मगध के सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। उसकी विजयों के विषय में हमें पुराणों से विस्तृत सूचना प्राप्त होती है। उसके पास अतुल सम्पत्ति तथा असंख्य सेना थी। वह कलि का अंश सभी क्षत्रियों का नाश करने वाला दूसरे परशुराम का अवतार था जिसने अपने समय के सभी प्रमुख राजवंशों पर विजय की। उसने एकछत्र शासन की स्थापना किया तथा एकराष्ट्र की उपाधि ग्रहण की। उसके द्वारा उन्मूलित कुछ राजवंशों के नाम इस प्रकार मिलते हैं।

1.20 इक्ष्वाकु

इस वंश के लोग कोशल में शासन करते थे। वर्तमान अवध का क्षेत्र इस राज्य के अन्तर्गत था। महापदमा नन्द द्वारा कोशल विजय की पुष्टि सोमदेवकृत कथा सरितसागर से भी होती है। तद्नुसार अयोध्या के समीप नन्दों का एक सैनिक शिविर था।

1.20.1 पांचाल

इस राजवंश के लोग वर्तमान रूहेलखण्ड (बरेली–बदायूं– फरूर्खाबाद क्षेत्र) में शासन करते थे। ऐसा लगता है कि महापदम के पहले उनका मगध से कोई संघर्ष नहीं हुआ था।

1.20.2 काशेय

इससे तात्पर्य काशी के वंशजों से है। बिम्बिसार के समय से ही काशी मगध का एक प्रान्त था। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि जिस समय शिशुनाग ने गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनायी उसने अपने पुत्र को बनारस का उपराजा नियुक्त किया था। ऐसा लगता है कि इसी वंश के उत्तराधिकारी की हत्या कर महापदमनन्द ने काशी को प्राप्त किया।

1.20.3 हैहय

इस राजवंश के लोग नर्मदा नदी के एक भाग पर शासन करते थे उसकी राजधानी माहिष्मति थी।

1.20.4 कलिंग

यह राजवंश उड़ीसा प्रान्त में शासन करता था। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से पता चलता है कि किसी नन्द राजा ने कलिंग के एक भाग को जीता था।

1.20.5 अश्मक

इस वंश के लोग आन्ध्र प्रदेश की गोदावरी सरिता के तटपर शासन करते थे। आन्ध्र प्रदेश के निजामाबाद के समीप "नवनन्द देहरा" नामक एक नगर स्थित है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह इस प्रदेश में नन्दों के आधिपत्य का सूचक है। परन्तु इस विषय में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कर सकते।

1.20.6 कुरू

मेरठ, दिल्ली तथा थानेश्वर के भूभाग पर कुरू राजवंश का शासन था। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ में थी।

1.20.7 मैथिल

मैथिल लोग मिथिला के निवासी थे। मिथिला की पहचान नेपाल की सीमा में स्थित वर्तमान जनकपुर से की गयी है।

1.20.8 शूरसेन

आधुनिक ब्रजमंडल की भूमि पर शूरसेन राजवंश का शासन था। उसकी राजधानी मथुरा में थी।

1.20.9 वीतिहोत्र

पुराणों के अनुसार वीतिहोत्र लोग अवन्ति के प्रद्योतों तथा नर्मदा तटवर्ती हैहयों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे। सम्भवतः उनका राज्य इन्हीं दोनों के बीच स्थित रहा होगा।

पुराणों में उपर्युक्त सभी राज्यों के शासकों को समकालीन बताया गया है तथा विभिन्न राजवशों के शासन काल के विषय में भी सूचना मिलती है। तदनुसार इक्ष्वाकु ने चौबीस वर्ष, पांचाल ने सत्ताइस वर्ष, काशी ने चौबीस वर्ष, हैहय ने 28 वर्ष, कलिंग ने 32 वर्ष, अश्मक ने 25 वर्ष, कुरन ने 36 वर्ष,

मैथिल ने 28 वर्ष, शूरसेन ने 23 वर्ष तथा वीतिहोत्र ने 20 वर्ष तक शासन किया। भारतीय इतिहास में पहली बार एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हुई जिसकी सीमायें गंगाघाटी के मैदानों का अतिक्रमण कर गई। विन्ध्यापर्वत के दक्षिण में विजय वैजयन्ती फहराने वाला पहला मगध का शासक था। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से भी उसकी कलिंग विजय की पुष्टि होती है।

1.21 महापदमा नन्द के उत्तराधिकारी तथा नन्द सत्ता का विनाश

यद्यपि पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में महापदमनन्द के उत्तराधिकारियों की संख्या आठ मिलती हैं परन्तु उनके शासन काल के विषय में हमारा ज्ञान बहुत कम है। इस वंश के अन्तिम राजा धनानन्द था। जो सिकन्दर का समकालीन था। उसे यूनानी लेखकों ने अग्रभोज कहा है। यूनानी लेखकों के अनुसार उसके पास असीम सेना तथा अतुल सम्पत्ति थी। कार्टियस के अनुसार उसके पास 20 हजार अश्वरोही, 2 लाख पैदल, 2 हजार रथ तथा 3 हजार हाथी थे। जेनोकोन उसे बहुत धनाढ्य व्यक्ति बताता है। संस्कृत तमिल तथा सिंहली ग्रन्थों से भी उसकी अतुल सम्पत्ति की सूचना मिलती है। भद्दशाल उसका सेनापति था। उसका साम्राज्य बहुत विशाल था। जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिणापथ में कलिंग भी इसके अन्तर्गत था।

वह एक लोभी शासक था, जिसे धन संग्रह का शौक था। उसके धन तथा बलपूर्वक कर वसूलने की बौद्ध अनुश्रुति टर्नर ने इस प्रकार प्रस्तुत की है। सबसे छोटा भाई धनानन्द कहलाता था क्योंकि उसे धन बटोरने का व्यसन था। उसने 80 करोड़ धनराशि गंगा के भीतर एक पर्वत गुफा में छिपाकर रखी थी। एक सुरंग बनवाकर उसने वह धन वही गड़वा दिया। वस्तुओं के अतिरिक्त उसने पशुओं के चमड़े वृक्षों की गोंद तथा खानों की पत्थरों के ऊपर भी कर लगाकर अधिकाधिक धन संचित किया। एक तमिल परम्परा में इसका समर्थन करते हुए बताया गया है कि नन्द राजा के पास अतुल सम्पत्ति थी जिसको पाटलीपुत्र में उसने संचित किया तथा फिर गंगा की धारा में उसे छिपा दिया। अन्त में चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य ने धनानन्द की हत्या कर इस वंश का अन्त किया।

1.22 नन्द शासन का महत्व

चन्द्रगुप्त मौर्य एवं चाणक्य के सामूहिक प्रयास से एक शक्तिशाली राज्यवंश का अन्त हुआ। नन्द राजाओं का शासन काल भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अपना एक अलग महत्व रखता है। यह भारत के सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक दृष्टि से इसे निम्न वर्ग के उत्कर्ष का प्रतीक माना जा सकता है। उसका राजनैतिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि इस वंश के राजाओं ने उत्तर भारत में सर्वप्रथम एकछत्र शासन की स्थापना की। उन्होंने एक ऐसी सेना तैयार की थी जिसका उपयोग परवर्ती मगध राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने तथा भारतीय सीमा में अपने राज्य का विस्तार करने में किया। नन्द राजाओं के समय में मगध राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली तथा आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्धिशाली साम्राज्य बन गया था।

नन्दों की अतुल सम्पत्ति को देखते हुए यह अनुमान करना स्वभाविक है कि हिमालय पार के देशों के साथ उनका व्यापारिक संबंध था। साइबेरिया की ओर से वे स्वर्ण मंगवाते थे। जेनोफोन की साइरोपेडिया से पता चलता है कि भारत का एक शक्तिशाली राजा पश्चिमी एशियाई देशों के झगड़ों की मध्यस्थता करने की इच्छा रखता था। इस भारतीय शासक को अत्यन्त धनी व्यक्ति कहा गया है।

जिसका संकेत नन्दवंश के शासक धनानन्द की ओर ही है। सातवीं शदी के चीनी यात्री हुएनसांग ने भी नन्दों के अतुल सम्पत्ति की कहानी सुनी थी। उसके अनुसार पाटलिपुत्र में पांच स्तूप थे जो नन्द राजा के सात बहुमूल्य पदार्थो द्वारा संचित कोषागारों का प्रतिनिधित्व करते थे।

मगध की आर्थिक समृद्धि ने राजधानी पाटलिपुत्र को शिक्षा एवं साहित्य का प्रथम केन्द्र बना दिया। व्याकरणाचार्य पाणिनी महापदमनन्द के मित्र थे और उन्होंने पाटलिपुत्र में ही रहकर शिक्षा पाई थी। 34 वर्ष वरूरूचि कत्यायन जैसे विद्वान भी नन्द काल में ही उत्पन्न हुए थे।

नन्द शासक जैनमत के पोषक थे ताकि उन्होंने अपने शासन में कई जैन मंत्रियों को नियुक्त किया था। इनमें प्रथम मंत्री कल्पक था। जिसकी सहायता से महापदमनन्द ने समस्त क्षत्रियों का विनाश कर डाला था। धननन्द के जैन अमात्य शाकटाल तथा स्थूलभद्र थे। मुद्राराक्षस से भी नन्दों का जैन मतानुयायी होना सूचित होता है।

इस प्रकार नन्द राजाओं के काल में मगध साम्राज्य राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। बुद्धकालीन राजवन्तों में मगध ही अन्तगोत्वा सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न साम्राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। इसके लिए मगध शासकों की शक्ति के साथ ही साथ प्राकृतिक कारण भी कम सहायक नहीं थे। मगध की दोनों राजधानियों राजगृह तथा पाटलिपुत्र अत्यन्त सुरक्षित भौगोलिक स्थिति में थी। राजगृह पहाड़ियों से घिरी होने के कारण शत्रुओं द्वारा सुगमता से जीती नहीं जा सकती थी। इसी प्रकार पाटलिपुत्र नदियों से घिरी होने के कारण सुरक्षित थी।

1.23 सारांश

इस प्रकार पहाड़ों तथा नदियों ने तत्कालीन परिवेश में मगध की सुरक्षाभित्ति का कार्य किया था। समीपवर्ती वन प्रदेश से मगध के शासकों ने हाथियों को प्राप्त कर एक शक्तिशाली गज सेना का गठन किया। मगध क्षेत्र में कच्चा लोहा तथा तांबा जैसे खनिज पदार्थो की बहुलता थी। लोहे का समृद्ध भण्डार आसानी से उपलब्ध होने के कारण मगध के शासक अपने लिये अच्छे हथियार तैयार करा सके। जो उनके विरोधियों को सुलभ नही थे। ईसा पूर्व पांचवी शती से ही मगध पूर्वी भाग में उत्तरापथ के व्यापारिक मार्ग को नियन्त्रित करता था। मगध की इस आर्थिक समृद्धि ने ही साम्राज्यवाद के विकास में प्रमुख योगदान दिया। अजातशत्रु के काल में मगध का गंगा नदी के दोनों तट पर नियन्त्रण हो गया। यहां से कई व्यापारिक मार्ग होकर जाते थे। तक्षशिला से प्राप्त आहत सिक्कों से पता चलता है कि सिकन्दर के समय में मगध के सिक्के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में काफी प्रचलित थे। ईसा पूर्व0 5वीं शदी के अन्त तक मगध समस्त उत्तरापथ के व्यापार पर नियंत्रण कर लिया। अब मगध राजनैतिक एवं व्यापारिक शक्तिशाली राज्य के रूप अपनी पहचान बना चुका था।

1.24 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मगध के उत्कर्ष के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए।
2. मगध के उत्कर्ष में विभिन्न राजवशों के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. अजातशत्रु की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
4. शिशुनाग वंश पर टिप्पणी लिखिए?
5. मगध के उत्कर्ष में नन्द वंश के राजाओं की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?

6. बिम्बिसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

1.25 संदर्भ ग्रन्थ

1. के0सी0 श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो इलाहबाद 211002
2. एल0पी0शर्मा–प्राचीन भारत; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 282002
3. डॉ0 दीनानाथ वर्मा– प्राचीन भारत; ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली।
4. बी0एन0 लूनिया0– प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
5. विपिन बिहारी सिन्हा–भारत इतिहास–(प्राचीन काल से 1526 तक)–ज्ञानदा प्रकाशन दिल्ली।
6. झा एवं श्रीमाली– प्राचीन भारत का इतिहास। हिन्दी मा0का0नि0 दिल्ली।

इकाई दोः छठी सदी ई. पू. के गणतंत्र एवं उनकी प्रशासनिक प्रणाली

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अंग
2.4 मगध
2.5 वज्जि
2.6 काशी
2.7 कोशल
2.8 मल्ल
2.9 वत्स
2.10 चेदी
2.11 कुरू
2.12 पांचाल
2.13 मत्स्य
2.14 शूरसेन
2.15 अश्मक
2.16 अवन्ति
2.17 गन्धार
2.18 कम्बोज
2.19 छठी सदी ई. पू.
2.20 कपिल वस्तु के शाक्य
2.21 सुमसुमार पर्वत के भग्ग
2.22 अलकल्प के बुलि
2.23 केसपुत्त के कलाम
2.24 रामग्राम के कोलिय
2.25 कुशीनारा के मल्ल
2.26 पावा के मल्ल
2.27 पिप्लिवन के मोरिय
2.28 वैशाली की लिच्छवि
2.29 मिथिला का विदेह
2.30 गणराज्यों का विधान एवं शासन पद्धति
2.31 गणराज्यों का प्रधान
2.32 परिषद के कार्य विधि
2.33 न्याय व्यवस्था के गणतंत्र
2.34सामाजिक व्यवस्था
2.35 आर्थिक जीवन
2.36 धार्मिक अवस्था
2.37 सारांश
2.38 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.39 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

छठी सदी ई. पू. प्राचीन भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण समय माना जाता है। इसे भारतीय इतिहास के संक्रान्ति काल से भी सम्बोधित किया जाता है। इस समय भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। राजनीतिक क्षेत्र में उत्तर वैदिक काल से बड़े राज्यों की स्थापना की जो प्रवृति प्रारम्भ हुई थी वह इस समय तक काफी विकसित हो चुकी थी। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय के अनुसार उत्तर भारत में सोलह महाजनपद स्थापित हो चुके थे। इनमें अधिकतर राजतंत्रात्मक थे, परन्तु कुछ गणतंत्र राज्यों की चर्चा भी है। अंगुत्तर निकाय एवं जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र से इन गणतंत्रीय राज्यों की प्रशासनिक प्रणाली की जानकारी प्राप्त होती है। भारत के सांस्कृति इतिहास का प्रारम्भ अति प्राचीन काल में हुआ किन्तु उसके राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ अपेक्षाकृत बहुत बाद में हुआ। राजनैतिक इतिहास का मुख्य आधार सुनिश्चित तिथिक्रम होता है और इस दृष्टि से भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ हम ई. पू. सातवीं शदी के मध्य (650 ई. पू.) के पहले नहीं मान सकते। उत्तर वैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लोहे का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा था। लौह तकनीक ने लोगों के भौतिक जीवन में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर दिया तथा इसमें स्थाई जीवन–यापन की प्रवृति सुदृढ़ हो गयी। कृषि, उद्योग, व्यापार–वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय

व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे–छोटे जनों का स्थान जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक आते–जाते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बातें जान सकेंगे–

- छठी शताब्दी ई.पू. में भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थिति
- भारत के सोलह महाजनपदों की प्रशासनिक प्रणाली एवं गणतंत्रीय व्यवस्था
- गणराज्यों के प्रधान एवं परिषद की कार्य विधि
- सोलह महाजनपदों के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति
- गणतंत्रीय एवं प्रशासनिक प्रणाली में न्याय व्यवस्था

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का पूर्णतया अभाव था। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य यद्यपि उत्तर वैदिक कालीन राज्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली थे। तथापि इनमें से कोई भी देश राजनैतिक एकता के सूत्र में संगठित करने में समर्थ नहीं था। इस काल की राजनैतिक स्थिति का प्रामाणिक विवरण यद्यपि हमें किसी भी साहित्यिक साक्ष्य से उपलब्ध नहीं होता तथापि बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय से ज्ञात होता है कि महात्मा गौतम बुद्ध के उदय के कुछ पूर्व समस्त उत्तरी भारत 16 बड़े राज्यों में विभाजित था। इन्हें सोलह महाजनपद कहा गया है। अंगुत्तरनिकाय व भगवती सूत्र दोनों की सूचियों की तुलना करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि कुछ राज्यों के नाम जैसे–अंग, मगध, काशी, कोशल, वत्स, वज्जि, आदि दोनों में ही समान हैं। इतिहासकार हेमचन्द्र रायचौधरी का विचार है कि भगवती सूत्र की सूची में जिन राज्यों का नाम गिनाये है वे सुदूर–पूर्व तथा सुदूर दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति के सूचक हैं। उनका विस्तार यह सिद्ध करता है कि वे अंगुत्तर निकाय में उल्लिखित राज्यों के बाद के हैं। अतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व के पूर्वाद्ध में भारत की राजनैतिक स्थिति के ज्ञान के लिए हमें बौद्ध ग्रन्थ की सूची को ही प्रमाणिक मानना चाहिए।

अंगुत्तर निकाय में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ है वे बुद्ध के पहले विद्यमान थे, क्योंकि बुद्धकाल में काशी का राज्य कोशल में तथा अंग का राज्य मगध में मिला लिया गया था। सम्भवतः उस समय अश्मक भी अवन्ति द्वारा जीत लिया गया था। इसी प्रकार वज्जि का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि महाजनपद विदेह राजतंत्र के पतन के बाद (छठी शताब्दी ईसा पूर्ण के कुछ पूर्व) ही अस्तित्व में आये होंगे। इस प्रकार हम सोलह महाजनपदों को ईसा पूर्व छठी सदी के प्रथमार्द्ध में रख सकते हैं। अंगुत्तर निकाय की सूची में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ, इनमें दो प्रकार के राज्य थे।

1–राजतंत्र

2–गणतंत्र

राजतंत्र में राज्य का अध्यक्ष राजा होता था। इस प्रकार के राज्य थे, अंग, मगध, काशी, कोशल, चेदि, वत्स, कुरू, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गन्धार तथा कम्बोज, इनका वर्णन निम्न प्रकार है।

इन ग्रन्थों के अनुसार छठी सदी ई. पू. में निम्नलिखित राज्य थे।

2.3 अंग

उत्तरी बिहार के वर्तमान भागलपुर तथा मुंगेर के जिले अंग महाजनपद के अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी चम्पा थी। महाभारत तथा पुराणों में चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' प्राप्त होता है। बुद्ध के समय तक चम्पा की गणना भारत के छः महानगरों में की जाती थी। दोहा निकाय के अनुसार इस नगर के निर्माण की योजना सुप्रसिद्ध वास्तुकार महागोविन्द ने प्रस्तुत की थी। महापरिनिर्वाण सूत्र में चम्पा के अतिरिक्त अन्य पाँच महानगरियों के नाम राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा बनारस दिये गये हैं। प्राचीन काल में चम्पा नगर वैभव तथा व्यापार वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध थी। अंग, मगध का पड़ोसी राज्य था। जिस प्रकार काशी तथा कोशल में प्रभुसत्ता के लिए संघर्ष चल रहा था उसी प्रकार अंग तथा मगध के बीच भी दीर्घकालीन संघर्ष चला। अंग के शासक ब्रहमदत्त ने मगध के राजा भट्टिय को पहले पराजित कर मगध राज्य के कुछ भाग को जीत लिया था किन्तु बाद में अंग का राज्य मगध में मिला लिया गया।

2.4 मगध

यह दक्षिणी बिहार में स्थित था वर्तमान पटना और गया जिले इसमें सम्मिलित थे। कालान्तर में यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया। मगध तथा अंग एक दूसरे के पड़ोसी राज्य तथा दोनों को पृथक करती हुई चम्पा नदी बहती थी। इस महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विन्ध्यापर्वत तक तथा पूर्व में चम्पा से पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थी। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह अथवा गिरिव्रज थी। यह नगर पाँच पहाड़ियों के बीच में स्थित था। नगर के चारों ओर पत्थर की सुदृढ़ प्राचीर बनवायी गयी थी। कालान्तर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई।

2.5 वज्जि

यह आठ राज्यों का एक संघ था। इसमें वज्जि के अतिरिक्त वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह तथा कुण्डग्राम के ज्ञातृक विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। वैशाली उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित आधुनिक बसाढ़ है। मिथिला की पहचान नेपाल सीमा में स्थित जनकपुर नामक नगर से की जाती है। यहाँ पहले राजंतत्र था परन्तु बाद में गणतंत्र स्थापित हो गया। कुंडग्राम वैशाली के समीप ही स्थित था। यदु के समय में यह एक शक्तिशाली संध था।

2.6 काशी

वर्तमान वाराणासी तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र ही प्राचीन काल में काशी महाजनपद था। उत्तर में वरूणा तथा दक्षिण में असी नदियों से घिरी हुई वाराणसी नगरी इस महाजनपद की राजधानी थी। सोननन्द जातक से ज्ञात होता है कि मगध, कोशल तथा अंग के ऊपर काशी का अधिकार था। जातक ग्रन्थों से पता चलता है कि इस राज्य का विस्तार तीन सौ लीग था और यह महान समृद्धिशाली तथा साधन–सम्पन्न राज्य था। काशी तथा कोशल के बीच दीर्घकालीन संघर्ष का विवरण बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यहाँ का सबसे शक्तिशाली राजा ब्रहमदत्त था जिसने कोशल के ऊपर विजय प्राप्त की थी। किन्तु अन्तगोत्वा कोशल के राजा कंस ने काशी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

2.7 कोशल

वर्तमान अवध का क्षेत्र प्राचीन काल में कोशल महाजनपद का निर्माण करता था। यह उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में सई नदी तथा पश्चिम में पांचाल से लेकर पूर्व में गण्डक नदी तक फैला हुआ था। कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। इसके अन्य प्रमुख नगर अयोध्या तथा साकेत थे। रामायण कालीन कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या थी। बुद्ध काल में कोशल राज्य के दो भाग हो गये। उत्तरी भाग की राजधानी साकेत तथा दक्षिणी भाग की राजधानी श्रावस्ती में स्थापित हुई। साकेत का ही दूसरा नाम अयोध्या था।

2.8 मल्ल

पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में मल्ल महाजनपद स्थित था। वज्जि संघ के समान यह भी एक संघ गण राज्य था जिसमें पावा (पडरौना) तथा कुशीनारा (कसया) के मल्लों की शाखाएँ सम्मिलित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विदेह राज्य की ही भाँति मल्ल राज्य भी प्रारम्भ में एक राजतंत्र के रूप में संगठित था। कुस जातक में ओक्काक को वहीं का राजा बताया गया है। कालान्तर में उनका एक संघ बन गया। बुद्ध के समय तक उनका स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा।

2.9 वत्स

आधुनिक इलाहाबाद तथा बांदा के जिले प्राचीन काल में वत्स महाजनपद का निर्माण करते थे। इसकी राजधानी यमुना नदी के किनारे स्थित है। विष्णु पुराण से पता चलता है कि हस्तिनापुर के राज निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा प्रवाह में बह जाने के बाद कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। बुद्धकाल में यहाँ पौरववंश का शासन था जिसका शासक उदयन था। पुराणों के अनुसार उसके पिता परंतप ने अंग की राजधानी चम्पा को जीता था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा कौशाम्बी में विस्तृत खुदाइयाँ की गयी हैं जिनसे पता चलता है कि ई.पू. बारहवीं शदी के मध्य से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी तक यहाँ बस्ती बनी हुई थी। श्रेष्ठि घोषित द्वारा निर्मित बिहार तथा उदयन के राजप्रसाद के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।

2.10 चेदि या चेति

आधुनिक बुन्देलखण्ड के पूर्वी तथा उसके समीपवर्ती भागों में प्राचीन काल का चेदि महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी जिसकी पहचान महाभारत के शुक्तिमती से की जाती है। महाभारत काल में यहाँ का शासक शिशुपाल था जिसका बध कृष्ण द्वारा किया गया। चेतिय जातक में यहाँ के एक राजा का नाम उपचर मिलता है।

2.11 कुरू

मेरठ, दिल्ली तथा थानेश्वर के भू–भागों में कुरू महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। महाभारतकालीन हस्तिनापुर का नगर भी इसी राज्य में स्थित था। जातक, ग्रन्थों के अनुसार इस नगर की परिधि दो हजार मील के लगभग थी। बुद्ध के समय यहाँ का राज कोख्य था। कुरू के लोग प्राचीन समय से ही अपनी बुद्धि एवं बल के लिए प्रसिद्ध थे। पहले कुरू एक राजतंत्रात्मक राज्य था किन्तु कालान्तर में यहाँ गणतंत्र की स्थापना हुई।

2.12 पांचाल

आधुनिक रूहेलखण्ड के बरेली बदायूँ तथा फरूखाबाद के जिले से मिलकर प्राचीन पांचाल महाजनपद बनता था। प्रारम्भ में इसके दो भाग थे।

1–उत्तरी पांचाल, जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी तथा दक्षिणी पांचाल जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी। कान्यकुब्ज का प्रसिद्ध नगर इसी राज्य में स्थित था। छठी शताब्दी ई.पू. कुरू तथा पांचाल का एक संघ राज्य था।

2.13 मत्स्य (मच्छ)

राजस्थान प्रान्त के जयपुर क्षेत्र में मत्स्य महाजनपद बसा हुआ था। इसके अर्न्तगत वर्तमान अलवर का सम्पूर्ण भाग तथा भरतपुर का एक भाग भी सम्मिलित था। यहाँ की राजधानी विराटनगर थी जिसकी स्थापना विराट नामक राजा ने की थी। बुद्धकाल में इस राज्य का कोई राजनैतिक महत्व नहीं था।

2.14 शूरसेन

आधुनिक ब्रजमण्डल क्षेत्र में यह महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखक इस राज्य को शूरसेनोई तथा इसकी राजधानी को मथुरा कहते थे। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था। कृष्ण यहाँ के राजा थे। बुद्धकाल में यहाँ का राजा अवन्तिपुत्र था जो बुद्ध का सर्वप्रथम शिष्य था। उसी की सहायता से मथुरा में बौद्ध धर्म का प्रचार संभव हुआ। मज्झिम निकाय से पता चलता है कि अवन्तिपुत्र का जन्म अवन्ति नरेश प्रद्योत की कन्या से हुआ था।

2.15 अश्मक (अस्मक या अश्वक)

गोदावरी नदी (आन्द्रप्रदेश) के तट पर अश्मक महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी पोतन या पोटिल थी। महाजनपद में केवल अश्मक ही दक्षिण भारत में स्थित था। पुराणों से पता चलता है कि अश्मक के राजतंत्र की स्थापना ईक्ष्वाकुवंशी शासकों ने किया था। चुल्लकलिंग जातक से पता चलता है कि अस्सक के राजा आरूण ने कलिंग के राजा को जीता था। महात्मा बुद्ध के पूर्व अश्मक का अवन्ति के साथ निरन्तर संघर्ष चल रहा था तथा बुद्ध काल में अवन्ति ने इसे जीतकर अपनी सीमा के अर्न्तगत समाहित कर लिया था।

2.16 अवन्ति

पश्चिमी तथा मध्य मालवा के क्षेत्र से पता चलता है कि यहाँ अवन्ति महाजनपद बसा हुआ था। इसके दो भाग थे, उत्तरी अवन्ति जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी तथा दक्षिणी अवन्ति जिसकी राजधानी भी उज्जयिनी ही थी। जहाँ का राजा प्रद्योत था। उज्जयिनी का पहचान मध्यप्रदेश के आधुनिक उज्जैन नगर से की जाती है। राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से उज्जयिनी प्राचीन भारत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ लोहे की खानें थी तथा लुहार इस्पात के उत्कृष्ट अस्त्र–शस्त्र निर्मित कर लेते थे। इस कारण यह राज्य सैनिक दृष्टि से अत्यन्त सबल हो गया। यह बौद्ध धर्म का भी प्रमुख केन्द्र था जहाँ कुछ प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।

2.17 गन्धार

वर्तमान पाकिस्तान के पेशावर तथा रावलपिंडी जिलों की भूमि पर गन्धार महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी तक्षशिला में थी। रामायण से पता चलता है कि इस नगर की स्थापना भरत के पुत्र तक्ष ने की थी। इस जनपद का दूसरा प्रमुख नगर पुढ़कलावती था। तक्षशिला प्रमुख व्यापारिक नगर होने के साथ–साथ शिक्षा का भी प्रसिद्ध केन्द्र था। छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य में यहाँ पुकुसाति अथवा पुढकरसारिन नामक राजा राज्य कर रहा था। उसने मगधराज बिम्बिसार के दरबार में अपना एक दूतमण्डल भेजा था। और इस प्रकार गन्धार तथा मगध राज्यों के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। पुकुसाति ने अवन्ति के ऊपर आक्रमण कर वहाँ के राजा प्रद्योत को पराजित किया था।

2.18 कम्बोज

दक्षिणी–पश्चिमी कश्मीर तथा काफिरिस्तान के भाग को मिलाकर प्राचीन काल में कम्बोज महाजनपद बना था। इसकी राजधानी राजपुर अथवा हाटक थी। यह गन्धार का पड़ोसी राज्य था। कालान्तर में यहाँ राजतंत्र के स्थान पर संघ राज्य स्थापित हो गया। कौटिल्य ने कम्बोजों को वार्ताशास्त्रोपजीवी संघ अर्थात कृषि पशुपालक, वाणिज्य तथा शस्त्र द्वारा जीविका चलाने वाला कहा है। प्राचीन समय में कम्बोज जनपद अपने श्रेष्ठ घोड़ों के लिए विख्यात था। इस प्रकार छठी शताब्दी ई.पू. के प्रारम्भ में उत्तर–भारत विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन के दृश्य उपस्थित कर रहा था। जिन सोलह महाजनपदों के नाम ऊपर गिनाए गये हैं। उनमें पारस्परिक संघर्ष, विद्वेष एवं घृणा का वातावरण व्याप्त था। काशी और कोशल के राज्य एक दूसरे के शत्रु थे। प्रारम्भ में काशी विजयी रहा, परन्तु अन्ततोगत्वा वह कोशल की विस्तारवादी नीति का शिकार बना। इसी प्रकार अंग, मगध, तथा अवन्ति और अश्मक भी परस्पर संघर्ष में उलझे हुए थे। गणराज्यों का अस्तित्व राजतंत्रों के लिए असाध्य हो रहा था। प्रत्येक राज्य अपने पड़ोसी की स्वतंत्र सत्ता को समाप्त करने पर तुला हुआ था। अन्य जनपदों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं रही होगी।

2.19 छठी सदी ई. पू. के गणतंत्र

प्रारम्भ में अधिकांश इतिहासकारों की धारणा थी कि प्राचीन भारत में केवल राजतंत्र ही थे परन्तु बाद के खोजों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि प्राचीन भारत में राजतंत्रों के साथ–साथ गण अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था। सर्वप्रथम 1903 में रिज डेविड्स ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती देने के लिए गणराज्यों की खोज की थी। प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों को गणतंत्र से भिन्न बताया गया है। अवदान शतक से पता चलता है कि मध्य प्रदेश के कुछ व्यापारी दक्षिण गये जहाँ के लोगों ने उनसे उत्तर भारत की शासन व्यवस्था के विषय में पूछा! उत्तर में उन्होंने बताया कि कुछ देश गणों के अधीन है तथा कुछ राजाओं के अचारंगसूत्र जैन भिक्षु को चेतावनी देता है कि उसे उस स्थान में ही नहीं जाना चाहिए जहाँ गणतंत्र का शासन हो।

संघ गण का पर्यायवाची था। पाणिनी ने संघ को राजतंत्र से स्पष्टतः भिन्न बताया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दो प्रकार के संघ राज्यों का उल्लेख मिलता है। प्रथम के अर्न्तगत कम्बोज, सुराष्ट्र आदि और दूसरे के अन्तर्गत लच्छिवि वज्जि, मल्ल, भद्र, कुकुर, पांचाल आदि की गणना की गयी है। स्पस्टतः यहाँ राजशब्दोपीवजी संघ से तात्पर्य उन गणराज्यों से ही है जो राजा की उपाधि का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। भारतीय साहित्य के अतिरिक्त यूनानी

रोमन लेखकों के विवरण से भी प्राचीन भारत में गणराज्यों का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। इससे सूचित होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब तथा सिंध मे कई गणराज्य थे जो राजतंत्रों से भिन्न थे। मुद्रा सम्बन्धी प्रमाणों से भी गणराज्यों का अस्तित्व सिद्ध होता है। मालव, यौद्येय, अर्जुनायन आदि अनेक गणराज्यों के सिक्के का उल्लेख न कर गण का ही उल्लेख करते हैं। इस प्रकार अब यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे तथा वे राजतंत्रों से इस अर्थ में भिन्न थे कि उनका शासन किसी वंशानुगत राजा के हाथ में न होकर गण अथवा संघ के हाथ में होता था। परन्तु प्राचीन भारत के गणतंत्र आाधुनिक काल के गणतंत्र से भिन्न थे। आधुनिक काल में गणतंत्र प्रजातंत्र का समानार्थी है जिसमें शासन की अन्तिम शक्ति जनता के हाथों निहित रहती है। प्राचीन भारत में गणतंत्र इस अर्थ में गणतंत्र नहीं कहे जा सकते है। उन्हें हम आधुनिक शब्दावली में कुलीनतंत्र अथवा अभिजातंत्र कह सकते हैं जिसमें शासन का संचालन सम्पूर्ण प्रजा द्वारा न होकर किसी कुल विशेष के सम्मुख व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। उदाहरण के लिए यदि हम वैशाली के लिच्छवि गणराज्य का नाम लेते हैं तो हमें यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वहाँ के शासन में वैशाली नगर की सम्पूर्ण जनता भाग लेती थी। बल्कि तथ्य यह है कि केवल लिच्छवि कुल के ही प्रमुख व्यक्ति मिलकर शासन प्रणाली चलाते थे। बुद्धकाल में गंगाघाटी में कई गणराज्यों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जो इस प्रकार हैं।

2.20 कपिलवस्तु के शाक्य

यह गणराज्य नेपाल की तराई में स्थित था। जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्य गणराज्य के उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में रोहिणी नदी तथा दक्षिण और पश्चिम में राप्ती नदी स्थित थी। कपिलवस्तु की पहचान नेपाल में स्थित आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। कुछ विद्वान इसकी पहचान सिद्धार्थनगर जिले के पिपरहवा नामक स्थान से करते हैं। जहाँ के बौद्ध स्तूप तथा उसकी धातु गर्भ–मंजूषा के अवशेष प्राप्त किये गये हैं। इसे शाक्यवंशीय सुकीर्ति ने प्रतिस्थापित करवाया था। कपिलवस्तु के अतिरिक्त इस गणराज्य में अन्य अनेक नगर थे। चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, नगरक, देवदह, सक्कर आदि। बुद्ध के माता देवदह की ही कन्या थी। शाक्य गणराज्य में लगभग 80 हजार परिवार थे। शाक्य लोग अपने रक्त पर बड़ा अभिमान करते थे और इसी कारण वे अपनी जाति के बाहर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करते थे। गौतम बुद्ध का जन्म इसी गणराज्य में हुआ था। बुद्ध से सम्बन्धित होने के कारण इस गणराज्य का महत्व काफी बढ़ गया किन्तु राजनैतिक शक्ति के रूप में शाक्य गणराज्य का कोई महत्व नहीं था और यह कोशल राज्य की अधीनता स्वीकार करता था। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है। इस राज्य का विनाश कोशल नरेश विडूडश द्वारा किया गया। शाक्य लोगों का जीवन बहुत सच्चरित्र था। यहाँ स्त्रियों का बहुत सम्मान था। इनका जीवन सुखमय था जिसमें धन से अधिक महत्व मर्यादा को दिया जाता था। विवाह के अवसर पर वर–वधु की योग्यता का विशेष महत्व होता था। राजकुमारों को युद्ध संचालन की शिक्षा दी जाती थी। उनके लिए धनुष–वाण का प्रयोग, अश्वारोहण, खड़ग् युद्ध आदि में कुशल होना आवश्यक माना जाता था। महात्मा बुद्ध के विवाह के समय कुमारी गोपा के पिता दणपाणी की यह चिन्ता थी कि सिहार्थ युद्ध संचालन में

सक्षम है अथवा नहीं इस बात को सिद्ध करता है। शाक्यों का विवाह स्वजातीय व्यक्तियों में ही होता था। महिलाओं में यहाँ शिक्षा का प्रचार–प्रसार था। कोशल के राजा विद्दभ ने छठी सदी के अन्त में इसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

2.21 सुसमुमार पर्वत के भग्ग

सुमसुमार पर्वत का समीकरण मिर्जापुर जिले में स्थित वर्तमान चुनार से किया गया है। ऐसा लगता है कि भग्ग ऐतरेय ब्राहमण में उल्लिखित भर्गवंश से सम्बन्धित थे। भग्ग गणराज्य के अधिकार क्षेत्र में विन्धय क्षेत्र की यमुना तथा सोन नदियों के बीच का प्रदेश सम्मिलित था। भग्ग लोग वत्सों की अधीनता स्वीकार करते थे। ज्ञात है कि सुमसुमार पर्वत पर वत्सराज उदयन का पुत्र बोधि निवास करता था।

2.22 अलकल्प के बुलि

यह गणराज्य आधुनिक बिहार प्रान्त के शाहाबाद आरा और मुजफ्फरपुर जिले के बीच स्थित था। बुलियों का वेठद्वीप (बेतिया) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। यही सम्भवतः उनकी राजधानी थी। बुलि लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के बाद उन्होंने उनके अवशेषों का एक भाग प्राप्त किया तथा उस पर स्तूप का निर्माण करवाया था।

2.23 केसपुत्त के कलाम

केसपुत्त का निश्चित रूप से समीकरण स्थापित कर सकना कठिन है। यह गणराज्य कोशल के पश्चिम में स्थित था। सम्भवतः यह राज्य सुलतानपुर जिले के कुडवार से लेकर पालिया नामक स्थान तक फैला हुआ था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि कलामों का सम्बन्ध पांचाल जनपद के केशियों के साथ था। इसी गणराज्य के आलारकलाम नामक आचार्य से जो उरूवेला के समीप रहते थे, महात्मा बुद्ध ने गृहत्याग करने के बाद सर्वप्रथम उपदेश ग्रहण किया था। कलाम लोग कोशल की अधीनता स्वीकार करते हैं।

2.24 रामग्राम के कोलिय

यह शाक्य गणराज्य के पूर्व में स्थित था। दक्षिण में यह गणराज्य सरयू नदी तक विस्तृत था। शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच रोहिणी नदी बहती थी। दोनों राज्यों के लोग सिंचाई के लिए इसी नदी के जल पर निर्भर करते थे। नदी के जल के लिए उसमें प्रायः संघर्ष भी हो जाता था। एक बार गौतम बुद्ध ने ही इसी प्रकार के एक संघर्ष को शान्त किया था। कोलिय गण के लोग अपनी पुलिस शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। कोलियों की राजधानी रामग्राम की पहचान वर्तमान गोरखपुर जिले में स्थित रामगढ़ ताल से की गयी है।

2.25 कुशीनारा के मल्ल

कुशीनारा की पहचान देवरिया जिले में स्थित वर्तमान कस्या नामक स्थान से की जाती है। बाल्मीकी रामायण में मल्लों को लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु मल्ल का वंशज कहा गया है।

2.26 पावा के मल्ल

पावा आधुनिक देवरिया जिले में स्थित पडरौना नामक स्थान था। मल्ल लोग सैनिक प्रवृति के व्यक्ति थे। जैन साहित्य से पता चलता है कि मगध नरेश अजातशत्रु के भय से मल्लों ने लिच्छवियों के साथ

मिलकर एक संघ बनाया था। अजातशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित करने के बाद मल्लों को भी जीत लिया था।

2.27 पिप्पलिवन के मोरिय

मोरिय गणराज्य के लोग शाक्यों की ही एक शाखा थे। महावंशटीका से पता चलता है कि कोशल नरेश विडूडभ के अत्याचारों से बचने के लिए वे हिमालया प्रदेश में भाग गये जहाँ उन्होंने मोरों की कूक से गुंजायमान स्थान में पिप्पलिवन नामक नगर बसा लिया। मोरों के प्रदेश का निवासी होने के कारण ही वे मोरिय कहे गये। मोरिय शब्द से ही सीधे मौर्य शब्द बना है। चन्द्रगुप्त मौर्य इसी परिवार से उत्पन्न हुआ था। पिप्पलिवन का समीकरण गोरखपुर जिले में कुसुम्हीं के पास स्थिति राजधानी नामक ग्राम से किया जाता है।

2.28 वैशाली के लिच्छवि

यह बुद्ध काल के सबसे बड़े तथा शक्तिशाली गणराज्यों के रूप में विद्यमान थे। लिच्छवि वज्जिसंघ में सर्वप्रमुख थे। उनकी राजधानी वैशाली मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ नामक स्थान में स्थित थी। महावग्ग जातक में वैशाली को एक धनी, समृद्धशाली तथा धनी आबादी वाला नगर कहा गया है। यहाँ अनेक, सुन्दर भवन, चैत्य तथा बिहार थे। एकपण्ण जातक से पता चलता है कि वैशाली नगर चारों ओर से तीन दीवारों से घिरा हुआ था। प्रत्येक दीवार एक दूसरी से एक योजन दूर थी। और उसमें पहरे की मीनारों वाले तीन द्वार बने हुए थे। लिच्छवियों ने महात्मा बुद्ध क निवास के लिए महावन में प्रसिद्ध कट्टारगार शाला का निर्माण करवाया था। जहाँ रहकर बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे। लिच्छवि लोग अत्यन्त स्वाभिमानी तथा स्वतंत्रता प्रेमी हुआ करते थे। उनकी शासन व्यवस्था संगठित थी। बुद्ध काल में यह राज्य अपनी समृद्धि की परकाष्ठा पर था। यहाँ का राजा चेटक था। उसकी कन्या चेलना का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार के साथ हुआ था। महावीर की माता त्रिशला उसकी बहन थी। जैन साहित्य से पता चलता है कि अजातशत्रु के विरूद्ध चेटक ने मल्ल, काशी तथा कोशल के साथ मिलकर एक सम्मिलित मोर्चा बनाया था।

3.29 मिथिला के विदेह

बिहार के भागलपुर तथा दरभंगा जिलों के भू–भाग में विदेह गणराज्य स्थित था। प्रारम्भ में राजतंत्र था। यहाँ के राजा जनक अपनी शक्ति एवं दार्शनिक ज्ञान के लिए विख्यात थे। परन्तु बुद्ध के समय में यह संघ राज्य बन गया। विदेह लोग भी वज्जि संघ के सदस्य थे। उनकी राजधानी मिथिला की पहचान वर्तमान जनकपुर से की जाती है। बुद्ध के समय मिथिला एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था जहाँ श्रावस्ती के व्यापारी अपना माल लेकर आते थे।

इन गणतंत्रीय एवं कुलीन तंत्रीय राज्यों में से केवल शाक्य और लिच्छवि राज्यों के बारे में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। इनके विषय में एक बात महत्वपूर्ण है, जैसा कि डॉ, बी.सी. लो ने लिखा है ''आरम्भ में इनमें से अधिकांश जातियों पर राजा का शासन था।'' इस कारण ग्रीस की भाँति भारत में भी राजतंत्रों को नष्ट करके कुलीनतंत्र अथवा गणतांत्रिक राज्यों की स्थापना का मूल कारण राजाओं की आयोग्यता तथा अत्याचार ही रहा होगा। यह विश्वास किया जाता है कि इन राज्यों में छोटे और बड़े सभी प्रकार के गणराज्य संघ–गणराज्य थे। आन्तरिक फूट और मगध राज्य के विस्तार ने इनको

नष्ट कर दिया। इनमें से कुछ को अजातशत्रु ने कुछ को नन्द सम्राटों ने कुछ को मौर्य सम्राटों ने समाप्त किया।

इसके उपरान्त हमें गणराज्यों का अस्तित्व भारत के उत्तर पश्चिम भाग में प्राप्त होता है। जिनका मुकाबला यूनानी आक्रमणकारियों जैसे सिकन्दर को करना पड़ा। झेलम और चिनाव नदी के संगम के दक्षिण में उस समय निम्न गणराज्य अग्रश्रेणी, क्षुद्रक, मालव, अम्बढढू, क्षत्रिय, शूद्र, मूषिक, मुचिकण, आविस्कानुस, शम्भू और पत्तल थे। इनमें से प्रायः सभी ने सिकन्दर के वापस लौटने के मार्ग में बाधाएँ प्रस्तुत की और उससे भीषण युद्ध किये। निःसन्देह वे सिकन्दर की विशाल सेना के सम्मुख परास्त हुए परन्तु उन्होंने अनेक अवसरों पर सिकन्दर को कठिनाई डाल दिया था। बाद में चन्द्रगुप्त मौर्य ने इन सभी गणराज्यों को समाप्त कर दिया। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की साम्राज्यवादी नीति और एकछत्र साम्राज्य का सिद्धान्त इनके अस्तित्व के विरूद्ध था। इस कारण उनके समय में गणराज्यों को समाप्त करने के लिए एक सुनिश्चित नीति अपनायी गयी थी। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात हमें पश्चिमी भारत में पुनः गणराज्य प्राप्त होते हैं। इनमें से यौधेय, अर्जुनायन और मालव प्रमुख गणराज्य थे। इन्होंने विदेशियों से युद्ध करने में प्रमुख भाग लिया। यौघेयों ने पूर्वी पंजाब और उत्तरी राजस्थान में अपने राज्य स्थापित किये। सम्भवतया उनके निर्वाचित प्रधान को महाराज अथवा महासेनापति पुकारा जाता था।

उन्हें शकों से परास्त होना पड़ा परन्तु उन्होंने कुषाणों से कई सफल युद्ध किये। अर्जुनायनों का राज्य आधुनिक जयपुर के प्रदेश में था। उन्होंने भी शकों और आर कुषाणों से युद्ध किये। मालव सिकन्दर के आक्रमण के बाद पूर्वी राजपुताना के निकट आकर बस गये थे। मौखरि वंश के शासक इनके अधीन थे। इनके अतिरिक्त शिवियों ने चित्तौड के निकट अपना राज्य स्थापित किया, कुलुत गणराज्य कुल्लु घाटी में था। औदुम्बर गणराज्य कांगडा, गुरूदासपुर और होशियारपुर जिलों में था। भद्रक गणराज्य स्यालकोट (पंजाब) में था। आमीरों का गणराज्य मध्य भारत में था। प्रार्जुन गणराज्य सम्भवतया मध्य प्रदेश में था, सनकासिक गणराज्य भिलसा के निकट था, काक गणराज्य सोची के निकट था और खरपरिक गणराज्य सम्भवतया मध्यप्रदेश में दमोह के निकट था।

2.30 गणराज्यों का विधान तथा शासन पद्धति

गणराज्यों के विधान तथा शासन पद्धति के विषय में हमे बहुत कम ज्ञात है। इतना तो स्पष्ट ही है कि लिच्छवि आदि बड़े गणराज्यों की शासन व्यवस्था मोरिय, कोलिय आदि छोटे राज्यों की अपेक्षा भिन्न रही होगी। गण की कार्यपालिका का अध्यक्ष एक निर्वाचित पदाधिकारी होता था। जिसे राजा कहा जाता था। सामान्य प्रशासन की देखभाल के साथ–साथ गणराज्य में आन्तरिक शान्ति एवं सामंजस्य बनाये रखना उसका एक प्रमुख कार्य था। अन्य पदाधिकारियों में उपराजा, सेनापति, भाण्डारिक आदि प्रमुख थे। परन्तु राज्य की वास्तविक शक्ति एक केन्द्रीय समिति अथवा संस्थागार में निहित होती थी। इस समिति के सदस्यों की संख्या काफी बड़ी होती थी। समिति के सदस्य भी राजा कहे जाते थे। एकपण्ण जातक के अनुसार लिच्छवि गणराज्य की केन्द्रीय समिति में 7707 राजा थे। तथा उपराजाओं, सेनापतियों और कोषाध्यक्षों की संख्या भी यहीं थी।

इसी प्रकार एक स्थान पर शाक्यों के संस्थागार के सदस्यों की संख्या 500 बतायी गयी है। ये सम्भवतः राज्य के कुलीन परिवारों के प्रमुख थे जिन्हें राजा की पदवी का अधिकार था। प्रत्येक राजा के अधीन उपराजा, सेनापति भाण्डारिक आदि पदाधिकारी होते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लिच्छवि राज्य अनेक छोटी–छोटी प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त था तथा प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष एक राजा होता था। जो अपने अधीन पदाधिकारियों की सहायता से उस इकाई का शासन चलाता था। प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष केन्द्रीय समिति के सदस्य होते थे। गणराज्यों से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषयों जैसे–संधि विग्रह, कूटनीतिक सम्बन्ध राजस्य संग्रह आदि के ऊपर केन्द्रीय समिति के सदस्य संस्थागार में पर्याप्त वाद–विवाद के पश्चात बहुमत से निर्णय लेते थे। जब रोहिणी नदी के जल वितरण के सम्बन्ध में कोलियों तथा शाक्यों के कृषकों के बीच विवाद हुआ तो उन्होंने अपने–अपने अधिकारियों को सूचित किया तथा अधिकारियों ने अपने राजाओं को बताया। राजाओं ने इन विषयों पर पर्याप्त वाद–विवाद के पश्चात युद्ध का निर्णय लिया। इस प्रकार कोशल विडूडभ द्वारा शाक्य गणराज्य पर आक्रमण किये जाने तथा उनकी राजधानी का घेरा डालकर उनसे आत्म सर्मपण के लिए कहे जाने पर शाक्यों ने अपने संस्थागार में आत्म सर्मपण अथवा युद्ध करने के ऊपर विचार विमर्श किया। अन्त में बहुमत से आत्म समपर्ण का निर्णय लिया गया। लिच्छवि गणराज्य में सेनापति के चुनाव का भी एक विवरण प्राप्त होता है। तदनुसार सेनापति घण्ड की मृत्यु के बाद सेनापति सिंह को नियुक्ति संस्थागार के सदस्यों द्वारा निर्वाचन के आधार पर की गयी थी। कुशीनारा के मल्लों ने बुद्ध की अन्त्येष्टि तथा उनकी धातुओं के विषय में अपने संस्थागार में विचार–विमर्श किया था। गणराज्यों की शासन व्यवस्था को हम निम्न बिंदुओं से वर्णित करेंगे।

2.31 गणराज्यों का प्रधान

गणराज्यों का एक प्रधान होता था। जो गणमुख्य कहलाता था। वह सम्भवतः दस वर्षों के लिए निर्वाचित किया जाता था। राज्य की कार्यपालिका शक्ति उसी में निहित रहती थी। वह परिषद के निश्चय के अनुसार अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों की सहायता से गण का शासन चलाता था। राज्य की सर्वोच्च सत्ता एक निर्वाचित संस्था के हाथों में होती थी जो परिषद कहलाती थी। परिषद का चुनाव कैसे होता था इस सम्बन्ध में अभी तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। गणराज्यों की शासन–व्यवस्था के अन्तर्गत तीन प्रमुख विभाग होते थे। सैन्य विभाग, अर्थविभाग तथा न्याय विभाग। सैन्य विभाग का अध्यक्ष सेनापति होता था। अर्थ विभाग का प्रधान अधिकारी भंडागारिक कहलाता था। गणराज्यों की न्याय व्यवस्था स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। न्याय करने के लिए कई तरह के न्यायालयों की व्यवस्था की गयी थी। एक न्यायालय महातात्रों का था। दूसरा न्यायालय व्यावहारिकों का था और तीसरा न्यायालय सूत्रधारों का। सर्वोपरि अपील का न्यायालय होता था। निम्न स्तर के न्यायालयों के फैसले के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती थी। इन सभी न्यायालयों को अपने निश्चित कार्यालय होते थे।

2.32 परिषद की कार्य विधि

जिस सदन में परिषद की बैठकें होती थी। उसे संस्थागार कहा जाता था इसकी बैठक निश्चित समय पर होती थी। संस्थागार का अधिवेशन तभी वैध हो सकता था जब सदस्यों की एक निश्चित संख्या

(कोरम) उपस्थित हो। सभाभवन में सदस्यों के बैठने के लिए आसनों का प्रबन्ध ''आसन्न पन्नापक'' नामक एक पदाधिकारी करता था। विचारणीय विषय पर प्रत्येक सदस्य को बोलने का अधिकार था। कभी–कभी प्रस्ताव पाठ कई बार होता था। जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में होते थे वे मौन रहते थे और जो विपक्ष में होते वे बोलते थे। विवाद ग्रस्त प्रश्नों पर मतविभाजन होता था। मतविभाजन भिन्न–भिन्न रंगों की शलाकाओं के द्वारा होता था। एक रंग की शलाका एक प्रकार के मत को सूचित करती थी। शलाका को एकत्र करने वाला शलाकाग्राहपक कहलाता था।

अधिवेशन की पूर्ण कार्यवाही रखी जाती थी और यह कार्य लिपिकों द्वारा होता था। संस्थागार ही राज्य की सबसे बड़ी संस्था थी। इसी के द्वारा राजा, उपराजा, सेनापति एवं अन्य पदाधिकारी होते थे। राजनीति का निर्णय भी यहीं होता था। परिषद में जो प्रस्ताव उपस्थित किये जाते थे वे प्रतिज्ञा कहलाते थे। प्रतिज्ञा के नियमानुसार रखने को स्थापना कहा जाता था। प्रतिज्ञा के उच्च स्वर में घोषणा को अनुश्रावन कहा जाता था। प्रतिज्ञा का निर्वाचन होता था जिसे प्राप्ति प्रथम, प्राप्ति द्वितीय, प्राप्ति तृतीय आदि कहते थे। प्रत्येक प्रतिज्ञा पर वाद–विवाद होता था। परिषद के कार्यवाही के इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह एक लोकतांत्रिक व्यवस्था थी। मोरिय, कोलिय आदि छोटे गणराज्यों में सम्पूर्ण प्रबन्ध एक केन्द्रीय संस्थागार के द्वारा होता था। परन्तु शाक्यों और लिच्छवियों के गणतंत्र बड़े थे अतः केन्द्रीय संस्थागार के अतिरिक्त उनके प्रान्तीय संस्थागार भी होते थे।

2.33 न्याय व्यवस्था

गणराज्यों की न्याय व्यवस्था भी सुविकसित थी। दण्डविधान लिखित था। न्याय करने के लिए कई प्रकार के न्यायालय थे। फौजदारी तथा दीवानी के मुकदमों का अलग–अलग न्यायालयों में फैसला होता था। सबसे ऊपर अपीलीय न्यायालय थे। न्यायालयों की कार्य प्रणाली भी सुनिश्चित थी। लिच्छवियों की न्याय व्यवस्था विचित्र थी। कहा जाता है कि न्याय प्रशासन के लिए आठ नियमित न्यायालयों की एक श्रृंखला थी। किसी अभियुक्त को तभी दण्ड दिया जा सकता था जबकि सभी आठ न्यायालय उसे अपराधी तथा दण्ड का भागी ठहराते। यदि एक न्यायालय उसे छोड़ देता, तो उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता था। इससे स्पष्ट है कि इन गणराज्यों में नागरिक की स्वतंत्रता के विषय में ऐसा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण प्रचलित था जिसका समानान्तर उदाहरण विश्व के इतिहास में सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलेगा।

बौद्ध साहित्य में उल्लेख आता है कि एक बार बुद्ध ने वज्जियों के संविधान की प्रशंसा करते हुए कहा था कि जब तक वज्जि अपने संविधान को कायम रखे हुए हैं और उसके अनुसार काम करते है तब तक उनकी शक्ति का खात्मा नहीं हो सकता। इस प्रकार हम देखते है कि बुद्धकालीन भारत में दो राजनीतिक प्रवृत्तियाँ राजतंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक साथ–साथ पायी जाती हैं। यद्यपि गणराज्यों का प्रचलन इस समय था परन्तु कालान्तर में वे बढ़ते साम्राज्यवाद के शिकार बन गये और उनका ही अस्तित्व समाप्त हो गया।

2.34 सामाजिक व्यवस्था

इस काल में न तो वैदिक काल जैसी सामाजिक उदारता थी और न ही महाकाव्य काल जैसी जटिलता। व्यवसाय तथा विवाह की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कई ब्राह्मण इस समय कृषि तथा व्यापार का

कार्य करते थे। यह वहीं समय है जब ब्राहमणों के सम्मान में कमी आने लगी थी। इस काल में ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे विदित होता है कि क्षत्रीय ब्राह्मणों के बताये मार्ग पर बिना सोचे समझे नहीं चलते थे।

अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित हो गये थे। साधारणतया विवाह माता–पिता के इच्छानुसार ही होते थे। स्वयंवर तथा गन्धर्व विवाह भी प्रचलित थे। जैस वत्स के राजा उदयन के साथ अवन्ति के राजा प्रद्योत की कन्या का विवाह हुआ। दहेज की प्रथा प्रचलित थी। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। नैतिक स्तर पर इस समय उच्च था। स्त्रियाँ पति की इच्छा के अनुसार चलती थी।

2.35 आर्थिक जीवन

इस समय के लोगों का भी प्रधान व्यवसाय कृषि था। गन्ने तथा धान की खूब खेती होती थी। खेत अधिकतर छोटे होते थे। देश का आंतरिक तथा वाह्य व्यापार उन्नत था। व्यापारियों के काफिले चला करते थे। मुख्य व्यापार गलगल, रेशमी वस्त्र, कढ़े हुए कपड़े, औषधि, आभूषण, तथा अस्त्र–शस्त्र होता था। जातक कथाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है कि स्थल मार्ग से व्यापारियों के काफिले बैलगाड़ियों के द्वारा चला करते थे। इस काल की अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

2.36 धार्मिक अवस्था

जनपद काल में महाकाव्य काल के समान आधुनिक हिन्दू धर्म का स्वरूप जम गया था। हिन्दू धर्म में जटिलता बहुत आ गयी थी। इससे धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात सा होने लगा था। ब्राहमणों की पहले से ही समाज में जेष्ठता कायम थी जिससे लोग अपनी स्वतंत्रता में कभी महसूस करने लगे थे। ज्ञान की खोज करने वाले अब अधिक शास्त्रार्थ करने लगे थे। लोगों में शास्त्र का कहना क्या है इस बात पर झगड़े होने लगे थे। इसीलिए सूत्रों के भाष्य बनने लगे तथा धर्म के क्षेत्र में अलग–अलग धाराएँ प्रवाहित हुई।

2.37 सारांश

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि छठी ई. पू. में गणतंत्रीय शासन प्रणाली स्थापित हो चुकी थी। इन गणराज्यों में ग्राम पंचायतें भी होती थी। जो राजतंत्रात्मक राज्यों की ग्राम पंचायतों के समान ही अपना कार्य करती थी। तथा कृषि, व्यापार, उद्योग आदि के विकास का ध्यान रखती थी। गणराज्यों के विधान तथा शासन के विषय में हमें जो थोड़ी बहुत सी सूचना मिलती है उससे स्पष्ट होता है कि वे राज्य बड़े समृद्ध तथा सुव्यवस्थित रहे होंगे। सम्पन्न एवं खुसहाल रहे होंगे। प्रशासनिक कार्यों में उनका भी सहयोग एवं भागीदारी रही होगी।

2.38 अभ्यासार्थ प्रश्न

1–प्राचीन भारत के गणंतत्रीय राज्यों की शासन व्यवस्था का वर्णन करो ?

2–प्राचीन भारत के प्रमुख गणराज्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

3–प्राचीन भारत के गणराज्यों से पूर्व राजतंत्रों का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

4–कपिलवस्तु के शाक्यों पर टिप्पणी लिखिए ?

5–गणराज्यों की परिषद की कार्य विधि पर टिप्पणी लिखो ?

6–गणराज्यों की न्याय व्यवस्था पर टिप्पणी लिखो ?

2.39 सन्दर्भ ग्रन्थ

1–बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा

2–एल.पी. शर्मा, प्राचीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा

3–के.सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

4–डॉ. दीनदयाल वर्मा, प्राचीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

5–बिपिन बिहारी सिन्हा, भारत का इतिहास, (प्राचीन काल से 1526 तक) ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली

इकाई तीनः चन्द्रगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय
3.4 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ
3.5 नन्दों का उन्मूलन
3.6 सेल्यूकस के विरूद्ध युद्ध
3.7 चन्द्रगुप्त मौर्य की पश्चिमी विजय
3.8 चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिणी विजय
3.9 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार
3.10 चन्द्रगुप्त मौर्य का अंत
3.11 राज्य सिद्धान्त
3.12 राजा अथवा सम्राट
3.13 मंत्रीसभा तथा मंत्रीपरिषद
3.14 विभागीय व्यवस्था एवं आमात्य
3.15 प्रांतीय शासन
3.16 नगर शासन
3.17 गुप्तचर व्यवस्था
3.18 न्याय व्यवस्था
3.19 अर्थव्यवस्था
3.20सड़कें एवं सिंचाई व्यवस्था
3.21 स्वास्थ्य, स्वच्छता भारत की जनगणना
3.22 सैनिक शासन
3.23 बिन्दुसार
3.24 सारांश
3.25 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.26 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य था। यूनानी आक्रमण से उत्पन्न संकट से ग्रस्त और मगध के अत्याचारी शासकों से त्रस्त जनता को मुक्ति दिलाने के लिए उसने आचार्य चाणक्य की सहायता से नन्दों का नाश कर अपना राज्य स्थापित किया। वह एक साहसी एवं महत्वाकांक्षी शासक था। उसने राज्य विस्तार के साथ जनता के हित में भी अनेक कार्य किया। यूनानियों को पराजित कर भारतीय क्षेत्र को प्राप्त करने एवं धनानन्द के कुशासन से जनता को मुक्त कराने के कारण उसे 'मुक्तिदाता' भी कहा जाता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

- मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय एवं उसकी उपलब्धियाँ
- चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रशासनिक व्यवस्था
- चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा जनहित में किये गये कार्य
- बिन्दुसार का जीवन परिचय एवं विदेशों के साथ सम्बन्ध

3.3 चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन के ज्ञान के लिए हमें मुख्यतः बौद्ध स्त्रोतों पर ही निर्भर करना पड़ता है। यद्यपि वह साधारण कुल में उत्पन्न हुआ था तथापि बचपन से ही उसमें उज्जवल भविष्य के सूचक महानता के सभी लक्षण विद्यमान थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त का पिता मोरियनगर का प्रमुख था। जब वह अपनी माता के गर्भ में था तभी उसके पिता की किसी सीमान्त युद्ध में मृत्यु हो गयी। उसकी माता अपने भाईयों द्वारा पाटलिपुत्र में सुरक्षा के निहित पहुँचा दी गयी। यहाँ चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही वह एक गौपालक को समर्पित कर दिया गया। गौपालक ने गौशाला में अपने पुत्र के समान उसका लालन–पालन किया। कुछ बड़ा होने पर उसने उसे एक शिकारी के हाथों बेच दिया। शिकारी के ग्राम में वह बड़ा हुआ तथा उसे पशुओं की देख–भाल के लिए रख दिया गया। अपनी प्रतिभा के कारण उसने शीघ्र ही अपने समवयस्क बालकों में प्रमुखता हासिल कर ली। वह बालकों की मंडली का राजा बनकर उनके आपसी झगड़ों का फैसला किया करता था। इसी प्रकार एक दिन जब वह 'राजकीलम' नामक खेल में व्यस्त था चाणक्य उधर से निकला। अपनी सक्ष्म दृष्टि से उसने इस बालक के भावी गुणों का अनुमान लगा लिया। उसने शिकारी को 1000 कार्षापण देकर चन्द्रगुप्त को खरीद लिया।

चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य तक्षशिला आया। तक्षशिला उस समय विद्या का प्रमुख केन्द्र था और चाणक्य वहाँ का आचार्य था। उसने चन्द्रगुप्त को सभी कलाओं तथा विधाओं की विधिवत शिक्षा दी। अतिशीघ्र वह सभी विधाओं में पारंगत हो गया। यह युद्ध विद्या में भी पर्याप्त निपुण हो चुका था। ऐसा लगता है कि तक्षशिला में ही सैनिक शिक्षा ग्रहण करते हुए वह अपने समय के एक महान विजेता सिकन्दर से मिला था तथा वह उसके सैनिक प्रशिक्षण का एक ही अंग था। इसके विषय में 'प्लूटार्क' तथा 'जस्टिन' जैसे लेखकों ने बड़ा ही रोचक विवरण दिया है। जस्टिन हमें बताता है कि सिकन्दर उसकी स्पष्टवादिता से बड़ा क्रोधित हुआ तथा उसे मार डालने का आदेश दिया, किन्तु शीघ्रता से भागकर उसने अपनी जान बताई।

3.4 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ

चाणक्य ने जिस कार्य के लिए चन्द्रगुप्त को तैयार किया था उसके दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला यूनानियों के विदेशी शासन से देश को मुक्त करना और दूसरा नन्दों के घृणित एवं अत्याचारी शासन की समाप्ति करना। यद्यपि इतिहासकारों में इस विषय में मतभेद है कि चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर भारत में यूनानियों से युद्ध किया अथवा मध्य के नन्दों का विनाश किया तथापि यूनानी रोमन एवं बौद्ध साक्ष्यों से जो संकेत मिलते हैं उनसे यही सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त ने पहले पंजाब तथा सिन्ध को ही विदेशियों की दासता से मुक्त किया था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विदेशी शासन की निन्दा की है तथा उसे देश और धर्म के लिए अभिशाप कहा है। चन्द्रगुप्त ने बड़ी बुद्धिमानी से उपलब्ध साधनों का उपयोग किया तथा विदेशियों के विरूद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया। उसने इस कार्य के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया। इस सेना के सैनिक अर्थशास्त्र के अनुसार निम्नलिखित वर्गों से लिए गये थे।

(1)–चोर अथवा प्रतिरोधक

(2)–मलेच्छ

(3)–चोरगण

(4)–आटविक

(5)–शस्त्रोपजीवी

जस्टिन चन्द्रगुप्त की सेना को डाकूओं का गिरोह कहता है। मेकिन्डल के अनुसार इससे तात्पर्य पंजाब के गणजातीय लोगों से है। जिन्होंने सिकन्दर के आक्रमण का प्रबल प्रतिरोध किया था। मुद्राराक्षस तथा परिशिष्टपर्वन से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को पर्वतक नाम एक हिमालय क्षेत्र के शासक से सहायता प्राप्त हुई थी।

कुछ विद्वानों ने इस शासक की पहचान 'पोरस' से की है किन्तु इसके पीछे कोई ठोस आधार नहीं है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ. ओम प्रकाश ने प्रचर्तक की पहचान अभिसार के शासक के साथ किये जाने के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। यह चन्द्रगुप्त का सौभाग्य है कि पंजाब तथा सिन्ध की राजनीतिक परिस्थितियाँ उसके पूर्णतया अनुकूल थी। सिकन्दर के प्रस्थान के साथ ही इन प्रदेशों में विद्रोह उठ खड़े हुए तथा अनेक यूनानी क्षत्रप मौत के घाट उतार दिये गये। उनमें आपस में ही विद्वेष एवं घृणा की भावना बढ़ी। 325 ईसा पूर्व के लगभग ऊपरी सिन्धु घाटी के प्रमुख यूनानी क्षत्रप फिलिप द्वितीय की हत्या कर दी गयी। 323 ईसा पूर्व में सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् परिस्थितियाँ बिगड़ गई तथा सिन्ध और पंजाब में सिकन्दर द्वारा स्थापित प्रशासन का ढ़ाँचा ढहने लगा। इन प्रदेशों में घोर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी जिसने चन्द्रगुप्त का कार्य सुगम कर दिया। इन प्रदेशों में चन्द्रगुप्त की सफलता का संकेत इतिहासकार जस्टिन इन शब्दों में करता है। ''सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् भारत ने अपनी गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंका तथा अपने गर्वनरों की हत्या कर दी। इस स्वतंत्रता का जन्मदाता सान्ड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त) था। इस प्रकार जस्टिन के विवरण से ज्ञात होता है कि सिकन्दर के क्षत्रपों के निष्कासन अथवा विनाश के पीछे चन्द्रगुप्त का ही मुख्य हाथ था। ऐसा प्रतीत होता है कि फिलिप द्वितीय तथा सिकन्दर की मृत्यु के बीच के दो वर्षों (325–323 ईसा पूर्व) के काल में चन्द्रगुप्त ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यापक योजनायें तैयार कर लीं। अब उसकी तैयारी पूरी हो चुकी थी। उसने सर्वप्रथम एक सेना एकत्र कर अपने को राजा बनाया तथा फिर सिकन्दर के क्षत्रपों के विरूद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया। 317 ईसा पूर्व में पश्चिमी पंजाब का अन्तिम यूनानी सेनानायक यूडेमस भारत छोड़ने के लिए बाध्य हुआ और इस तिथि तक सम्पूर्ण सिन्ध तथा पंजाब के प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो चुका था।

वस्तुतः यह उसकी सुनियोजित योजना का फल था। जस्टिन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य तथा मेसीडोनियन क्षत्रपों के बीच भीषण युद्ध हुआ होगा तथा चन्द्रगुप्त मौर्य को बिना चुनौती दिये ही 317 ईसा पूर्व में शान्ति पूर्वक भारत छोड़ दिया। अब चन्द्रगुप्त मौर्य सिन्ध तथा पंजाब का एकच्छत्र शासक था।

3.5 नन्दों का उन्मूलन

सिन्ध तथा पंजाब में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य मगध की ओर अग्रसर हुए। मगध में इस समय धनानन्द का शासन था। अपने असीम सैनिक साधनों तथा सम्पत्ति के बावजूद भी वह जनता में लोकप्रियता अर्जित कर सकने में असफल रहा और यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। उसने एक बार चाणक्य को भी भरी सभा में अपमानित किया था जिससे क्रूद्ध होकर उसने नन्दों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा ली थी। प्लूटार्क के विवरण से पता चलता है कि नन्दों के विरूद्ध सहायता याचना के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त पंजाब में सिकन्दर से मिला था। इतिहासकार हेमचन्द्र राय चौधरी ने उसके इस कार्य की तुलना मध्ययुगीन भारत के राजपूत शासक राणा संग्राम से की है। जिसने इब्राहिम लोदी का तख्ता पलटने के लिए मुगल सम्राट बाबर को आमंत्रित किया था। परन्तु चन्द्रगुप्त अपने उद्देश्य में असफल रहा। हम देख चुके है कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात किस प्रकार उसने यूनानी अधिकारियों की हत्या पंजाब और सिन्ध पर अधिकार कर लिया। अब उसके पास एक विशाल संगठित सेना थी जिसका उपयोग उसने नन्दों के विरूद्ध किया। दुर्भाग्यवश हमें किसी भी साक्ष्य से नन्दों तथा मौर्यों के बीच इस युद्ध का विवरण नहीं मिलता है। बौद्ध तथा जैन स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त ने नन्द साम्राज्य के केन्द्रीय भाग पर आक्रमण किया परन्तु सफलता नही मिली और उसकी सेना नष्ट–भ्रष्ट हो गयी। अब उसे अपनी भूल ज्ञात हुई तथा उसने दूसरी बार सीमान्त प्रदेशों की विजय करते हुए नन्दों की राजधानी पर धावा बोला। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्द मौर्य युद्ध बड़ा रक्तरंजित रहा होगा। बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो में इस युद्ध का बड़ा ही रक्तरंजित विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ में भट्टूशाल नामक नन्दों के मंत्री का उल्लेख हुआ है। इसमें युद्ध के हताहतों की संख्या बहुत बढ़ा–चढ़ाकर बतायी गई है। जो मात्र आलंकारिक प्रतीत होती है। इससे केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि युद्ध बड़ा घमासान तथा भयंकर रहा। अन्ततः धनानन्द मारा गया और चन्द्रगुप्त का मगध साम्राज्य पर अधिकार हो गया। यह उसकी दूसरी महत्वपूर्ण सफलता थी। अब चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के एक विशाल साम्राज्य का शासक बन गया।

3.6 सेल्युकस के विरूद्ध युद्ध

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उसके पूर्वी प्रदेशों का उत्तराधिकारी सेल्युकस हुआ। वह एन्टीओकस का पुत्र था। बेबीलोन तथा बैक्ट्रिया को जीतकर उसने पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली। वह अपने सम्राट द्वारा जीते गये भारत के प्रदेशों को पुनः अपने अधिकार में लेने को उत्सुक था। इस उद्देश्य से 305 ईसा पूर्व के लगभग उसने भारत पर पुनः चढ़ाई की तथा सिन्ध तक पहुँचा। परन्तु इस समय का भारत सिकन्दरकालीन भारत से पूर्णतया भिन्न था। अतः सेल्युकस को विभिन्न छोटे–छोटे प्रदेशों के सरदारों के स्थान पर एक संगठित भारत के महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से युद्ध करना था। यूनानी लेखकों ने केवल इस युद्ध के परिणाम का ही उल्लेख किया है। अप्पिआनुस लिखते है कि 'सिन्धू नदी पार करके सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। कालान्तर में दोनों में सन्धि हो गयी तथा एक वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गया' स्ट्रेबो के अनुसार 'उस समय भारतीय सिन्धु नदी के समीपवर्ती भाग में रहते थे। यह भाग पहले पारसीकों के अधीन था। सिकन्दर ने इसे जीतकर वहाँ अपना प्रान्त स्थापित किया। किन्तु सेल्युकस ने इन्हें सान्ड्रोकोट्स को वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप दे दिया तथा

बदले में पाँच सौ हाथी प्राप्त किये। इन विवरणों से ऐसा संकेत मिलता है कि सेल्युकस युद्ध में पराजित हुआ। फलस्वरूप चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के बीच एक संधि हुई जिसकी शर्तें निम्नलिखित थी।

1–सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त को आरकोसिया और पेरोपनिसडाई के प्रान्त तथा हेरात एवं जेड्रोसिया की क्षत्रपियों के कुछ भाग दिये।

2–चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस को 500 भारतीय हाथी उपहार में दिये।

3–दोनों नरेशों के बीच एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार सेल्युकस ने अपनी एक पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से इस प्रकार की कोई सूचना नहीं मिलती।

4–सेल्युकस ने मेगस्थनीज नामक अपना एक दूत चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। वह बहुत दिनों तक पाटलिपुत्र में रहा तथा भारत पर उसने 'इण्डिका' नामक एक पुस्तक की रचना की थी।

यह निश्चय ही चन्द्रगुप्त की एक महत्वपूर्ण सफलता थी। इससे उसका साम्राज्य भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर पारसीक साम्राज्य की सीमा को स्पर्श करने लगा तथा उसके अन्तर्गत अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग भी सम्मिलित हो गया। चन्द्रगुप्त के कन्धार पर आधिपत्य की पुष्टि वहीं से प्राप्त हुए अशोक के लेख से भी हो जाती है क्योंकि अशोक अथवा बिन्दुसार ने इस भाग की विजय नहीं की थी। भारत ने सिकन्दर के हाथों हुई अपनी पराजय का बदला ले लिया। इस समय से भारत तथा यूनान के बीच राजनैतिक सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ जो बिन्दुसार तथा अशोक के समय में भी बना रहा।

3.7 चन्द्रगुप्त मौर्य का पश्चिम भारत की विजय

शक महाक्षत्रप रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख (150 ई0) से इस बात की सूचना मिलती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत में सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) तक प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत कर लिया था। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश में पुष्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था और उसने वहाँ सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। सुराष्ट्र प्रान्त के दक्षिण में सोपारा नामक स्थान से चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक का अभिलेख प्राप्त हुआ है, परन्तु अशोक अपने अभिलेखों में इस प्रदेश को जीतने का दावा नहीं करता। अतः इससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सुराष्ट्र के दक्षिण में सोपारा तक का प्रदेश भी चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा ही विजित किया गया था।

3.8 चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण भारत की विजय

चन्द्रगुप्त मौर्य की विजय के सम्बन्ध में अशोक के अभिलेखों तथा जैन एवं तमिल स्त्रोतों से कुछ जानकारी प्राप्त होती है। दक्षिण भारत में कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के कई स्थानों से अशोक के लेख मिलते हैं, जैसे सिद्धपुर, ब्रहमगिरि, जटिंगरामेश्वर, पहाड़ी (कर्नाटक राज्य के चित्तलदुर्ग जिले में स्थित) गोविभट, पालकिक, गुण्डु, मास्की तथा गूटी (आन्ध्र प्रदेश के करनूल जिले में स्थित) अशोक स्वयं अपने चोल पाण्डेय सतियपुत्र तथा केरलपुत्र जातियों का उल्लेख करता है। उसके तेरहवें अभिलेख से ज्ञात होता है कि दक्षिण में उसने केवल कलिंग की ही विजय की थी। जिसके पश्चात उसने युद्ध कार्य पूर्णतया बन्द कर दिया। ऐसी स्थिति में दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक तक की विजय का श्रेय हमें या बिन्दुसार को अथवा चन्द्रगुप्त मौर्य को देना पड़ेगा। बिन्दुसार की विजय अत्यन्त संदिग्ध है और

इतिहास उसे विजेता के रूप में स्मरण नहीं करता। अतः यही मानना तर्कसंगत लगता है कि चन्द्रगुप्त ने ही इस प्रदेश की विजय की होगी।

चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण भारतीय विजय के विषय में जैन व बौद्ध और तमिल स्त्रोतों से भी कुछ संकेत मिलते हैं। जैन परम्परा के अनुसार अपनी वृद्धावस्था में चन्द्रगुप्त ने जैन साधु भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण की तथा दोनों श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर आकर बस गये। यहीं चन्द्रगिरि नामक पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त तपस्या किया करता था। यदि इस परम्परा का विश्वास किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसी स्थान पर तपस्या के लिए गया होगा जो उसके साम्राज्य में स्थित हो। इससे श्रवणबेलगोला पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है। तमिल परम्परा से ज्ञात होता है कि मौर्यों ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण क्षेत्र में 'मोहर' के राजा पर आक्रमण किया तथा इस अभियान में कौशल और वडडगर नामक दो मित्र जातियों ने उसकी मदद की थी। इस परम्परा में नन्दों की अतुल सम्पत्ति का एक उल्लेख मिलता है जिससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तमिल लेखक मगध के मौर्यों का विवरण दे रहे है जो नन्दों के उत्तराधिकारी थे। इस परम्परा में मौर्यो द्वारा तमिल प्रदेश की विजय का विवरण सुरक्षित है। निःसन्देह चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में हुई होगी। यही उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त जैन तथा तमिल परम्पराओं को अनेक विद्वान ऐतिहासिक नहीं मानते। अतः इनमें हम बहुत अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

3.9 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार

इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार सम्पूर्ण भारत में फैल गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि 'उसने छः' लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अपना अधिकार कर लिया। जस्टिन के विवरण से भी पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत उसके अधिकार में था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की जो परम्परा बिम्बिसार के समय से प्रारम्भ हुई थी, चन्द्रगुप्त के समय में वह पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उसका विशाल साम्राज्य उत्तर पश्चिम में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था। पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तथा सोपारा तक का सम्पूर्ण प्रदेश उसके साम्राज्य के अधीन था। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार हिन्दुकुश पर्वत भारत की वैधानिक सीमा थी। यूनानी लेखक इसे पैरापेनिसस अथवा इण्डियन काकेशस कहते थे। यही चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के साम्राज्यों की सीमा थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस को हराकर भारत की उस वैधानिक सीमा पर अधिकार कर लिया था जिसे प्राप्त करने के लिए मुगल तथा अंग्रेज शासक व्यर्थ का प्रयास करते रहे। पाटलिपुत्र इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी।

3.10 चन्द्रगुप्त मौर्य का अन्त

चन्द्रगुप्त एक महान विजेता साम्राज्य निर्माता एवं कुशल प्रशासक था। एक सामान्य कुल में उत्पन्न होते हुए भी अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर वह एक सार्वभौम सम्राट के पद पर पहुँच गया। उसने देश में पहली बार एक सुसंगठित शासन व्यवस्था की स्थापना की और वह व्यवस्था इतनी उच्चकोटि की थी कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श स्वरूप बनी रही। वह एक धर्म–प्राणयन व्यक्ति था। जैन परम्पराओं के अनुसार अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह जैन हो गया। भद्रवाहू की शिष्यता ग्रहण कर ली। चन्द्रगुप्त मौर्य न केवल एक महान विजेता था बल्कि एक कुशल शासन

प्रबन्धक भी था। जिस शासन व्यवस्था को उसने स्थापित किया वह मौर्य वंश के अन्त तक शासन का मुख्य आधार बनी रही। उसके उत्तराधिकारियों में से सम्राट अशोक ने राज्य के कर्तव्यों की व्याख्या को विस्तृत करके सम्राट और उसके शासनाधिकारियों के दृष्टिकोण को उदार सहनशील और विस्तृत अवश्य बनाया परन्तु शासन के मूल ढ़ाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया। चन्द्रगुप्त के शासन को जानने के मुख्य साधन कौटिल्य का ग्रन्थ अर्थशास्त्र और यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के विवरण है। उनसे हमें न केवल चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का ही बोध होता है अपितु उस समय के राजनीतिक सिद्धान्त, राज्य और राजा के अधिकार तथा कर्तव्य, जन–जीवन और विभिन्न राज्यों के पारम्परिक सम्बन्धों के आदर्शों आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

3.11 राज्य सिद्धान्त

मौर्य युग तक राजा का अधिकार वंशानुगत बन चुका था और दैवी–सिद्धान्त के आधार पर उसका सर्मथन किया जाने लगा था। इस कारण राजा के अधिकारों में असाधारण वृद्धि हो गयी थी। परन्तु राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसके अधिकारों में वृद्धि होने के साथ–साथ उसके कर्तव्यों में भी वृद्धि हुई थी। इसी कारण राजा की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। राजा के अधिकार उसके मंत्रियों और उसके स्वयं के सार्वजनिक उत्तरदायित्वों द्वारा सीमित होते थे। राज्य का प्रधान होने के नाते राजा का कर्तव्य राजव्यवस्था को स्थापित रखना था। राजा का कर्तव्य राजधर्म की स्थापना था। जिसका अर्थ राज्य के सभी नागरिकों की सर्वाधिक उन्नति करना था। इस दृष्टि से व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों में भी अंतर नहीं किया जाता था। प्रत्येक कार्य जो व्यक्ति की भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक था उसकी पूर्ति करना और कराना राज्य का कर्तव्य माना जाता था। इसके अन्तर्गत एक परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को ठीक बनाये रखने से लेकर व्यापार और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण तक का अधिकार और उत्तरदायित्व राज्य का था। एक राजा का कर्तव्य था कि वह अपने राज्य की समृद्धि और शक्ति का विस्तार करे तथा उसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद में से किसी भी एक अथवा इनमें से प्रत्येक को अपनाए। ऐसी स्थिति में विभिन्न राज्यों के सम्बन्ध केवल शत्रुता के ही हो सकते थे। कौटिल्य के अनुसार 'एक राज्य के दूसरे राज्य से सम्बन्ध केवल भौतिक लाभ के आधार पर ही होने चाहिए' राज्य की इस व्यवस्था के कारण एक राजा के लिए सम्पूर्णतः प्रभुत्व सम्पन्न होना तो आवश्यक था परन्तु व स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धान्त या राज्य के सात तत्वों के सिद्धान्त का विश्लेषण किया है। ये सात तत्व स्वामिन (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र है। उसकी सर्वांगीण शक्तियों का प्रयोग राज्य और राज्य की सर्वांगीण उन्नति के लिए किया जाना आवश्यक था। मौर्य सम्राटों ने इसी आधार पर अपनी शासन व्यवस्था को स्थापित किया। चन्द्रगुप्त से लेकर अशोक तक का शासन व्यवस्था का आधार यहीं था।

3.12 राजा अथवा सम्राट

राजा राज्य का प्रधान होता था। वह कानून बनाने, कानूनों को लागू करने और न्याय करने में राज्य का सर्वोपरि अधिकारी था। उसका अधिकार वंशानुगत था और उसके अधिकारों पर कोई सीमा नहीं थी। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से मौर्य सम्राट स्वेच्छाचारी नहीं थे वे अपने अधिकारों का प्रयोग अपने

मंत्रियों की सलाह से राज्य धर्म का पालन करते हुए अपनी सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति के लिए करते थे। भविष्य में राजा बनने वाले राजकुमारों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था और उनमें से जो योग्य नहीं हो पाता था वह सिंहासन पर अपना अधिकार खो देता था। राजा अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति था। उसके रात और दिन के कार्य की पूर्ति करनी होती थी। वह राजा के धन, सेना, राज्यादेश और न्याय में स्वयं रूचि लेता था। चन्द्रगुप्त व्यस्तता एवं कठिनाई के कारण छः घण्टे सो पाता था। अपने शरीर की मालिश कराते हुए अथवा बालों की कंघी करते हुए भी वह अपने गुप्तचरों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को सुनता था और उन्हें आदेश देता था। जनसाधारण को राजा से मिलने की सुविधा प्राप्त थी। राजा का मुख्य उत्तरदायित्व अपनी प्रजा की रक्षा और भलाई करना था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है 'प्रजा की प्रसन्नता में उसकी प्रसन्नता है प्रजा के हित में उसका हित है। वह स्वयं को प्रसन्न करने वाले कार्य को उचित न मानकर उसी कार्य को ठीक एवं करने योग्य मानेगा जो उसकी प्रजा को प्रसन्न करता है'। इस कार्य की पूर्ति करने के बदले में ही प्रजा उसे कर देती थी। राज्य की आय से राजा को व्यक्तिगत दृष्टि से सभी सुख सुविधाएँ प्राप्त थी। वह विशाल महल में रहता था। चन्द्रगुप्त के महल की प्रशंसा मेगस्थनीज ने अपने विवरण में किया है। राजा के स्त्री शरीर रक्षक (अंगरक्षक) होते थे। उसके जीवन की रक्षा के लिए समुचित व्यवस्था की जाती थी, यहाँ तक कि उसके भोजन तक की भी जाँच की जाती थी। कोई उसे विष न दे दे अथवा कोई स्त्री भी उसकी हत्या न कर दे, इसका पूर्ण प्रबन्ध किया जाता था। राजा का प्रमुख कार्य सेना का सेनापतित्व और राज्य का विस्तार करना था।

3.13 मंत्रीसभा और मंत्रीपरिषद

कौटिल्य के अनुसार 'राजा को परामर्श देने के लिए दो सभाएँ थी। एक 'मंत्रीसभा' और दूसरी 'मंत्रीपरिषद' कौटिल्य का कहना था कि ''सम्प्रभुता'' (राजसत्ता का उपभोग) केवल उनकी सहायता से ही सम्भव है। उसका अभिप्राय था कि मंत्रियों की ये सभाएँ आवश्यक ही नहीं अपितु प्रभावपूर्ण भी होती थी। मंत्रीसभा के सदस्यों की तीन या चार तक सीमित हो सकती थी और राजा उसके सदस्यों को केवल उनकी योग्यता के आधार पर नियुक्त करता था। कभी–कभी उनमें से किसी एक को मुख्य अथवा प्रधान मंत्री भी बनाया जा सकता था। प्रत्येक मंत्री एक प्रशासकीय विभाग का प्रधान होता था परन्तु राजा को सलाह वे सम्मिलित होकर ही देते थे। प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय पर पहले मंत्रीसभा विचार करती थी। मंत्रीपरिषद एक बड़ी परिषद थी जिसमें 12, 16 अथवा 20 सदस्य होते थे। परन्तु कौटिल्य के अनुसार उसके सदस्यों की संख्या में राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप वृद्धि की जा सकती थी। संभवतः उसका स्थान वैदिक काल की सभा अथवा समिति के अनुरूप था। इसी कारण कौटिल्य ने मंत्रीसभा और मंत्रीपरिषद में अंतर किया था। मंत्रीसभा तथा मंत्रीपरिषद राजा को शासन में सलाह देने वाली समितियाँ ही न थी अपितु वे उसे शासन करने में भी सहायता देती थी। इनमें मंत्री सभी का स्थान निःसन्देह श्रेष्ठ था। यद्यपि कानूनी आधार पर राजा इनकी सलाह को मानने के लिए बाध्य न था परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उसे मंत्री सभी के निर्णयों को स्वीकार करना पड़ता था।

3.14 विभागीय व्यवस्था एवं आमात्य

मौर्य शासन व्यवस्था अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं केन्द्रित नौकरशाही पर आधारित थी। प्रशासन संचालनों के लिए केन्द्रीय शासन कई विभागों में विभक्त था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सबसे श्रेष्ठ स्तर के पदाधिकारियों को तीर्थ पुकारा है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष, महकमे को एक या दो विषय सौंपे जाते थे और प्रत्येक विभाग का संचालन और निरीक्षण एक अध्यक्ष करता था जिसे अमात्य कहा जाता था। अमात्यों, अध्यक्षों और अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं सम्राट चन्द्रगुप्त करता था। प्रशासन की यह व्यवस्था भारत सहित अनेक देशों में आज भी अपना रखी है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त खानों, सिक्के ढालने, नमक बनाने, राज्य व्यापार, जंगल शस्त्रालय, नाप–तोल, चुंगी, चारागाह, कृषि, व्यापार, बन्दरगाह की देखभाल आदि के लिए अन्य अधिकारी होते थे। इन विभिन्न अधिकारियों को तीर्थ, अमात्य, अध्यक्ष आदि के पद दिये जाते थे। अध्यक्षों के अधीन कर्मचारियों को युक्त और उपयुक्त पुकारते थे। मौर्य शासन प्रणाली अपनी नौकरशाही की योग्यता और वफादारी पर निर्भर करता था। मौर्य–साम्राज्य के विशाल आधार को देखते हुए कोई असाधारण बात न थी। प्रो. के.ए. नीलकण्ठशास्त्री ने लिखा 'मौर्य कालीन नौकरशाही अत्यन्त विशाल एवं बड़ी संख्या में थी, और वह देश के प्रत्येक आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त थी।

3.15 प्रान्तीय शासन

मौर्य साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। इस कारण शासन का विकेन्द्रीयकरण करना आवश्यक हो गया था मौर्य साम्राज्य में दो प्रकार के प्रान्त थे। एक वे प्रान्त जो अधीनस्थ शासकों के राज्य थे। जिन्हें शासन के अधिकार दे दिये गये थे यद्यपि वे सम्राट नियंत्रण में थे। और दूसरे वे प्रान्त जो मौर्य–सम्राटों के राज्य को विभिन्न हिस्सों में बाँटकर शासन की इकाईयों के रूप में बनाये गये थे। अशोक के समय में चार प्रान्तों का उल्लेख मिलता है। उत्तरापथ जिसकी राजधानी तक्षशिला थी, अवन्ति राष्ट्र जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, कलिंग प्रान्त जिसकी राजधानी तोसलि या धौली थी और दक्षिणापथ जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी। साम्राज्य का पाँचवा भाग प्राशी था जहाँ स्वयं सम्राट राजधानी पाटलिपुत्र से शासन करता था। प्रान्तों में प्रान्तपति के रूप में अधिकांशतया राजकुमार नियुक्त किये जाते थे। उन्हें कुमार महामात्य कहकर पुकारा जाता था। अन्य प्रान्तों के प्रान्तपति को केवल महामात्र पुकारा जाता था। चन्द्रगुप्त के समय में कितने प्रान्त थे यह स्पष्ट नहीं है। परन्तु अशोक के समय में कम से कम चार प्रान्त अवश्य थे जिनकी राजधानियाँ क्रमशः तक्षशिला, तोसलि, सुवर्णगिरि, और उज्जयिनी थीं। मगध और उसके निकट का शासन सम्राट स्वयं अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से करता था। प्रान्तों के महामात्र सम्राट के आदेशानुसार प्रान्तों का शासन करते थे। प्रान्त के राठट्रिक (महामात्र) को 1200 पर्ण वार्षिक वेतन दिये जाने का अर्थशास्त्र में विवरण मिलता है।

परन्तु निःसन्देह उनके विस्तृत अधिकार होगें, यह विश्वास किया जा सकता है। उनकी सहायता के लिए भी मंत्रीपरिषद जैसी सलाहकारों की समिति अवश्य होगी। दिव्यादान के कुछ उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रान्तीय मंत्रीपरिषदों से सम्राट सीधा सम्पर्क रखता था। प्रान्तीय शासन में महामात्र की सहायता के लिए अनेक अधिकारियों की अपनी मंत्रीपरिषद होती थी। उनमें से युक्त (कर अधिकारी), राजुक (लगान अधिकारी), प्रादेशिक पटिवेदक आदि मुख्य अधिकारी थे। प्रत्येक प्रान्त शासन

की सुविधा के लिए उपखण्ड़ों अथवा जिलों में बँटा होता था। प्रत्येक जिले का अधिकारी स्थानिक कहलाता था। स्थानिकों के नीचे 'गोप' नामक अधिकारी था। गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई था जहाँ ग्रामिक नामक एक अधिकारी होता था। ग्रामिक की सरकार द्वारा नियुक्ति की जाती थी परन्तु कहीं–कहीं उसका निर्वाचन भी होता था। वह गाँव के व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित ग्राम सभा की सहायता से गाँव का शासन करता था। ग्राम सभा गाँव की सफाई स्वच्छता शासन पुल और सड़क निर्माण कार्य आदि करने के अतिरिक्त न्याय के भी अधिकार थे।

3.16 नगर शासन

नगर शासन की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। शासन के लिए नगर वार्डों में बँटा होता था। वार्ड का अधिकारी स्थानिक होता था। वार्ड को भी अन्य छोटे–छोटे टुकड़ों में बाँटा जाता था और ऐसे प्रत्येक टुकड़े की जिसमें कई परिवारों के मकान सम्मिलित होते थे। गोप नामक अधिकारी देखभाल करता था। सम्पूर्ण नगर की देखभाल के लिए एक बड़ा अधिकारी होता था जिसकी सहायता के लिए म्यूनिसिपल बोर्ड की भाँति एक सभा होती थी। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र और नगर व्यवस्था का विशद वर्णन किया है। उसी प्रकार की व्यवस्था अन्य बड़े नगरों में भी होती होगी यह अनुमान किया जाता है। मेगस्थनीज के अनुसार 'पाटलिपुत्र 15 किलोमीटर लम्बा और 2.80 किलोमीटर चौड़ा नगर था। वह सोन तथा गंगा नदी के संगम पर स्थित था। उसकी रक्षा के लिए उसके चारों ओर लकड़ी की दीवार थी और दीवार के बाहर 18 मीटर चौड़ी खाई थी। दीवार में 64 दरवाजे और 570 खिड़कियाँ थी। नगर अधिकारी नगर शासन की देखभाल करती थी। नगर की स्वच्छता तथा उसे आग से बचाने का विशेष प्रबन्ध किया गया था। नगर में सड़क, पदमार्ग मंदिर, कुँए, अस्पताल, तालाब, बाग, खेलकूद के मैदान आदि सभी की उचित व्यवस्था थी। नगर निर्माण एक योजनाबद्ध तरीके से किया गया था। इस प्रकार पाटलिपुत्र एक अत्यन्त सुन्दर और अच्छे ढंग से प्रशासित नगर था।

3.17 गुप्तचर व्यवस्था

मौर्य शासकों की गुप्तचर व्यवस्था बहुत श्रेष्ठ थी। गुप्तचर दो प्रकार के थे प्रथम संख्या जो एक ही स्थान पर रहते हुए भेष बदलकर सूचनाएँ एकत्रित करते थे। दूसरे संचार जो घूम–घूमकर सूचनाएँ एकत्रित करते थे। राज्य के विभिन्न भागों से सभी सूचनाएँ सम्राट के पास पहुँचायी जाती थी। स्त्रियाँ गुप्तचर भी रखी जाती थी जिसे कूटनी कहा जाता था। विदेशी में भी गुप्तचर भेजे जाते थे। सम्राट के गुप्तचरों के अतिरिक्त राज्य के सभी प्रमुख अधिकारी अपने–अपने गुप्तचरों की नियुक्ति करते थे। कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने इस व्यवस्था को बहुत अधिक महत्व दिया था।

3.18 न्याय व्यवस्था

मौर्य शासकों की दण्ड व्यवस्था कठोर थी। साधारण अपराधों के लिए जुर्माना किया जाता था और व्याभिचार की सजा अंग–विच्छेद थी। परन्तु गम्भीर अपराधों के लिए जैसे शिल्पी को चोट पहुँचने अथवा बिक्री कर न देने पर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। इस कठोर दण्ड व्यवस्था के कारण अपराध कम होते थे। न्यायालय दो प्रकार के होते थे। केन्द्रीय और स्थानीय। केन्द्रीय न्यायालयों में दो न्यायालय थे एक स्वयं सम्राट का और दूसरा मुख्य न्यायाधीश का। मुख्य न्यायाधीश की सहायता के लिए 4 या 5 अन्य न्यायाधीश होते थे। स्थानीय न्यायालय तीन प्रकार के होते थे। प्रथम प्रकार के

न्यायालय किसी भी स्थान के नागरिकों द्वारा न्याय करने के लिए स्वयं बना लिये जाते थे। दूसरी प्रकार के न्यायालय संघों के होते थे और तीसरे प्रकार के न्यायालय ग्राम सभाएँ थी। फौजदारी के न्यायालयों को कण्टकशोधन और असैनिक न्यायालयों को धर्मस्थनीय पुकारते थे।

3.19 अर्थव्यवस्था

राज्य की आय का मुख्य साधन भूमिकर था। जो साधारणतया पैदावार का 1/4 भाग से 1/6 भाग होता था। परन्तु विभिन्न स्थानों पर भूमि की उर्वरता में अन्तर होने के कारण इससे कम या अधिक भी लगान लिया जाता था। राज्य लगान समूचे गाँव से नहीं बल्कि पृथक–पृथक किसानों से वसूल करता था। भूमि पर राज्य का स्वामित्व स्वीकार कर लिया गया तथा राज्य अपने और किसानों के बीच किसी अन्य व्यक्ति अथवा संस्था को स्वीकार नहीं करता था। राज्य जंगलों को साफ कराकर कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करता था और वहाँ खेती करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में बहुसंख्यक प्रदेशों से दासों को लाया जाता था। कलिंग युद्ध के पश्चात प्रायः डेढ़ लाख व्यक्तियों के वहाँ के जंगल साफ करने और नवीन भूमि पर खेती करने के लिए लाया गया था। एक व्यक्ति जब तक संतान उत्पन्न करने की स्थिति में होता था तब तक वह संयास ग्रहण नहीं कर सकता था। एक व्यक्ति यदि अपनी पत्नी और अपने ऊपर आश्रित रहने वालों को जीवन की आवश्यकताओं को उपलब्ध कराये बिना संयास ग्रहण करता था तो दण्ड का भागी होता था। कोई भी संयासी राज्य द्वारा नवस्थापित गाँवों में प्रवेश नहीं कर सकता था। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की समुदाय बनाने की आज्ञा नहीं थी। नवस्थापित गाँवों में गायक, नृतक, नाटककार आदि प्रवेश नही पा सकते थे। क्योंकि उससे गाँव व्यक्तियों का ध्यान कृषि उत्पादन से हट सकता था। कृषि उत्पादन में वृद्धि से व्यापार की भी प्रगति हुई थी। मौर्य शासन के प्रारम्भ में ही प्रचुर मात्रा में मुद्रा का प्रचलन होना बढ़ते हुए व्यापार का प्रमाण है। राज्य अपने अधिकारियों को वेतन भी सिक्कों में देता था। व्यापार की देखभाल करने वाला अधिकारी पण्याध्यक्ष कहलाता था जो न केवल वस्तुओं की कीमतें निश्चित करता था अपितु किसी वस्तु का अभाव न हो इसका भी नियंत्रण करता था। राज्य न केवल व्यापार और उद्योगों की देखभाल करता अपितु स्वयं भी व्यापार और उद्योगों में लगा हुआ था। जो राज्य की आय का एक प्रमुख साधन था। खानों, जंगलों, नमक उत्पादन और अस्त्र–शस्त्रों को निर्माण पर राज्य का एकाधिपत्य था। ये राज्य के उद्योग और व्यवसाय दोनों ही थे। इस प्रकार कृषि, व्यापार, उद्योग आदि सभी को राज्य की आय में वृद्धि करने का साधन बनाया गया था। इसके अतिरिक्त बिक्री–कर, खान–कर, जंगल–कर, मादक–द्रव्यों पर कर, मछली–कर, सिंचाई–कर, चुंगी–कर, लाईसेंस–कर, जुर्माने आदि भी राज्य की आय के मुख्य साधन थे। मौर्य शासकों ने आय के साधनों में अधिकतम वृद्धि की थी। राज्य अनेक कारणों से व्यक्तियों की सम्पति को जब्त कर सकता था। संकट के अवसर पर राज्य प्रदर्शनी, मेले आदि का आयोजन करके भी धन एकत्र कर लेता था। सम्राट अशोक ने लुम्बिनी जिले से पैदावार का 1/8 भाग भूमिकर के रूप में लिया था। राज्य के व्यय के साधनों में राजा और राजा के महल का व्यय, सेना, सरकारी अधिकारियों के वेतन, दान, सड़क और नहरों का निर्माण तथा अन्य सार्वजनिक हित के लिए किये जाने वाले कार्य थे।

राज्य के सभी कर्मचारियों को नकद वेतन दिया जाता था। सबसे अधिक वेतन 48000 पण वार्षिक था जो राजमाता, पटरानी, युवराज, राजपुरोहित, महामंत्री और मुख्य सेनापति को दिया जाता था। न्यूनतम वेतन 60 पण वार्षिक था जो सफाई कर्मचारी या अन्य शारीरिक श्रम मात्र करने वाले निम्न कर्मचारियों को दिया जाता था। एक पूर्ण प्रशिक्षित सैनिक लेखा–जोखा या हिसाब रखने वाले निम्नस्तर के गुप्तचर आदि को 500 पण वार्षिक तथा योग्य इंजीनियर, गुप्तचर आदि को 1000 पण वार्षिक दिये जाते थे। सरकारी सेवा करते हुए शारीरिक दृष्टि से अपाहिज हो जाने वाले तथा मृत्यु प्राप्त अधिकारी के परिवार के सदस्यों की वार्षिक पेंशन दिये जाने की व्यवस्था की गयी थी। यदि राजकोष में मुद्रा की कमी हो जाती थी तो राज्य वेतन की कमी की पूर्ति स्वेच्छा से अन्न, वस्त्र आदि देकर करता था। डॉ. डी.डी. कौसाम्बी के अनुसार 'अर्थशास्त्र में स्पष्ट निर्देश है कि राज्य किसी भी स्थिति में स्थायी आय के साधन को जैसे भूमि जंगल किसी व्यक्ति को प्रदान न करे। मौर्य शासकों ने ब्राह्मणों को भी पुरस्कार स्वरूप गाँव, भूमि आदि दान में नहीं दी। अधिक से अधिक एक सरकारी कर्मचारी को ऐसी भूमि दी जा सकती थी जो कृषि भूमि नहीं थी परन्तु जिसे कृषि योग्य बनाया जाना था। ऐसी भूमि पर भी उस कर्मचारी को नियमानुसार लगान देना होता था और उस भूमि पर उसका पैतृक अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता था। वह भूमि राज्य की ही भूमि रहती थी।

3.20 सड़कें और सिंचाई व्यवस्था

राज्य बड़ी–बड़ी सड़कों और नहरों के निर्माण का उत्तरदायित्व लेता था। मेगस्थनीज ने उत्तर पश्चिम से लेकर पाटलिपुत्र तक आने वाली सड़क का वर्णन किया है जो प्रायः 1840 किमी. लम्बी थी। इसके दोनों ओर वृक्ष लगाये गये थे। इसकी सुरक्षा, सफाई, मरम्मत आदि की उचित व्यवस्था थी। ऐसी ही व्यवस्था अन्य राजमार्गो के लिए भी की गयी होगी यह अनुमान लगाया जा सकता है। सड़कों की देखभाल के लिए एक पृथक विभाग था। सड़कें 9.6 मीटर या उससे भी अधिक चौड़ी होती थी। मौर्य सम्राटों ने नहरों और झीलों के निर्माण के द्वारा सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था की थी। इसके लिए एक पृथक विभाग था सिंचाई कर लिया जाता था जो पैदावार का 1/5 से 1/3 भाग तक होता था।

3.21 स्वास्थ्य, स्वच्छता और जनगणना

नागरिकों के स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए सुविधाजनक प्रबन्ध किया जाता था और इसके लिए नियम बनाये गये थे जिनका पालन कठोरता से किया जाता था। राज्य की तरफ से अस्पतालों का प्रबन्ध किया गया था। पशुओं के लिए पृथक अस्पतालों की व्यवस्था थी। राज्य की जनगणना के लिए पृथक विभाग था तथा प्रत्येक स्थान पर जन्म और मृत्यु की गणना की जाती थी।

3.22 सैनिक–शासन

मौर्य सम्राटों की सेना विशाल और शक्तिशाली थी। सम्राट अशोक ने शान्तिप्रिय नीति को अपनाकर भी सेना की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया था और ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं होता जिससे यह सिद्ध हो सके कि उसने सेना की संख्या में कमी कर दी थी अथवा उसे भंग कर दिया हो। चन्द्रगुप्त ने सेना की व्यवस्था की ओर गम्भीरता से ध्यान दिया था जिसके कारण वह सेल्युकस को परास्त करने के अतिरिक्त एक विशाल साम्राज्य का निर्माण भी कर सका था। चन्द्रगुप्त मौर्य के पास एक अत्यन्त विशाल सेना थी जो चतुंरगिणी या चार अंगों वाली थी। ये अंग थे–पैदल, अश्वरोही,

गज–सेना और रथ–सेना। चन्द्रगुप्त की सेना के बारे में मेगस्थनीज ने लिखा है कि उसकी सेना में 600000 पैदल सैनिक, 30000 घुड़सवार, 9000 हाथी और 8000 रथ सेना थे। सेना की देखभाल 30 सदस्यों की एक प्रसिद्ध परिषद करती थी जो पाँच–पाँच सदस्यों की छः समितियों में बँटी हुई थी। प्रत्येक समिति सेना के निम्नलिखित छः भागों की देखभाल करती थी।

प्रथम समितिः–जल सेना और जहाजी बेड़े की व्यवस्था, प्रबन्ध और देखरेख करती थी।

दूसरी समितिः–सेना का रसद और अन्य आवश्यक सामग्री भेजने की व्यवस्था करती थी।

तीसरी समितिः–पैदल सेना की व्यवस्था का प्रबन्ध करती थी।

चौथी समितिः–अश्वरोही सेना का प्रबन्ध करती थी।

पाँचवीं समितिः–गज सेना की देखरेख करती थी।

छठी समितिः–रथों की सेना की प्रबन्ध करती थी।

रूग्ण एवं घायल सैनिकों के उपचार के लिए सेना के साथ–साथ चिकित्सा विभाग भी रहता था। शल्य चिकित्सा की व्यवस्था भी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की यह समस्त सेना स्थायी थी और उसे नियमित रूप से वेतन दिया जाता था। समस्त सेना सम्राट चन्द्रगुप्त के अधीन थे जबकि सेनाध्यक्ष सेना का प्रबन्ध करने वाला अधिकारी होता था और उसको 48000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था।

3.23 बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार के जीवन तथा उपलब्धियों के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। उसकी महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने अपने पिता से जिस विशाल साम्राज्य को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था उसे अक्षुण्य बनाये रखा। जैन परम्पराओं में बिन्दुसार की माता का नाम दुधेरा मिलता है। यूनानी लेखक ने उसे 'अमित्रोकेडीज' कहा है। जिसका संस्कृत रूपान्तर 'अमित्रघात' (शत्रुओं को नष्ट करने वाला) होता है। यह उसकी उपाधि थी। जैन ग्रंथ उसे सिंहासन कहते है। इन उपाधियों से स्पष्ट है कि वह कोई दुर्बल अथवा विलासी शासक नहीं था। परन्तु अपनी किन विजयों के उपलक्ष्य में उसने उन उपाधियों को ग्रहण किया था। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कुछ बाद के बौद्ध तथा जैन ग्रंथों से पता चलता है कि बिन्दुसार के शासन के अन्त के कुछ वर्षों तक चाणक्य विद्यमान था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बिन्दुसार की उपलब्धियों का इस प्रकार विवरण दिया है–उसे 6 नगरों तथा उनके राजाओं को नष्ट कर पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच के सम्पूर्ण भाग पर अधिकार कर लिया। यह वर्णन कहाँ तक सत्य है यह निश्चित कर सकना दुष्कर है। इस कथन से ऐसा लगता है कि बिन्दुसार के समय कुछ प्रदेशों में विद्रोह हुए और उसने उन्हें दबा दिया। दिव्यादान तक्षशिक्षा में होने वाले विद्रोह का वर्णन करता है कि जिसको दबाने के लिए बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भेजा था। अशोक ने उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करते हुए वहाँ शान्ति व्यवस्था स्थापित की थी। सम्भव है कि इसी प्रकार के कुछ अन्य उपद्रव पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेशों में हुए हों बिन्दुसार ने सैनिक शक्ति द्वारा उन्हें शान्त कर दिया हो। बिन्दुसार के समय में भी भारत का पश्चिमी यूनानी राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध कायम रहा। स्ट्रेबो के अनुसार सोटिया के राज एन्टियोकस ने डाइमेकस नामक अपना

एक राजदूत बिन्दुसार की राज्य सभा में भेजा था। यह मेगस्थनीज के स्थान पर आया था। प्लिनी हमें बताता है कि मिश्र के राजा टॉलमी द्वितीय फिलोडेल्फस ने डाइनोसियस नामक एक राजदूत मौर्य दरबार में भेजा था। परन्तु यह स्पष्ट पता नहीं है कि यह राजदूत बिन्दुसार के समय आया अथवा उसके पुत्र अशोक के समय, क्योंकि मिश्री नरेश इन दोनों मौर्य सम्राटों का समकालीन था। एथेनियस नामक एक अन्य यूनानी लेखक ने बिन्दुसार तथा सोटिया के राजा एन्टियोकस प्रथम के बीच एक मैत्रीपूर्ण पत्र–व्यवहार का विवरण दिया है जिसमें भारतीय शासक ने सीरियाई नरेश से तीन वस्तुओं की माँग की थी। मीठी मदिरा, सूखी अंजीर, व एक दार्शनिक। सीरियाई सम्राट ने प्रथम दो वस्तुएँ भिजवा दी परन्तु तीसरी वस्तु अर्थात दार्शनिक के सम्बन्ध में यह कहला भेजा कि यूनानी कानूनों के अनुसार दार्शनिकों का विक्रय नहीं किया जा सकता। इस विवरण से पता चलता है कि बिन्दुसार के समय में भारत का पश्चिमी एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार अपने पिता की व्यवस्था का ही अनुसरण किया। अपने साम्राज्य को उसने प्रान्तों में विभाजित किया तथा प्रत्येक प्रान्त में कुमार (उपराजा) नियुक्त किये। प्रशासनिक कार्यो के लिए अनेक महामात्रों की भी नियुक्ति की गयी। बिन्दुसार की सभा में 500 सदस्यों वाली एक मंत्रीपरिषद भी थी जिसका प्रधान खल्लाटक था। बिन्दुसार के शासन काल की अन्य बातें हमें ज्ञात नहीं हैं। सम्भवतः उसने 25 वर्षों तक राज्य किया और उसकी मृत्यु 273 ई. पू. के लगभग हुई। वास्तव में बिन्दुसार महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं अशोक के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिसने साम्राज्य को अक्षुण्य बनाए रखा।

3.24 सारांश

उपर्युक्त वृतांत से बिन्दुसार के सम्बन्ध में तीन स्पष्ट निष्कर्ष निकलते हैं। वह अपने पिता से प्राप्त विशाल साम्राज्य की रक्षा करने में सफल रहा। यद्यपि इसका श्रेय बहुत कुछ चन्द्रगुप्त की सुदृढ़ शासन व्यवस्था को था। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यदि बिन्दुसार में पराक्रम एवं राजनीतिक दूरदर्शिता न होती तो उसके लिए अपने साम्राज्य की रक्षा करना असम्भव हो जाता। दूसरे उसकी नीति शान्ति की थी। उसने व्यर्थ के युद्धों में अपनी शक्ति और साधन नष्ट नहीं किए। यही नहीं उसने साम्राज्य की शासन व्यवस्था में भी किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी। वह कला, दर्शन एवं साहित्य का भी प्रेमी था इसीलिए उसने यूनानी सम्राट से एक सॉफिस्ट माँगा था इससे उसका दर्शन–प्रेम प्रकट होता है। उसके विदेशी नरेशों एवं पड़ोसी राज्यों से सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। वह अपनी शान्तिपूर्ण नीति द्वारा 25 वर्षों तक राज्य करने में सफल रहा।

3.25 अभ्यासार्थ प्रश्न

1–चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ?

2–चन्द्रगुप्त मौर्य की साम्राज्य विस्तार नीति के अर्न्तगत उसकी दक्षिणी विजय का वर्णन कीजिए ?

3–चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए ?

4–बिन्दुसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?

5–चन्द्रगुप्त मौर्य के अधीन प्रान्तीय शासन का वर्णन कीजिए ?

6–चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए ?

3.26 सन्दर्भ ग्रन्थ

1–झा, एवं श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी मा. का. नि. नई दिल्ली

2–एल.पी. शर्मा, प्राचीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा,

3–डॉ. दीनानाथ, प्राचीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

4–के. सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

5–**बिपिन बिहारी सिन्हा**, भारत का इतिहास (प्राचीन काल से 1526 ई. तक) ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

6–**प्रो. रोमिला थापर**, प्राचीन भारत का इतिहास

इकाई एकः अशोक

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 मौर्यवंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.4 चन्द्रगुप्त मौर्य (321–297 ई.पू.)

1.5 बिन्दुसार (297–273 ई.पू.)

1.6 अशोक (270–232 ई.पू.)

1.7 अशोक का राज्यारोहण

1.8 स्रोत

1.9 कलिंग का युद्ध

1.10 अशोक और बौद्ध धर्म

1.11 अशोक का धम्म (धर्म)

1.12 अशोक का प्रशासन

1.13 अशोक की मृत्यु और उत्तराधिकारी

1.14 सारांश

1.15 संदर्भ ग्रन्थ और अनुशंसित पुस्तकें

1.16 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.1 परिचय

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दौरान मगध महाजनपद (आजकल के बिहार, झारखण्ड, ओडिसा, पश्चिम बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बांग्लादेश और नेपाल के कुछ भू–भाग इस महाजनपद में शामिल थे) ने स्वरूप लेना शुरू किया, लेकिन नन्दों और मौर्यों के आगमन के साथ इस महाजनपद के विकास में तेजी आई। मगध मौर्यों की शक्तिशाली राजनीतिक सत्ता का केन्द्र होने के कारण इतिहासकारों का ध्यान इस ओर गया। अशोक के शासन के दौरान मौर्य साम्राज्य का विस्तार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा।

1.2 उद्देश्य

- मौर्य वंश विशेषकर अशोक के बारे में अध्ययन के लिए इतिहासकारों द्वारा उपयोग किये गए स्रोतों की जानकारी हासिल करना।
- अशोक से पहले के मौर्य शासकों के राजनीतिक इतिहास के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना।

- अशोक के सत्ता में आने के बाद राज्याभिषेक से लेकर कलिंग युद्ध तक और धम्म नीति सहित उसके जीवनकाल के दौरान घटनाक्रमों का पता लगाना।

1.3 मौर्य वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मौर्यकाल के बारे में जानकारी के मुख्य स्रोत मेगस्थनीज़ की **इण्डिका, अर्थशास्त्र** और अशोक के **शिलालेख** हैं। पुराणों में भी मौर्यों का उल्लेख आया है, लेकिन इनमें केवल नाम के तौर पर और क्षत्रिय–हत्यारों तथा निम्न जाति के नन्दों से इन्हें जोड़ते हुए शूद्रों से इनकी उत्पत्ति बताई गई है। यह ब्राह्मणवादी मूल–पाठ कहता है कि नन्द के दरबार में 'मुरा' नाम की एक शूद्र महिला के गर्भ से चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ था। यह महिला नन्द राजा की पत्नी तथा चन्द्रगुप्त की मातामही (दादी) थी। ग्रीक इतिहासकार मौर्यों को 'मोरिएस' जनजाति से सम्बन्धित बताते हैं। कुछ इतिहासकार इन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय बताते हैं। बौद्ध स्रोत कुछ अलग ही कहते हैं और इन्हें भगवान बुद्ध के अवशेषों में अपना हिस्सा मांगने वाले पिप्पलीवाहन के मोरिया शासक वंश से जोड़ते हैं। रोमिला थापर के अनुसार चन्द्रगुप्त शूद्र वर्ण के नहीं थे, बल्कि वैश्य समुदाय से थे। इस प्रकार मौर्यों की उत्पत्ति के बारे में अलग–अजग मत हैं और हम किस पर विश्वास करें, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

अनेक बौद्ध लिपियों में अशोक और धम्म का उल्लेख मिलता है। 19वीं सदी के प्रारम्भ तक बौद्ध धर्म को न तो भारत के एक मूल धर्म के रूप में माना जाता था, और न ही इसका कोई ऐतिहासिक महत्व था। सन् 1837 में जेम्स प्रिन्सेस द्वारा ब्राह्मी लिपि का अर्थ निकाल लिए जाने और अशोक के शिलालेखों को पढ़े जाने के बाद इस धारणा में बदलाव आया। उसने लेखों का अर्थ निकाला और बताया कि इनमें राजा को देवानामपियदस्सी (देवताओं का प्रिय) कहा गया है। बाद में देश के अनेक भागों में अलग–अलग शिलालेख भी मिले, लेकिन इन्हें अशोक से नहीं जोड़ा जा सका। लेकिन सन् 1915 में एक शिलालेख मिला, जिसमें किसी अशोक प्रियदस्सी का उल्लेख था। सीलोनी (श्री लंका) लिपि **महावंश** से इसकी और आगे पुष्टि हुई तथा सिद्ध हो गया कि अशोक मौर्य ही शिलालेखों का देवानामपियदस्सी है।

इन स्रोतों के साथ बहुत सी समस्यायें हैं। उदाहरण के लिए मेगस्थनीज़ की **इंडिका** के कुछ टुकड़ों में बँटे अनुच्छेद (पैराग्राफ) उपलब्ध हैं। कौटिल्य, जिसकी चाणक्य के रूप में पहचान की गई है, का **अर्थशास्त्र** बहुत बाद में संकलित किया गया है और कहा जाता है कि इसमें अनेक तत्कालीन विचारकों के लेख शामिल हैं तथा अन्य पुरुष के रूप में लिखित स्रोत सामग्री केवल अशोक के बारे में ही उपलब्ध है न कि अन्य सभी मौर्य शासकों के बारे में। अन्य स्थानों पर यदि खुदाई की जाती, तो और ज्यादा जानकारी प्राप्त होती, लेकिन दुर्भाग्य से पाटलीपुत्र के क्षेत्र पर भीड़–भाड़ भरे आधुनिक शहर बस जाने से यह जानकारी पहुँच से बाहर हो गई है।

मौर्य शासकों के मामले में लिखित मूल–पाठ (लिपियों एवं शिलालेखों) की तुलना में भौतिक अवशेष (इमारतों आदि के भग्नावशेष) कम उपलब्ध हैं। इसके अलावा रोमिला थापर का मत है कि शिलालेखों के रूप में उपलब्ध भौतिक अवशेषों का अर्थ भी पाण्डु–लिपियों की मदद से ज्ञात किया गया है। शिलालेखों में मूल–पाठ का प्रवर्तक देवानामपियदस्सी राजा को बताया गया है, जिसकी पहचान बौद्ध लिपियों के साथ तुलना के आधार पर अशोक के रूप में की गई है। ये बौद्ध ग्रंथ उसे धर्मपरायणता के आदर्श प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, लेकिन उसकी यह छवि उसके शिलालेखों में नज़र नहीं आती। रोमिला थापर कहती हैं कि यह दुर्भाग्य है कि अशोक के जीवन के बारे में कालक्रमानुसार जानकारी प्राप्त करने के लिए धार्मिक स्रोतों को तथा इनके अनुपूरक के रूप में अशोक के अपने शिलालेखों को विश्वसनीय मानना पड़ा है।

यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि अशोक का व्यक्तित्व 20वीं शताब्दी में ही प्रकाश में आया। भारत सरकार ने अशोक स्तम्भ से लिये गए 24 श्लाकाओं वाले चक्र को भारतीय ध्वज के केन्द्र में स्थान दिया तथा अशोक स्तम्भ (तीन मुख वाले सिंह और चक्र) को राज्य के प्रतीक चिह्न के रूप में अंगीकार किया एवं उसके आदर्शों को आधुनिक राजनीतिक विचारधारा से जोड़ा। 20वीं शताब्दी में अशोक में अभिरुचि गांधीवादी अहिंसात्मक राष्ट्रवाद के उत्थान का परिणाम थी।

1.4 चन्द्रगुप्त मौर्य (321 – 297 ई.पू.)

मौर्य वंश का पहला शासक चन्द्रगुप्त मौर्य था। यह माना जाता है कि 321 ई.पू. में उसने अन्तिम नंदवंशी शासक को सत्ताच्युत करके मगध के राजसिंहासन पर कब्जा किया था। यह भी माना जाता है कि चाणक्य अथवा कौटिल्य नाम के एक ब्राह्मण ने उसे शासक के रूप में गद्द पर बिठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यही कौटिल्य बाद में मौर्य साम्राज्य का प्रधानमंत्री बना था। नंद वंश की अलोकप्रियता का फायदा उठा कर चन्द्रगुप्त ने मगध पर कब्जा कर लिया तथा अपने राज्य का विस्तार करना शुरू कर दिया। उसने गंगा की घाटी को अपने नियंत्रण में लेकर उत्तर–पश्चिम, जहाँ ग्रीक शासकों का शासन था, की ओर कूच किया। 305 ई.पू. में चन्द्रगुप्त ने ग्रीक शासक सिकन्दर (अलेग्जेंडर) के सेनापति सेल्यूकस निकाटोर को हराया। दोनों के बीच शान्ति संधि हुई और पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा सिंधु नदी का पश्चिमी क्षेत्र चन्द्रगुप्त के नियंत्रण में आ गया।

1.5 बिन्दुसार (297 – 273 ई.पू.)

चन्द्रगुप्त के शासन के बाद उसके पुत्र बिन्दुसार ने गद्दी सम्भाली। तिब्बती बौद्ध सन्यासी तारानाथ के अनुसार बिन्दुसार ने दो सागरों के बीच की भूमि, जिसे द्वीपीय भारत (पेनिन्स्युला इण्डिया) का क्षेत्र कहा गया है, पर कब्जा कर लिया था। के.ए. नीलकंठ शास्त्री का मत है कि यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि बिन्दुसार (अथवा अमृतघट–शत्रु विनाशक) ने

कोई भू–भाग जीता था, लेकिन यह तय है कि उसने अपने पिता के साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा था। इसके विपरीत रोमिला थापर का तर्क है कि बिन्दुसार ने दक्षिण में युद्ध अभियान चलाया होगा। तथापि वह आगे कहती हैं कि इसका मतलब यह नहीं है कि उसने पूरे दक्षिण क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। बल्कि कुछ राज्यों, सम्भवतः मैसूर क्षेत्र तक के कुछ राज्यों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया होगा। उसने कलिंग (वर्तमान ओड़िसा) को छोड़ कर महाद्वीपीय भारत के अनेक राज्यों को युद्ध में पराजित किया था।

1.6 अशोक (273 – 232 ई.पू.)

अशोक मौर्य साम्राज्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा था। वह मौर्य शासक बिन्दुसार और उसकी पत्नी शुभद्रांगी का अथवा धर्मा का पुत्र था। ब्रिटिश इतिहासकार एच.जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'आउटलाइन ऑफ हिस्ट्री' में अशोक के बारे में लिखा है – ''इतिहास के स्तम्भ पर उत्कीर्ण हजारों शासकों के नाम, उनके प्रताप, उनकी उदारता और निरभ्रता तथा शाही महिमा और ऐसे ही विशेषणों के बीच अकेले अशोक का नाम एक आभायुक्त तारे के समान दैदीप्यमान है।''

अशोक का साम्राज्य वास्तव में विशाल था। यह कश्मीर से लेकर दक्कन और दक्षिण तक तथा पश्चिम में कन्धार तक फैला हुआ था। दक्षिण में उसके साम्राज्य विस्तार के सबूत उसके शिलालेखों में मिलते हैं। इन शिलालेखों में दक्षिण के राजवंशों पाण्डय, सत्यपुत्र और केरलापुत्र आदि का उल्लेख मिलता है। उसके पिता बिन्दुसार को कलिंग पर विजय पाने में सफलता नहीं मिली थी, लेकिन अशोक ने कलिंग राज्य को भी जीत लिया था।

1.7 अशोक का राज्यारोहण

बौद्ध लिपि **दिव्यावदान** में उल्लेख है कि अशोक को सत्ता प्राप्त करने के लिए अनेक विद्रोहों का दमन करना पड़ा था। इसके मूल पाठ के अनुसार 272 ई.पू. में बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए अनेक युद्ध हुए थे। यह माना जाता है कि बिन्दुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र सुशिमा को गद्दी सौंपना चाहता था, लेकिन राज्य के मंत्री इस निर्णय के पक्ष में नहीं थे। बिन्दुसार के शासनकाल में अशोक को पहले तक्षशिला में विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया और बाद में उसने उज्जैन के राजा के तौर पर शासन किया। **अशोकावदान** लिपि को संस्कृत मूल–पाठ में राधागुप्त नाम के एक मंत्री की भूमिका का जिक्र आया है। उसने मगध की सत्ता प्राप्त करने में अशोक की सहायता की थी। **दीपवंश** और **महावंश** में उल्लेख है कि अशोक ने अपने 99 भाइयों की हत्या करने के बाद सत्ता पर कब्जा किया। उसने केवल अपने सबसे छोटे भाई वितअशोक अथवा तिस्सा को जीवित छोड़ा था। लेकिन हमें इस उल्लेख के समर्थन में कोई सबूत नहीं मिले हैं और न ही उसके शिलालेखों में इन घटनाओं का कोई उल्लेख है। रोमिला थापर का तर्क है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के जीवन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

दर्शाने के लिए इन लिपियों में बौद्ध धर्म अपनाने से पहले उसका जीवन पापमय और भ्रष्ट दर्शाया गया है तथा बौद्ध धर्म अपनाने के बाद उसका स्वभाव धर्मपरायण दर्शाया गया है। दरअसल यदि हम उसके पाँचवे शिलालेख का अध्ययन करें, तो अपने 99 भाइयों की हत्या करने की इस घटना को आसानी से नकारा जा सकता है। इस शिलालेख में अशोक ने अपने भाइयों, बहनों और परिवारों तथा अन्य सगे–सम्बन्धियों के कल्याण हेतु व्यवस्था करने का उल्लेख है।

1.8 स्रोत

वस्तुगत स्रोत व साहित्यिक स्रोत दोनों का ही उद्देश्य मनुष्य के इतिहास (विगत) पर प्रकाश डालना है, लेकिन अन्तर केवल लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में है। वस्तुगत स्रोत पुरातत्व विज्ञान का सहारा लेते हैं और साहित्यिक स्रोत मूल पाठ्यगत स्रोतों का सहारा लेते है। प्राचीन इतिहास के प्रारम्भिक काल के बारे में बहुत कम स्रोत प्राप्त हैं, लेकिन मौयकाल के बारे में प्रचुर मात्रा में जानकारी उपलब्ध है। तथापि मौर्य शासकों के मामले में बेहतर होता कि हम आंशिक तथ्यों वाले धार्मिक साहित्य स्रोतों, जिनके समर्थन में कोई वस्तुगत सबूत नहीं हैं, स्वीकार करने के बजाय अस्पष्ट पुरातात्विक रिकॉर्डों पर विश्वास करते और इन्हें स्वीकार करते।

जेम्स प्रिन्सेप द्वारा ऐतिहासिक लिपियों का अध्ययन किये जाने से पहले इतिहासकारों का ध्यान अशोक की तरफ नहीं गया था। सन् 1784 में एशियाटिक सोसायटी के गठन के बाद भारत के प्राचीन इतिहास के बारे में खोजबीन शुरू हुई और इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सन् 1861 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण बनाया गया। जॉन मार्शल और अलेक्जेन्डर कमिंघम भारतीय पुरावशेषों में गहरी रुचि रखते थे। इन्हीं के प्रयासों से मौर्यकाल के पुरातात्विक स्रोतों को खोजने में मदद मिली।

अशोक के शिलालेखों की खोज से पहले उसके जीवन और शासनकाल से जुड़ी जानकारी **अशोकावदान** के मूल–पाठ और पाली लिपि में रचित कृति **दीपवंश** और **महावंश** पर आधारित थी। पहली शताब्दी ई.पू. में रचित **महावंश** के मूल–पाठ में बौद्ध धर्म के संरक्षक के तौर पर बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए अधिकारियों और मिशनरियों की नियुक्ति में उसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है और साथ ही उसे बौद्धों के शाक्य पंथ से भी जोड़ा गया है। **अशोकावदान** में अन्य मूल–पाठों की तुलना में राजनीतिक प्रभाव कम दिखाई देता है और इसमें बौद्ध धर्म की चमत्कारी भूमिका का ज्यादा उल्लेख किया गया है। इसमें भ्रष्ट चन्द–अशोक का धर्मपरायण धम्म–अशोक के रूप में परिवर्तित होने का ज्यादा विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि अशोक ने बौद्ध के धर्मावशेषों के संरक्षण के लिए 84,000 स्तूप बनवाये थे और अपना राज्य संघ को सौंप दिया था।

अशोक के राज्यादेश 33 अभिलेखों का संकलन हैं, जिन्हें स्तम्भों, शिलाख्ण्डों और गुफाओं की दीवारों पर उत्कीर्ण किया गया है। ये भारत और पाकिस्तान के बहुत बड़े भू–भाग में फैले हैं। इन शिलालेखों की भाषा मागधी है। यह तत्कालीन मगध साम्राज्य की राजभाषा रही होगी, लेकिन गिरनार और शाहबाजगढ़ी के शिलालेखों में कुछ स्थानीय बोलियों का प्रभाव भी नजर आता है। इसके अलावा शाहबाजगढ़ी और मनशेरा के शिलालेखों में खरसोली वर्णमाला का उपयोग किया गया है, जो दायें से बायीं ओर ओर लिखी जाती है। अन्य सभी ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। साथ ही येर्रागुडी में मिला एक छोटा शिलालेख दुतरफा शैली (एकान्तर रूप में दाँये से बाँये और बाँये से दाँये क्रमशः) में उत्कीर्ण है।

ये राज्यादेश इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म के पहले ठोस सबूत हैं और एक सर्वाधिक शक्तिशाली शासक द्वारा प्राप्त संरक्षण पर प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा इन शिलालेखों की अवस्थिति अशोक के साम्राज्य की सीमा भी दर्शाती है। लेकिन प्रतीत होता है कि बड़े शिलालेखों और स्तम्भ लेखों की शिल्पकारी के बीच समय अन्तराल है। हालांकि विषय–वस्तु और मूलभाव के तौर पर दोनों में समानता है, लेकिन सदृश्यता में बदलाव देखा जा सकता है।

सन् 1929 में खोजे गए 14 प्रमुख बड़े शिलालेख कालशी, मनशेरा, शाहबाजगढ़ी, गिरनार, सोपारा, येर्रागुडी, धौली और जागुड़ा में अवस्थित हैं। लघु शिलालेख और अभिलेख बैराट, रूपनाथ, सहसराम, ब्रह्मगिरी, गावीमठ, जटिंगा–रामेश्वर, मस्की, पलकीगुण्डु, राजुला–मन्दागिरी, सिद्धपुरा, येर्रागुड़ी, गुजर्रा और झांसी में अवस्थित है। सात स्तम्भ लेख इलाहाबाद, दिल्ली–तोपरा, दिल्ली–मेरठ, लौरिया–अरराजा, लौरिया–नन्दगढ़ और रामपुरवा जैसे स्थानों में अवस्थित है।

नीलकंठ शास्त्री ने अशोक के शासनकाल में जारी राज्यादेशों के शिलालेखों की कालक्रम के अनुसार सूची उपलब्ध कराई है, जो इस प्रकार है –

1. बाराबर में दो भित्तिलेखों में, अशोक के राज्याभिषेक के 12वें वर्ष में आजीविकास्वर गुफाओं को उपहार स्वरूप दिये जाने का विवरण दर्ज है।
2. उत्तर भारत में बैराट (जयपुर), रूपनाथ (मध्यप्रदेश), सहसराम (बिहार) और ब्रह्मगिरी, दक्षिण भारत में गावीमठ (हैदराबाद), जरिंगा–रामेश्वर, सिद्धपुर, येर्रागुडी (कुर्नूर जिला) में प्राप्त लघु शिलालेख। ऐसा प्रतीत होता है कि ये शिलालेख अशोक के राज्यारोहण के तेरहवें वर्ष में जारी किये गये थे।
3. भाबरा राज्यादेश, जिसे बैराट शिलालेख भी कहा जाता है, बौद्ध संघ को सम्बोधित था।
4. कालसी, मनशेरा, शाहबाजगढ़ी, गिरनार, सोपारा, येर्रागुडी, धौली और जौगंढ़ा में पाये गये चौदह शिलालेख। ये शिलालेख अशोक के राज्याभिषेक के चौदह वर्ष बाद जारी किये गये थे।

4.(क) धौली और जौगडा में अवस्थिति ''अलग शिलालेख'' अथवा दो कलिंग शिलालेख। 14 संकलित शिलालेखों में इनका क्रम ग्यारहवाँ है। हो सकता है कि ये राज्यादेश अन्य शिलालेखों के साथ या फिर कुछ समय बाद जारी किये गये होंगे।

5. तीसरा बाराबर गुफा भित्तिलेख, जिसे अशोक के राज्याभिषेक के उन्नीसवें वर्ष में जारी किया गया था।

6. लुम्बिनी में रूम्मिदेई और निगलीसागर स्तम्भ–लेख, इन्हें अशोक के राज्याभिषेक के 20 वर्ष बाद जारी किया गया होगा।

7. सात स्तम्भ लेख – इनका कालक्रम अशोक के राज्याभिषेक के 26वें और 27वें वर्ष के बीच का रहा होगा। पहले छः स्तम्भ लेख दिल्ली–तोपरा, दिल्ली–मेरठ, लौरिया–अरराजा, लौरिया–नन्दगढ़ और इलाहाबाद–कोसम स्तम्भ हैं। सातवां स्तम्भ लेख सबसे लम्बा है। इसमें दो छोटे–छोटे राज्यादेश उकेरे गए हैं। इसका पहला राज्यादेश एक अनोखा रिकॉर्ड है। इसे रानी का राज्यादेश कहा जाता है और दूसरा कौशाम्बी राज्यादेश कहा जाता है, जो अन्य राज्यादेशों से अलग है।

8. सांची और सारनाथ में भी लघु स्तम्भ लेख मिले हैं, जिन्हें अशोक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में जारी किया गया होगा, जो सात स्तम्भ राज्यादेशों के बाद रहा होगा।

स्रोतों की एक और श्रेणी है, जो अपने आप में बिल्कुल अलग है। ये स्रोत अशोक के शासनकाल का ब्यौरा तो देते हैं पर उसके शासनकाल के कई सदियों बाद के हैं। इसमें 12वीं सदी में रचित कल्हण की **राजतरंगिणी** प्रमुख है। इस कृति में कल्हण ने कश्मीर में अशोक की भूमिका का वर्णन किया है। कल्हण ने विभिन्न स्थानीय अभिलेखों और परम्पराओं के माध्यम से अशोक का इतिहास बुना है। इसमें अशोक का उसके नाम से ही उल्लेख किया गया है और उसे पूरी पृथ्वी के विजेता के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें कहा गया है कि अशोक ने अपनी राजधानी के रूप में श्रीनगर बसाया था और अनेक बौद्ध स्तूपों का जीर्णोद्धार किया था तथा ब्राह्मणवादी ढांचे को पुनः स्थापित किया था।

और कई अन्य स्रोत भी है जो अशोक के शासनकाल पर अप्रत्यक्ष रूप से या किसी घटनावश दृष्टिपात करते हैं। कर्नाटक में सुनति के समीप कनगनहल्ली स्थित बौद्ध स्तूप के आलेख में अशोक का जिक्र आया है, जो राजा अशोक के संदर्भ में माना जा सकता है। रोमिला थापर का मत है कि इस अभिलेख से पता चलता है कि अशोक के लिए किसी उपाधि का उपयोग नहीं किया गया है। अतः अशोक को समकालीन सातवाहन शासकों के समकक्ष माना गया है।

अशोक के प्रशासन का आधिकारिक रिकॉर्ड मौर्य शासकों के बाद के काल से प्राप्त होता है। रूद्रदमन के गिरनार स्थित शिलालेख में उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासक (गवर्नर) ने सौराष्ट्र के सुदर्शनलेक में एक बाँध बनाया था। बाद में अशोक के प्रशासक ने और उसके

बाद रूद्रदमन के प्रशासक ने इसका जीर्णोद्धार किया। तदोपरान्त पाँचवीं शताब्दी में गुप्त राजा स्कन्दगुप्त ने इसकी मरम्मत कराई।

स्व–मूल्यांकन के प्रश्न

क. अशोक के बारे में अध्ययन के स्रोतों पर एक टिप्पणी लिखें।

ख. अशोक के चरित्र–चित्रण से सम्बन्धित साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों के बीच क्या प्रमुख अन्तर है ?

1.9 कलिंग का युद्ध

जब अशोक ने गद्दी सम्भाली, कलिंग राज्य मौर्य शासन के नियंत्रण में नहीं था। यह राज्य सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। दक्षिण भारत और दक्षिण–पूर्व के भू–मार्ग और सामुद्रिक मार्ग इसके नियंत्रण में थे। तेरहवें शिलालेख में उल्लेख है कि अशोक के अभिषेक के आठ वर्ष बाद, अर्थात् 260 ई.पू. के आसपास कलिंग के साथ घोर युद्ध हुआ। युद्ध की भयावहता अशोक के इस वक्तव्य में नजर आती है – ''एक लाख पचास हजार लोग बेघर हो गए थे, एक लाख सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये और अनेक लोग बेमौत मारे गए''।

कुछ विद्वानों का मानना है कि अशोक युद्ध की निरर्थकता से आहत हो गया था और उसने बौद्ध धर्म अपना लिया, लेकिन उसके शिलालेख एक अलग तस्वीर दिखाते हैं और बताते हैं कि अशोक ढाई वर्ष बाद ही बौद्ध धर्म का प्रबल अनुयायी बन गया था। लेकिन इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इतिहास कलिंग के युद्ध से अशोक को याद करता है और यह कि उसने दिग्विजय के द्वारा जीत की नीति त्याग कर धर्मविजय के द्वारा जीत की नीति को अपनाया था।

1.10 अशोक और बौद्ध धर्म

रोमिला थापर का सुझाव है कि उसके शिलालेखों को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। छोटे शिलालेखों में संघ में बौद्ध धर्म के साधारण शिष्य के रूप में राजा की घोषणाएं निहित हैं। इनसे अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने और संघ से उसके रिश्ते का पता लगता है। उसमें कुछ शिलालेखों से संकेत मिलते हैं कि वह बौद्ध धर्म का निष्ठावान अनुयायी था। उसके एक शिलालेख में कहा गया है कि संघ में किसी भी प्रकार के विरोध को सहन नहीं किया जायेगा और उसे संघ व्यवस्था से निष्कासित कर दिया जायेगा। एक अन्य शिलालेख में उल्लेख है कि राजा चाहता है कि प्रत्येक अच्छे बौद्ध–धर्मी को बौद्ध धर्म ग्रन्थों का ज्ञान होना चाहिये। बड़े समूह में शामिल शिलालेख ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इनमें आमतौर पर जनसाधारण के लिए राज्यादेश (उद्घोषणायें) निहित हैं। इनमें बड़े और छोटे शिलालेख तथा स्तम्भलेख शामिल हैं। इनमें अशोक की धम्म नीति का वर्णन किया गया है।

दीपवंश में तीसरी बौद्ध परिषद का प्रारम्भिक लेखा–जोखा निहित है। इसके अनुसार अशोक के शासनकाल में बौद्ध संघ का पुनर्गठन किया गया था और परम्परा से संकेत मिलते हैं कि उसने मोगालिपुत्त तिस्सा की अध्यक्षता में 250 ई.पू. में पाटलीपुत्र में तीसरे बौद्ध परिषद की बैठक बुलाई थी, लेकिन सातवें स्तम्भ में इस परिषद का कोई जिक्र नहीं है। इसलिए इतिहासकार तीसरे परिषद की कहानी से सहमत नहीं हैं, परन्तु सातवें स्तम्भ राज्यादेश के बाद और अशोक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में जारी इलाहाबाद स्तम्भ का कौशाम्बी रूपान्तर तीसरी परिषद होने के बारे में कुछ सकारात्मक संकेत देता है।

यह माना जाता है कि परिषद की बैठक के बाद अशोक ने भारत, श्रीलंका, बर्मा और अन्य देशों में बौद्ध दर्शन के प्रचार–प्रसार के लिए मिशनरियाँ भेजी थी। शास्त्री ने इन मिशनरियों और इनके द्वारा भ्रमण किये गये स्थानों की एक सूची उपलब्ध कराई है, जो इस प्रकार है –

1.	मज्झान्तिका	–	कश्मीर और गान्धार
2.	महादेव	–	महिषमण्डल (मैसूर)
3.	मज्झिमा	–	हिमालय देश
4.	रक्खिता	–	वाराणसी (उत्तरी कनारा)
5.	महारक्खिता	–	यवन और ग्रीक देश
6.	योन धम्मरक्खिता	–	अपरान्तक (बॉम्बे तट का उत्तरार्द्ध)
7.	महाधम्मरक्खिता	–	महाराट्ठ
8.	सोना और उत्तरा	–	सुवर्णभूमि (बर्मा)
9.	महेन्द्र और संघमित्रा	–	लंका (सीलोन)

1.11 अशोक का धम्म

धम्म संस्कृत शब्द ''धर्म'' का प्राकृत शब्द है, जिसे धार्मिक कर्तव्य, नैतिकता, धर्मपरायणता आदि के रूप में समझा गया है। तेरहवें शिलालेख और कुछ लघु शिलालेखों में व्यावहारिक धम्म की विभिन्न आचार संहितायें और कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं। ये माता–पिता, वृद्धों और गुरुओं के सम्मान, सन्यासियों, ब्राह्मणों और श्रमणों, सम्बन्धियों, दासों, आश्रितों और अनाथों के साथ उचित व्यवहार, प्राणियों पर दया करने, प्राणियों को आहत न करने, सभी के लिए दान, हृदय की पवित्रता, सत्य वाचन और अहिंसा जैसे सद्गुणों पर प्रकाश डालते हैं। अशोक अंधविश्वास के नाम पर अनावश्यक अनुष्ठानों और बलि प्रथा के खिलाफ था। वह न तो किसी वर्ण या जातिगत ढांचे का उल्लेख करता है और न ही किसी प्रकार की जाति व्यवस्था का हवाला देता है।

क्या अशोक के धम्म की बौद्ध धर्म से समानता की जा सकती है। अशोक का अध्ययन करने वाले प्रारम्भिक इतिहासकारों ने अशोक के धम्म की बौद्ध धर्म के समनुरूप के तौर पर व्याख्या की है जिसके चलते उन्होंने यह माना कि बौद्ध धर्म राज्य का धर्म बन गया था। अशोक का धम्म चार उत्तम सत्यों अथवा अष्ट–वलय पथ, जो कि बौद्ध धर्म के अभिन्न अंग हैं, का उल्लेख नहीं करता। इसलिए अशोक ने जिस धम्म का प्रचार किया वह मूलतः बौद्ध धर्म था। इस तथ्य पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता, लेकिन यह कह कर हम इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते कि अशोक पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव था। हमें यह ध्यान रखना होगा कि अशोक बौद्ध–धर्मी था और उसके धम्म ने एक ऐसे सिद्धान्त का कार्य किया, जिसका कोई भी परिवार या अशोक जैसा बौद्ध धर्म का साधारण शिष्य भी अनुकरण कर सकता था।

तथापि, रोमिला थापर का मत है कि हालांकि अशोक बौद्ध धर्म का प्रबल अनुयायी था, लेकिन उसकी धम्म नीति लोगों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए प्रभावित करने के प्रयास मात्र की तुलना में सामाजिक दायित्व ज्यादा थी। या यूँ कहा जाये कि यह एक आचार संहिता थी, जो समाज से नैतिकता अपनाने की अपेक्षा रखती थी। यह प्राणिमात्र के प्रति मानवीय व्यवहार पर आधारित थी। थापर का सुझाव है कि ''अशोक का धम्म उस समय मौजूद किसी भी धर्म की धार्मिक नीतियों के अनुरूप नहीं था। इस दृष्टिकोण के समर्थन में एक सबसे पुख्ता सबूत धम्म महामातृ जैसे अधिकारियों का नियुक्त किया जाना है।'' उनका तर्क है कि यदि धम्म पूरी तरह से धार्मिक होता, तो ऐसे अधिकारियों की आवश्यकता नहीं होती। यदि धम्म पूरी तरह से एक धर्म होता, तो भिक्षु और समर्पित अनुयायी ही धम्म के प्रचार–प्रसार के लिए पर्याप्त होते।

मौर्यकाल में सामाजिक नियंत्रण का विस्तार हुआ। अशोक के शासनकाल के दौरान तो संस्कृति जैसा तत्व भी, जो आर्यकालीन भारत में नियंत्रण से परे था, साम्राज्यिक नियंत्रण में आ गया। इस प्रकार एक ऐसी जटिल राजनीतिक स्थिति का निर्माण हुआ, जिसका इससे पहले कभी सामना नहीं करना पड़ा था। धम्म ने राज्य की मौजूदा समस्याओं के समाधान के रूप में कार्य किया। अशोक ने इसके द्वारा विविधता को एकरूपता में ढालने और सभी को एक पंथ के तहत लाने का प्रयास किया। अशोक के विशाल साम्राज्य में राजनीतिक परिस्थिति को भलीभांति तभी सम्भाला जा सकता था, जब अलग–अलग क्षेत्र के लोग एक ही प्रकार के नियमों, कानूनों का पालन करें। अतः धम्म नीति से पंथिक विवादों और सामाजिक तनावों को समाप्त करने और विविधतापूर्ण साम्राज्य में शान्ति और सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता मिली।

तथापि, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अशोक का धम्म के विकास में कोई व्यक्तिगत रुझान नहीं था। अशोक के व्यक्तिगत विश्वासों और पारिस्थितिक माहौल ने उसकी नीतियों को ढालने में प्रमुख भूमिका निभाई होगी। हम इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकते कि मौर्य शासकों ने ब्राह्मणवादी आचार–संहिता को नहीं अपनाया। अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त

मौर्य जैन पंथ के अनुयायी थे और पिता बिन्दुसार ने आजीविकों को संरक्षण दिया। उसके दोनो पूर्ववर्ती गैर–रूढ़िवादी पंथों के अनुयायी थे और अशोक ने बौद्ध धर्म का चयन कर के उनके उदाहरण का अनुकरण किया।

छठवाँ स्तम्भ बताता है कि राजा ने विश्व के कल्याण और खुशहाली के लिए धम्म का प्रतिपादन किया था। यह लेख बताता है कि राजा सभी पंथों को अलग–अलग तरह से सम्मान देता है तथा व्यक्तिगत रूप से इनका दर्शन करना यानि ज्ञान प्राप्त करना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।

स्व–मूल्यांकन के प्रश्न

क. अशोक की धम्म नीति समझायें।

ख. क्या हम अशोक के धम्म को बौद्ध धर्म के समान कह सकते हैं ? इस कथन पर टिप्पणी दें।

1.12 अशोक का प्रशासन

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान मगध राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी, जो अशोक के शासनकाल में भी बनी रही। अशोक के शिलालेखों में उल्लेख है कि कौशाम्बी, उज्जयनी, सुवर्णगिरी–इसिला., तोसाली और समापा प्रान्तीय प्रशासन के केन्द्र थे। शिलालेख में तोसाली और उज्जयनी के उप–राजा (वॉयसरॉय) के लिये ''कुमार'' शब्द का उपयोग किया गया है तथा सुवर्णगिरी के उप–राजा (वॉयसरॉय) को ''अयपुत'' सम्बोधित किया गया है। इससे यह पता चलता है कि ये प्रतापी शाही परिवार के राजकुमार रहे होंगे।

स्तम्भ लेख पहले, चौथे और पांचवे में ''राजुका'' (ग्रामीण अधिकारी) शब्द का उपयोग हुआ है। इन्हें गाँवों का कल्याण तथा खुशहाली बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया था। अशोक ने यह कोई नया पद या कार्यालय नहीं बनाया था, क्योंकि **अर्थशास्त्र** और **इण्डिका** में भी इस शब्द का जिक्र आया है। शास्त्री का मानना है कि अशोक ने ''राजुका'' पद का केवल पुनर्गठन किया होगा। इन ग्रामीण प्रभारियों को राजा ने आजादी दे रखी थी। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण प्रशासन इनके हाथ में था, अर्थात उन्हें पुरस्कार और दण्ड देने का अधिकार प्राप्त था। स्तम्भ लेख IV में उल्लेख है कि इन राजुकाओं को निरन्तर राजा के सम्पर्क में रहना होता था और यह कार्य राजा के अनुचर (एजेण्ट) सुनिश्चित करते थे। इन अनुचरों को ''पुरूष'' (पुलिस) कहा जाता था। इन राजुकाओं को धम्म के प्रचार–प्रसार का कार्य समर्पण भाव से करना होता था और लोगों को खुशहाल बनाने के लिए उनका मार्गदर्शन करना होता था। उन्हें अपने अधीन तैनात जनपदों और रथिकों की भी सहायता करनी होती थी ताकि वे धम्म के प्रसार में तत्परता से जुटे रहें।

पदानुक्रम में एक और महत्वपूर्ण पद ''महामातृ''था। धम्म–महामातृ के पद भी थे। अशोक के राज्यारोहण के तेरह वर्ष बाद ये पद सृजित किये गये थे। पांचवे शिलालेख में उल्लेख है कि

इनका कार्य धम्म का प्रसार करना और साथ ही धम्म के प्रति समर्पित लोगों की खुशहाली को बढ़ावा देना था। केवल धम्म के प्रचार–प्रसार के अलावा इनके लिए कई अन्य कर्तव्य भी निर्धारित किये गये थे। उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे अनुचरों और स्वामियों, ब्राह्मणों और वैश्यों तथा अनाथों और वृद्धों को मुसीबत के दौरान मदद पहुँचायें। वे निष्पक्ष न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से न्यायालयों के आदेशों की समीक्षा भी करते थे और उन हालातों, इरादों, उकसावों या अपराधी की उम्र आदि पर विचार करते थे, जो अपराध का कारण बने थे। वे रनिवासों, राजा के रिश्तेदारों के परिवार, भाइयों और बहनों के कल्याण का कार्य भी सम्भालते थे। स्तम्भलेख VII में अशोक कहता है कि ये धम्ममहामातृ सभी पंथों के सन्यासियों और परिवारों की सहायता करेंगे। इस स्तम्भलेख में अशोक का कथन है कि ''मैंने कुछ लोगों को आदेश दिया है कि वे संघ के कार्यों में रत रहें। इसी प्रकार कुछ अन्य लोगों को मैंने आदेश दिए हैं कि वे ब्राह्मणों और आजीविकों के साथ व्यस्त रहें एवं कुछ अन्य को मैंने अन्य पंथों के साथ व्यस्त रहने के आदेश दिये हैं।'' शिलालेख V यह भी उल्लेख करता है कि उन्हें स्थानीय प्रजा और विदेशियों को दान स्वरूप उपहार देने का कार्य और साथ ही साम्राज्य की नैतिकता को भी विनियमित करना होता था।

अन्य प्रकार के महामातृ ''नगर–व्यवहारक'' कहलाते थे। इन्हें बड़े नगरों में नियुक्त किया जाता था। शास्त्री इनकी तुलना कौटिल्य के पुराव्यवहारकों से करते हैं। जिस प्रकार राजुका ग्रामीण क्षेत्रों का दायित्व सम्भालते थे, उसी प्रकार ये भी शहरी क्षेत्रों में न्याय प्रदान करने का कार्य करते थे।

इसी प्रकार अम्त–महामातृ भी थे, जिन्हें सीमान्त क्षेत्रों का प्रभारी बनाया जाता था। इन्हें सीमावर्ती क्षेत्रों की जनजातियों में धम्म के प्रचार–प्रसार का दायित्व सौंपा गया था। हालांकि इन सीमान्त जनजातियों पर अशोक का पूर्ण नियंत्रण नहीं था, लेकिन इनके साथ भी उसने दयालुता की नीति अपनाई थी।

''स्त्री अध्यक्षा–महामातृ'' की भी नियुक्ति की गई थी, लेकिन हमें उनके कार्य किस प्रकार के थे, इसकी जानकारी नहीं है। अनुमान है कि इन्हें महिलाओं के कल्याण और उनमें धम्म के प्रचार–प्रसार के लिए नियुक्त किया गया होगा।

कुछ अन्य प्रकार के अधिकारी भी थे, जिन्हें ''युक्त'' कहा जाता था। ये लेखा विभाग का कार्य देखते थे। ये कर्मी महामातृ के अधीन कार्य करते थे। महामातृ युक्तों द्वारा रखे गये व्यय और राजस्व के हिसाब–किताब की जाँच करते थे।

शिलालेख में ''प्रदेशिका'' नाम से एक और अधिकारी का उल्लेख है। सम्भव है यह **अर्थशास्त्र** का ''प्रदेश्त्रा'' हो और जिला कलेक्टर के रूप में कार्य करता हो। शिलालेख III में उल्लेख है कि इन सभी उच्च पदाधिकारियों को प्रशासनिक और मिशनरी कार्यों का जायजा

लेने के लिए तीन से पाँच वर्ष के अन्दर शाही दौरों पर जाना होता था। अशोक ने अधिकारियों का एक और वर्ग बनाया था, जिन्हें 'प्रतिवेदक' कहा जाता था। इन्हें राज्य के विभिन्न भागों में तैनात किया गया था। ये राजा को राज्य के हालात के बारे में रिपोर्ट देते थे। ये किसी भी समय राजा से सम्पर्क करने के लिए स्वतंत्र थे। राजा के व्यस्त समय में भी इन्हें उनसे मिलने की अनुमति दी गई थी।

अशोक ने अपनी प्रशासनिक नीतियों में सुधार कर के इन्हें और अधिक मानवतावादी बनाया तथा मौजूदा स्वरूप (पैटर्न) में बदलाव किये। शिलालेख I में उल्लेख है कि पशु बलि को प्रतिबंधित कर दिया गया था और शाही रसोई के लिए भी पशुबध सीमित करके प्रतिदिन एक हिरण और दो मोर कर दिया गया था।

स्तम्भलेख V में कैदियों को मानवीय आधार पर सजावधि से पहले रिहा करने का उल्लेख है। दरअसल मृत्युदण्ड प्राप्त कैदियों को तीन दिन की मोहलत दी जाती थी, ताकि यदि अपराधी अपने आपराधिक कृत्य के लिए पश्चाताप करता है, तो सजा में संशोधन किया जा सके, अथवा अपने जीवन का अंत निश्चित मान कर उपवास और प्रार्थना द्वारा अगले जन्म में बेहतर जीवन की कामना कर सके।

शिलालेख II में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि अशोक लोक–कल्याण के लिए तत्पर रहता था। उसने मनुष्यों और पशुओं दोनों के लिए अस्पताल बनवाए। उसने औषधीय वनस्पतियों में अनुसंधान के लिए वनस्पति उद्यानों को प्रोत्साहन दिया। इसमें यह भी बताया गया है कि अशोक ने यात्रियों और पशुओं के लिए सड़क के किनारे वृक्ष लगाने और कुँए खोदने के आदेश भी दिये। शिलालेख VII भी अशोक द्वारा प्रारम्भ किये गये लोक कार्यों की पुष्टि करता है। इन कार्यों में पीपल और आम जैसे छायादार वृक्षों का रोपण, प्रत्येक सड़कों के किनारे आधा किलोमीटर की दूरी पर कुँओं की खुदाई, यात्रियों के लिए विश्रामगृहों का निर्माण और मनुष्यों और पशुओं के लिए पानी हेतु जगह–जगह प्याऊ की व्यवस्था शामिल है।

1.13 अशोक की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी

पूरे उपमहाद्वीप में फैले अशोक के शिलालेख उसके विशाल साम्राज्य की ओर इशारा करते हैं। ये शिलालेख सीमान्त क्षेत्रों से लेकर सुदूर दक्षिण तक फैले हैं। इन शिलालेखों की भाषा प्राकृत है, जिसे आम लोग समझते थे। अशोक ने यह सुनश्चित किया कि ये शिलालेख उसके साम्राज्य के अलग–अलग भागों, विशेषकर धार्मिक स्थलों और बाजारों, जैसे सार्वजनिक स्थलों पर लगाये जायें।

उसके नियंत्रण में शामिल क्षेत्रों के अलावा उसके साम्राज्य विस्तार को ''विजित भू–भाग (विजिता), शाही भू–भाग (राजाविषय) और सीमान्त भू–भाग (प्रत्यन्त) के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। दरअसल अशोक के शिलालेख ऐसी पहली सुस्पष्ट अभिव्यक्ति है, जो

राजा की संरक्षण व्यवस्था पर प्रकाश डालती है। महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये शिलालेख सोच–समझ कर नदी एवं जमीनी मार्गों को जोड़ने वाले व्यापारिक रास्तों पर लगाए गए थे।

अशोक के शासनकाल के दौरान मगध साम्राज्य अपनी भौगोलिक चर्मोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। मगध साम्राज्य ने उत्कर्ष, युद्ध के द्वारा नहीं, बल्कि राज्य के अद्वितीय अहिंसा के सिद्धान्त तथा सामाजिक अनुभव के बल पर हासिल किया था। यह अद्वितीय नीति भारत के राजनीतिक इतिहास में फिर कभी नहीं दोहराई गई। कुछ विद्वान मानते हैं कि अशोक के शान्तिवाद ने मौर्य साम्राज्य की सैन्यशक्ति की कमर तोड़ दी थी, जिसके कारण अशोक की मृत्यु के पचास वर्ष के अन्दर ही मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। शक्तिशाली शासक और शासक की पारम्परिक छवि अशोक की अहिंसा की नीति के कारण धूमिल होने लगी। विद्वान यह भी मानते हैं कि अशोक की अहिंसा की नीति ने नहीं, बल्कि इस नीति के आर्थिक परिणामों ने मौर्य शासकों की सैन्यशक्ति को कमजोर किया था। उनका तर्क है कि विशाल सेना, जिसका उपयोग केवल परेड जैसे अवसरों पर किया जाता था, अनेक प्रशासनिक अधिकारी बौद्ध भिक्षुओं को अपव्ययी दान तथा जन कल्याण के विभिन्न कार्यों से राजकोष का बोझ बढ़ा।

तथापि अन्य विद्वानों का मानना है कि शांतिवाद के प्रभाव को बहुत ज्यादा बढ़ा–चढ़ा कर व्यक्त किया गया है। यह समझना होगा कि अशोक का अहिंसा पर बल देने का मतलब यह नहीं है कि हिंसा का पूर्णतया त्याग किया जाए। उदाहरण के लिए परेशानियाँ पैदा करने वाली वन्य जन–जातियों के मामले में, अशोक यदि जरूरी हो तो हिंसा की सम्भावना से इन्कार नहीं करता। अशोक के धम्म के बारे में शिलालेखों के उल्लेखों को एक प्रकार से बौद्ध धर्म के सामान्य मूल्यों अथवा राजनीतिक और नैतिक आदेशों के रूप में लिया जाना चाहिये। दरअसल, ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक चूंकि विजय को अपरिहार्य मानता है, इसलिए वह अपने राज्यादेशों में जब अपनी भावी पीढ़ी से और ज्यादा दयालु होने का आग्रह करता है, तो वह एक दूरदृष्टा की तरह प्रतीत होता है।

अतः इतिहासकारों की कुछ कृतियों में अशोक के केवल दयालु पहलू पर ही ध्यान दिया गया है, तथापि वे इस पहलू की अनदेखी करते नजर आते हैं कि अशोक अपने इस अद्वितीय सिद्धान्त के बल पर ही आदर्श तरीके से अपने साम्राज्य को नियंत्रित कर सका, अन्यथा इसे प्रशासित करना मुश्किल होता।

यह माना जाता है कि अशोक के शासन के अन्तिम वर्षों में शाही नियंत्रण कमजोर हो चला था। धम्म की नीति सामाजिक तनावों को नियंत्रित करने में पर्याप्त रूप से सफल नहीं रही थी। बिन्दुसार के शासन के दौरान अधिकारियों के कुशासन के खिलाफ शिकायत करने वाले तक्षशिला ने दमनकारी नीतियों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। सन् 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु के बाद साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया और अन्ततः मौर्य साम्राज्य दो भागों में बँट गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी भाग पर कुणाल और उसके बाद सम्प्रति का शासन रहा। उत्तर–पश्चिम भाग में बैक्टिरियन ग्रीकों से तनाव का सामना करना पड़ा और सन् 180 ई.पू. में यह भू–भाग इनके कब्जे में चला गया। दक्षिण में आन्ध्र अथवा सातवाहन समस्याएं खड़ी कर रहे थे। साम्राज्य के पूर्व में अशोक के उत्तराधिकारियों का शासन था। बृहदरथ मौर्य शासकों की मुख्य धारा का अन्तिम शासक रहा होगा, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसकी सन् 180 ई. पू. के आस–पास ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा हत्या कर दी गई थी, जिसने अपने वंश के शासन की नींव रखी।

1.14 सारांश

हालिया वर्षों में अशोक की विचारधारा और कार्य तथा इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण राजत्व और सामाजिक मूल्यों की अवधारणा का प्रचार–प्रसार किया जा रहा है। हम नहीं जानते कि विगत में इन विचारों की क्यों अनदेखी की गई या कहीं राजनीतिक प्रयोजनों के लिए इन विचारों को उपयुक्त या विवादित तो नहीं बनाया जा रहा है। प्रारम्भ में अशोक के बारे में केवल यही धारणा थी कि वह एक बौद्ध–धर्मी था, लेकिन अब उसे प्राचीनकाल के एक ऐसे प्रशासक के रूप में देखा जा रहा है, जिसने एक मजबूत साम्राज्य पर शासन किया था। प्राचीन साम्राज्यों के निर्माण की तरह ही उसने भी साम्राज्य स्थापित करने के लिए हिंसा और युद्ध–विजय का सहारा लिया। लेकिन उसने शासन प्रणाली में कुछ संशोधन किये, जिससे सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में बदलाव आये तथा विजय और प्रतिरोध का तरीका भी बदला।

उसका साम्राज्य अनेक भागों को मिल कर बना था और विविधतापूर्ण था। ऐसे साम्राज्य को एकजुट रखने में कठिनाइयाँ आई होंगी। साम्राज्य की विशालता शासक के सीधे राजनीतिक नियंत्रण के लिए एक चुनौती थी। इसके अलावा अलग–अलग नस्ली समूह भी एक और चुनौती बने होंगे। ऐसी परिस्थितियों में अशोक की धम्म नीति राज्य में सामाजिक तनाव का समाधान और साथ ही लोगों को एकजुट करने का एक मंच बनी होगी। अशोक की नीतियों की सफलता और असफलता के बारे में अलग–अलग मत हैं। लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इतिहास के पन्नों में दर्ज अनेक नामों में से अशोक ही एक ऐसा नाम है, जो भूतकाल में उदित हो कर वर्तमान को प्रकाशित कर रहा है। यही उसके प्रतापी व्यक्तित्व का सबूत है।

1.15 संदर्भ ग्रन्थ और अनुशंसित पुस्तकें

- एलन, चार्ल्स, *अशोक : दी सर्च फॉर इण्डियाज़ लास्ट एम्परर,* हेसेट डिजिटल, 2012।
- भण्डारकर, डी.आर., *अशोक,* कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969।
- लाहिड़ी नयनजोत, *अशोक इन एनशियेंट इण्डिया,* हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015।
- मुखर्जी, बी.एन., *दी कैरेक्टर ऑफ दी मौर्यन एम्परर,* यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2000।

- रायचौधरी, एच.सी., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशियेंट इण्डिया : फ्रॉम दी एक्सेशन ऑफ परीक्षित टू दी एक्सटिंक्शन ऑफ गुप्त डाइनेस्टी,* यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता प्रेस, 1927।
- शास्त्री, के.ए., नीलकंठ, *एज ऑफ दी नन्दाज़ एण्ड मौर्याज़,* मोतीलाल बनारसी दास, 1966 (1952)।
- शर्मा, आर.एस., *आस्पैक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियल एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एनशियेन्ट इण्डिया,* मोतीलाल बनारसी लाल पब्लिशर्स, 1996 (1959)
- सिंह, उपिन्दर, *गवर्निंग दी स्टेट एण्ड दी सेल्फ : पॉलिटिकल फिलॉसफी एण्ड प्रैक्टिस इन दी एडिक्ट्स ऑफ अशोक, साउथ एशियन स्टडीज़,* 28:2, 131–145, 2012।
- थापर, रोमिला (एड.), *रीसेन्ट पर्सपैक्टिव ऑफ अर्ली इण्डियन हिस्ट्री,* पॉपुलर प्रकाशन प्रा0लि0, 1995।
- थापर, रोमिला (एड.), *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* वॉल्यूम–I, पेंगुइन बुक्स, 1990 (1966)।
- थापर, रोमिला (एड.), *अशोक एण्ड डिक्लाइन ऑफ दी मौर्याज़,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012 (1973)।

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अशोक की अहिंसा की राज्य नीति के बारे में आपकी क्या राय है ?
2. अशोक के जीवन काल के बारे में कालक्रमानुसार जानकारी प्राप्त करने में शिलालेख कितने महत्वपूर्ण हैं ?
3. अशोक के प्रशासनिक सुधारों पर चर्चा करें।

इकार्द दोः मौर्य कालीन प्रशासन,कला और स्थापत्य तथा सम्राज्य का पतन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मौर्यों का प्रशासन

2.3.1 राजा

2.3.2 मंत्रिपरिषद

2.3.3 नगर प्रशासन

2.3.4 सेना

2.3.5 गुप्तचर

2.3.6 न्याय एवं दण्ड

2.3.7 राजस्व प्रणाली

2.3.8 प्रान्तीय प्रशासन

2.3.9 जनपद एवं ग्राम प्रशासन

2.4 कला एवं वास्तुकला

2.4.1 शैल (पत्थर) स्तम्भ

2.4.2 विशाल प्रतिभाएं

2.4.3 मिट्टी से बनी मूर्तियाँ

2.4.4 शैल–शिल्प

2.4.5 स्तूप

2.4.6 मृद माण्ड (पॉटरी)

2.5 मौर्य साम्राज्य का पतन

2.6 सार–संक्षेप

2.7 संदर्भ एवं अनुशंसित ग्रन्थ

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य की अवधि 325 से 185 ई0पू0 तक माना जाती है। यह विशाल साम्राज्य उत्तर–पश्चिम में अफगानिस्तान, पश्चिम में काठियावाड़ से पूर्व में उड़ीसा और दक्षिण में कर्नाटक तक विस्तृत था। इसे भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे बड़े साम्राज्य के रूप में माना जाता

है। चन्द्रगुप्त मौर्य इस साम्राज्य का संस्थापक था और उसके पौत्र अशोक ने इस साम्राज्य को विस्तार और मजबूती प्रदान की। तथापि, अशोक की मृत्यु के बाद यह ज्यादा नहीं टिका और शुंग वंश ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया।

मेगस्थनीज का ग्रीक भाषा में इस साम्राज्य का वृत्तान्त और कौटिल्य का अर्थशास्त्र कुछ ऐसे स्रोत हैं, जो इस साम्राज्य पर प्रकाश डालते हैं। तथापि मेगस्थनीज की ''इण्डिका'' अलग–अलग हिस्सों में उपलब्ध है और बाद के ग्रीक लेखकों ने संक्षिप्त रूप में और उद्धरणों के रूप में इसे संकलित किया है, अतः इसकी भी अपनी कुछ खामियाँ हैं। अर्थशास्त्र की मूल विषय–वस्तु राज्य का प्रशासन और प्रबन्धन है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें समाज को बनाए रखने के लिए आवश्यक नियम और कानूनों तथा राज्य के हित में राजा के स्पष्ट कर्त्तव्यों को प्रमुखता दी गई है। इस ग्रन्थ के समय–काल और लेखक के मुद्दे पर भी अलग–अलग मत हैं। ऐसा भी मत है कि इस ग्रंथ का समय–काल मौर्य और गुप्त वंश के बीच कहीं है। ऐसा भी कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने मूल रूप से इस ग्रन्थ की रचना की है और बाद की शताब्दियों में अलग–अलग लेखकों ने इस मूल–पाठ में परिवर्तन किए और अपनी टीका टिप्पणियाँ जोड़ी हैं। हालांकि ''दिव्यदान'' और ''मुद्राराक्षस'' बाद के काल की साहित्यिक कृतियाँ हैं, लेकिन ये भी मौर्य पर घटनागत प्रकाश डालते हैं। अशोक के शिलालेख इस काल के बारे में सूचना के बहुमूल्य स्रोत हैं। ईसा पूर्व 150 सिरका में रूद्रदमन के गिरनार शिलालेख भी अपने आप में महत्वपूर्ण हैं।

इस यूनिट में हम इस विशाल साम्राज्य को प्रशासित करने की मौर्यों की योग्यता, मौर्यकाल में कला, स्थापत्य और मौर्य साम्रज्य के विखण्डन तथा अन्त में पतन के कारणों का अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

- मौर्य राज्य के स्वरूप और इसके प्रशासन को समझना।
- मौर्य काल की कला और स्थापत्य का ज्ञान प्राप्त करना।
- मौर्य साम्राज्य के पतन से सम्बन्धित विभिन्न मतों के बारे में जानना।

2.3 मौर्यों का प्रशासन

रोमिला थापर का तर्क है कि यह साम्राज्य स्पष्ट रूप से तीन जोन में बँटा था, (क) महानगर (महाजनपद), (ख) केन्द्रीय भाग और (ग) सीमान्त क्षेत्र। मगध महानगर था क्योंकि यह सत्ता का केन्द्र था और यहीं से विजय अभियान और साम्राज्य विस्तार की पहल की जाती थी। केन्द्रीय भू–भाग (गंगा के मैदान में अवस्थित) वे क्षेत्र थे, जहाँ राज्य के मिश्रित समाज बसे थे जो साम्राज्य के पतन के बाद स्वतंत्र राज्यतंत्र बन सकते थे। सीमान्त क्षेत्रों में साम्राज्य की सीमा पर बसे भू–भाग शामिल थे। यह माना जाता है कि मौर्यों का राज्यतंत्र अत्यन्त केन्द्रीयकृत

साम्राज्य था, अर्थात् केन्द्र से जारी प्रत्येक नीति और फैसले सीमान्त क्षेत्रों सहित सम्पूर्ण साम्राज्य पर एक–समान लागू होते थे। केन्द्रीय प्रशासन को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–(क) राजा, (ख) मंत्रिपरिषद, (ग) नगर प्रशासन, (घ) सेना, (ङ) गुप्तचर तंत्र, (च) विधि और न्याय तथा (छ) लोक कल्याण।

2.3.1 राजा

अर्थशास्त्र में राजा को सर्वोच्च स्थान पर रखा गया है। वह कार्यकारी निकाय के प्रमुख के रूप में कर्त्तव्य निर्वहन करता है। कौटिल्य के अनुसार, ''राजा का कर्त्तव्य प्रजा की खुशहाली सुनिश्चित करना है, न कि अपनी। प्रजा की भलाई से ही राजा की भलाई होगी।'' अशोक ने इस आदर्श को और विस्तार दिया। उसने घोषणा की कि सभी लोग उसके बच्चे हैं। विशाल भू–भाग का अधिपति होने के बावजूद मौर्य शासकों ने ''राजा'' जैसी साधारण उपाधि धारण की। राजा ने शासन करने का दैवीय अधिकार प्राप्त होने का कोई दावा नहीं किया, बल्कि स्वयं को पिता के रूप में प्रजापालक माना। सभी महत्वपूर्ण अधिकारी सीधे राजा द्वारा नियुक्त किए जाते थे और वो शासक के प्रति जवाब–देय थे।

2.3.2 मंत्रिपरिषद

''अर्थशास्त्र'' और ''अशोकन'' शिलालेखों में मंत्रिपरिषद का उल्लेख आया है, जो राजा की सहायता करती थी। तथापि, ''अर्थशास्त्र'' में स्पष्ट किया गया है कि मंत्रिपरिषद के सदस्य और मंत्रिन दोनों अलग–अलग हैं, क्योंकि मंत्रिपरिषद के सदस्यों की तुलना में मंत्रिन को 4800 पण मिलते थे। अतः मंत्रिपरिषद के सदस्य का दर्जा पूर्ण मंत्रिन की तुलना में निम्न रहा होगा। ''अर्थशास्त्र'' में आगे मंत्रियों की नियुक्ति हेतु मानदण्ड निर्धारित किया गया है। इसके अनुसार मंत्री पद के लिए चयनित व्यक्ति ''सर्वोपद शुद्ध'' अर्थात् सबसे पवित्र होना चाहिए। इससे तात्पर्य यह है कि उसे धन–सम्पदा का लोलुप नहीं होना चाहिए और किसी भी प्रकार के दबाव में नहीं आना चाहिए, आदि।

अर्थशास्त्र उल्लेख करता है कि प्रशासन का दायित्व विभाग प्रमुख, जिसे ''अध्यक्ष'' कहा जाता था, को सौंपा जाना चाहिए। लेकिन यह शब्द अशोकन शिलालेखों में नहीं मिलता और अशोक के अधीन इन्हें ''पुलिस/पुरुष'' के नाम से व्यक्त किया गया है। अशोक के शिलालेख–5 में उल्लेख है कि राजा की अनुपस्थिति में नीतियों, संशोधन सम्बन्धी सुझावों और राजा द्वारा उन्हें सौंपे गए महत्वपूर्ण मामलों के बारे में राजा की अनुपस्थिति में विचार–विमर्श किया जा सकता है, लेकिन निर्णय लेने का अन्तिम अधिकार राजा को ही होगा, जो कि निष्पादक प्राधिकारी है। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि बहुमत के फैसले को स्वीकार किया जाए, लेकिन राजा सर्वोच्च सत्ता है और वह अपने विवेक से निर्णय ले सकता है।

अर्थशास्त्र में केन्द्र सरकार के 18 विभागों अथवा ''तीर्थों'' का संदर्भ आया है। इनकी सूची इस प्रकार है :–

1. मंत्रिन – प्रधान आमात्य (मंत्री)
2. पुरोहित – प्रधान पुजारी
3. सेनापति – कमाण्डर–इन–चीफ
4. युवराज – क्राउन प्रिंस
5. दौवारिक – चैम्बरलेन (प्रबन्धक)
6. प्रसस्त्रि – महानिरीक्षक कारावास
7. सम्हर्ता – महा समाहर्ता (कलेक्टर जनरल)
8. पौर – नगर प्रशासक (गवर्नर ऑफ दी सिटी)
9. कर्मान्तिक – उद्योग प्रभारी
10. अन्तरवंशिका – राजा की सुरक्षा का प्रभारी
11. सन्निधित – राजकोष प्रमुख (खजान्ची)
12. प्रदेशत्रि– सम्भागीय प्रमुख
13. मंत्री – परिषद अध्यक्ष
14. नायक – नगर–सिपाही
15. व्यवहारिक – मुख्य न्यायाधीश
16. दण्डपाल – पुलिस प्रमुख
17. द्वारपाल– गृह, रक्षा प्रमुख
18. अन्तपाल – सीमा सुरक्षा प्रमुख

कुछ महत्वपूर्ण महामात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार है :–

1. वहारिक महामात्त – न्यायिक अधिकारी
2. सेनानय महामात्त – सैन्य अधिकारी
3. धम्म महामात्त – धम्म प्रसार–अधिकारी
4. अन्त महामात्त – सीमान्त क्षेत्र का प्रभारी–अधिकारी
5. रतिझक महामात्त – महिलाओं का प्रभारी–अधिकारी

कुछ महत्वपूर्ण अध्यक्षों का वर्गीकरण इस प्रकार है :–

1. पण्याध्यक्ष – वाणिज्य प्रभारी
2. संस्थाध्यक्ष – बाजार प्रभारी–अधिकारी
3. पोत्वाध्यक्ष माप–तोल अधिकारी
4. नवाध्यक्ष – पोत प्रभारी–अधिकारी

5.	सुल्काध्यक्ष	– पथ कर अधिकारी
6.	अकराध्यक्ष	– खान प्रभारी–अधिकारी
7.	लोहाध्यक्ष	– लौह प्रभारी–अधिकारी
8.	सवर्णिका	– स्वर्ण प्रभारी–अधिकारी
9.	सिताध्यक्ष	– राज–भूमि अधिकारी
10.	पातालाध्यक्ष	– लेखा प्रभारी–अधिकारी
11.	रथाध्यक्ष	– रथ प्रभारी–अधिकारी
12.	हस्ताध्यक्ष	– हाथियों का प्रभारी–अधिकारी
13.	आयुधाध्यक्ष	– अस्त्र–शस्त्रों के अनुरक्षण का

प्रभारी–अधिकारी

14.	कोषाध्यक्ष	– कोषागार प्रभारी–अधिकारी
15.	कोष्ठगणाध्यक्ष	– भण्डारगृह प्रभारी–अधिकारी
16.	कुप्याध्यक्ष	– वन उत्पाद प्रभारी–अधिकारी
17.	मणाध्यक्ष	– माप प्रभारी–अधिकारी
18.	मुद्राध्यक्ष	– पासपोर्ट प्रभारी–अधिकारी
19.	पत्तनाध्यक्ष	– बंदरगाह (पत्तन) प्रभारी–अधिकारी
20.	गणिकाध्यक्ष	– गणिकाओं का प्रभारी–अधिकारी
21.	देवातध्यक्ष	–धार्मिकसंस्थानों का प्रभारी–अधिकारी
22.	लक्षाध्यक्ष	– टकसाल का प्रभारी–अधिकारी

2.3.3 नगर प्रशासन

मेगस्थनीज के वृत्तान्त में नगर प्रशासन का विवरण दिया गया है। नगर प्रशासन के लिए छः समितियाँ थीं और प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य थे, लेकिन अर्थशास्त्र में इन समितियों का जिक्र नहीं है। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि नगर प्रशासन का प्रमुख ''नागरिक'' होता था, जिसकी सहायता के लिए ''स्थानिक'' और ''गोप'' होते थे। प्रजा की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार पुलिस अर्थात् ''रक्षि'' थी। इन समितियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :–

1.प्रथम समिति उद्योग और शिल्प का दायित्व सम्भालती थी।

2.दूसरी समिति विदेशियों से सम्बन्धित कार्य सम्भालती थी।

3.तीसरी रमिति जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण का दायित्व सम्भालती थी।

4.चौथी समिति के जिम्मे व्यापार और वाणिज्य, माप–तौल तथा बाजार नियंत्रण का कार्य था।

5.पाँचवी समिति निर्मित सामान का निरीक्षण करती थी।

6.छठी समिति बेचे गए सामान पर कर वसूलती थी।

2.3.4 सेना

सेना का आकार विशाल था। मेगस्थनीज के अनुसार सेना को छः समितियों में बाँटा गया था और प्रत्येक समिति में 5 सदस्य और कुल मिलाकर 30 सदस्य थे। प्लिनी के अनुसार मौर्य सेना में 6,000 पैदल सैनिक, 30,000 घुड़सवार और 9,000 हाथी थे। हालांकि यह संख्या बढ़ा–चढ़ा कर बताई गई हो, लेकिन इससे मौर्यों की सैन्य शक्ति और सैन्य इकाइयों का संकेत अवश्य मिलता है। कौटिल्य ने ''चतुरंग बल'' का हवाला दिया है। इसमें पैदल सेना (पदाति), घुडसवार सेना, रथ और हस्ति सेना जैसे सेना के अहम अंग शामिल हैं। मेगस्थनीज के वृत्तान्त में युद्ध पोतों के दस्ते का भी हवाला मिलता है। हो सकता है कि यह आधुनिक नौ–सेना का प्रारम्भिक स्वरूप हो। प्रतीत होता है कि अधिकारियों को नगद धनराशि दी जाती थी। उदाहरण के लिए, सेनापति को 48,000 पण्य दिये जाते थे और नायक को 18,000 पण्य मिलते थे। मुखियाओं को 8,000 पण्य और अध्यक्ष को 4,000 पण्य दिये जाते थे। अस्त्र–शस्त्र निर्माण और अनुरक्षण पर नजर रखने के लिए एक अलग विभाग था, जिसका प्रमुख आयुधगाराध्यक्ष होता था। सेना से सम्बन्धित अन्य अध्यक्ष थे – रथाध्यक्ष अर्थात् रथ का अध्यक्ष और हस्ताध्यक्ष, जो हस्ति सेना का दायित्व सम्भालता था।

2.3.5 गुप्तचर

मौर्यों को एक संगठित गुप्तचर व्यवस्था का विकास करने का श्रेय दिया जा सकता है। इन गुप्तचरों का कार्य गुप्त सूचनायें जुटाना, मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों पर नज़र रखना तथा जरूरत पड़ने पर सीधे राजा को रिपोर्ट देना, लोगों की राय के बारे में जानकारी एकत्र करना, विदेशी शासकों के रहस्य जानना और राज्य में मौजूद किसी संदिग्ध तत्व को छल–बल से खत्म करना आदि था। अर्थशास्त्र में गुप्तचरों (गूढ़ पुरुषों) को दो श्रेणियों में बाँटा गया है, पहले वो, जो यहाँ–वहाँ भ्रमण (संचार) करते रहते थे, दूसरे वो, जो एक जगह स्थाई (समस्थ) रहते थे। इन्हें और आगे अन्य श्रेणियों में बाँटा गया है। गुप्तचर आम आदमियों से सूचनायें एकत्र करने के लिए अपना रूप और पेशा बदलने में माहिर थे।

2.3.6 न्याय और दण्ड

प्रशासन सुचारू रूप से चले और कानून व्यवस्था बनी रहे, इसके लिए एक समुचित कानून व्यवस्था की आवश्यकता थी। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के न्यायालयों का वर्णन किया गया है, (1) धर्मस्थय अर्थात् व्यक्तिगत मामलों को देखने वाला न्यायालय, जिसका प्रमुख धार्मिक (पवित्र) कानूनों को जानने वाला होता था और इसमें तीन ''आमात्य'' होते थे, तथा (2) कण्टक–शोधन, अर्थात् व्यक्ति और राज्य से सम्बन्धित मामलों को देखने वाली अदालत। इसके प्रमुख तीन प्रदेस्त्रि या आमात्य होते थे। इन दोनों न्यायालयों में क्या अन्तर था, यह स्पष्ट रूप से नहीं समझाया गया है। इसलिए ऐसी स्थिति में हम केवल यह कह सकते हैं कि धर्मस्थ्य दीवानी न्यायालय की तरह रहा होगा या छुट–पुट विवादों को निपटाता होगा, जबकि

कंटक–शोधन व्यक्तिगत मामलों के साथ–साथ आपराधिक मामलों को भी निपटाता होगा। ग्रामीण स्तर पर ग्रामिकाऐं थीं, जो न्यायालय की तरह कार्य करती थी और जनपद स्तर तथा केन्द्रीय स्तर पर भी न्यायालय थे। तथापि, राजा को सर्वोच्च शक्ति और धर्म का रखवाला माना जाता था।

कौटिल्य ने कानून के तीन स्रोत बताए हैं – (1) धर्म, (2) व्यवहार अर्थात् मौजूद कानूनी संहिताएँ, (3) चरित्र अर्थात् प्रथाएँ और (4) राजासन अर्थात् राजा के आदेश (शाही फरमान)। विवाह कानूनों का उल्लंघन, व्यभिचार, सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद, दुरूपयोग, मार–पीट, हिंसा, चोरी, कम तोलना, जुआ आदि अपराध की श्रेणी में आते थे। अपराध के अनुसार दण्ड का भी प्रावधान था। इसमें जुर्माना, कारावास, कोढ़े मारना और यातना या बिना यातना मृत्यु प्रदान करना आदि शामिल था। इसके अलावा ये दण्ड वर्ण–क्रम पर भी आधारित थे, अर्थात् एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण, जो वर्ण क्रम में सबसे ऊपर है, को शूद्र, जो कि वर्ण क्रम में सबसे नीचे है, की तुलना में कठोर सजा दी जायेगी।

2.3.7 राजस्व प्रणाली

कौटिल्य ने राज्य के खजाने (राजकोष) के लिए राजस्व उगाही के अनेक स्रोतों की जानकारी दी है। राजकोष के प्रभारी अधिकारी को ''सन्निधता'' कहा जाता था। वह राजस्व के निम्नलिखित सात स्रोतों से सम्हर्ता को (सामान्य कर उगाहने वाले अधिकारी) कर उगाही की सिफारिश करता है।

1. किलेनुमा शहरी केन्द्र (दुर्ग), यहाँ से 21 प्रकार के कर वसूले जा सकते हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्र (राष्ट्र)
3. खानें (खनि)
4. सिंचाई परियोजनायें (सेतु)
5. वन (वन)
6. चारागाह (व्रज)
7. व्यापार मार्ग (वैकपथ)

उपरोक्त सभी कर अलग–अलग रूप में वसूल किये जाते थे। ये कर जुर्माना, बिक्रीकर, उत्पाद शुल्क, आयकर के रूप में संग्रहित किये जाते थे। खानें राज्य के नियंत्रण में थीं और राजस्व का नियमित स्रोत थीं। इनके अलावा राजभूमि (सिता) से प्राप्त राजस्व, किसानों से भू–राजस्व (भाग), नौघाटों (नावों के घाट) पर प्रभार, सड़क अथवा जलमार्गों से यात्रा करने वाले व्यापारियों पर कर, बागानों पर कर, आयात–निर्यात पर कर आदि राजकोष के स्रोत थे। ऐसे भी कुछ कर थे, जो सीधे शाही खजाने में जमा होते थे। इसके अलावा राज्य में आपात स्थिति के

दौरान कर लगाए जा सकते थे। ये सभी कर राज्य के कुशल संचालन तथा सेना, प्रशासन, वेतन और राजा के व्यय के लिए आवश्यक थे।

2.3.8 प्रान्तीय प्रशासन

प्रान्तीय प्रशासन के प्रमुख शाही खानदान के राजकुमार थे, जिन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा जाता था। ये प्रमुख प्रान्त राजा की प्रभुत्व का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यपुत्र शाही वारिस थे और इनका दर्जा कुमार की तुलना में ऊँचा रहा होगा। जिन प्रान्तों का उल्लेख किया गया है, उनमें से कुछ उज्जयनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरी, तोसाली आदि हैं। कुमारों को महामात्य और मंत्रिपरिषद की सहायता से (विशेष रूप से अशोक के काल में) कार्य करना होता था। ये मंत्री स्वभाव से शक्तिशाली होते थे और कुमारों के कार्यकरण पर सख्ती से नजर रखते थे तथा सीधे राजा से सम्पर्क रखते थे। वरिष्ठ अधिकारियों में महामात्र और आमात्य शामिल थे और इनकी नियुक्ति राजा और कुमारों द्वारा की जाती थी।

2.3.9 जनपद एवं ग्राम प्रशासन

मौर्यो के प्रशासन को और आगे जनपद एवं ग्राम स्तर के प्रशासन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जनपद स्तर के प्रमुख अधिकारी प्रदेश्त, राजुका और युक्ता कहलाते थे और राजा इन अधिकारियों के साथ सीधे सम्पर्क में रहता होगा। इन्हें भूमि सर्वेक्षण तथा मूल्यांकन, निरीक्षण, राजस्व संग्रहण और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने जैसे कार्य करने होते थे। पदानुक्रम में प्रदेश्त की शक्तियाँ सबसे ज्यादा थी, जबकि मुक्ता अन्य दो की शक्तियों में नियंत्रण एवं संतुलन की भूमिका निभाता था।

अशोक के राजाज्ञा लेख ग्राम स्तर के प्रशासन पर ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं कराते, लेकिन अर्थशास्त्र में इस प्रशासन के बारे में कुछ संदर्भ नजर आते हैं। अर्थशास्त्र के विषय उद्धरण से संकेत मिलते हैं कि ग्राम स्तर के अधिकारी ''ग्रामिका'' कहलाते थे और स्थानीय लोग ही होते थे, जिन्हें ग्रामवासी नियुक्त करते थे और इन्हें सहयोग देते थे। यह प्रशासन व्यवस्था स्थान विशेष में व्याप्त परिस्थितियों के आधार पर अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग रही होगी। हमें ''गोप'' और ''स्थानिक'' जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है। ये शायद वो लोग होंगे, जो जनपद और ग्राम के बीच मध्यस्थ की तरह कार्य करते होंगे।

मौर्यो के राजतंत्र से एक सुगठित प्रशासन प्रणाली की झलक मिलती है। राज्य का केन्द्रीयकृत स्वरूप मुख्यतया अर्थशास्त्र पर आधारित है। तथापि कुछ इतिहासकारों ने प्रशासन के इस केन्द्रीयकृत स्वरूप पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए हैं। रणधीर चक्रवर्ती के अनुसार, ''यह स्वीकार करना मुश्किल है कि केवल राजनीतिक सत्ता के केन्द्र द्वारा जारी आदेशों के अनुसार ही एक–समान रूप से प्रशासन चल रहा होगा।'' जी. फ्यूसमैन की दलील है कि ''न केवल विशाल मौर्य साम्राज्य ही विकेन्द्रीकृत था, बल्कि प्रान्तों में भी प्रशासनिक असमानता थी।''

दरअसल ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य प्रशासन ने विशाल साम्राज्य की क्षेत्रीय विभिन्नता को स्वीकार कर लिया था, अशोक के आदेश–लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है। अशोक के शिलालेखों में उल्लेख है कि उसके अधिकारी क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के अनुसार केन्द्रीय आदेश के मूलपाठ में संशोधन कर तद्नुसार आदेश जारी कर सकते हैं। चक्रवर्ती की राय है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब अशोक ने स्थानीय विशेषताओं को वरीयता दी है। ग्रीक और अरामिक भाषा में जारी आदेश इसके उदाहरण हैं। वहीं दूसरी तरफ ऐसे भी उदाहरण हैं कि द्वीपीय भारत में आदेश जारी करने में ब्रह्मी लिपि और प्राकृत भाषा को ही वरीयता दी गई, जो प्रशासन की एकसमान नीतियों की ओर इशारा करती है। तथापि द्वीपीय भारत से प्राप्त वास्तु शिल्प सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर एच.पी. राय जैसे विद्वानों का मत है कि द्वीपीय भारत में अशोक की भूमिका धम्म के नैतिक मूल्यों का प्रचार करने वाले बौद्ध उपासक जैसी है।

2.4 कला एवं स्थापत्य

मौर्यकालीन कला चौथी से दूसरी शताब्दी ई0पू0 के दौरान सृजित कला की प्रतिछाया प्रतीत होती है। यह एक ऐसी खास अवधि थी, जब काष्ठ पर उकेरी जाने वाली कला प्रस्तर कला की ओर अग्रसर हो रही थी। मौर्यकालीन कला के अवशेष कला विशेषज्ञ इतिहासकारों के बीच अलग–अलग मतों की बाजीगरी का विषय रहे हैं। जहाँ एक ग्रुप मौर्यकालीन कलाकृतियों को पर्शियन शिल्पकला की देन मानता है, तो वहीं दूसरा ग्रुप इसे पूरी तरह स्वदेशी बताता है। यह भी मत व्यक्त किया गया है कि मौर्यकाल तक शिल्प एवं स्थापत्य परिपक्व हो चुका था। आनन्द के. कुमारस्वामी के अनुसार, ''मौर्यकालीन कला को तीन मुख्य चरणों में बाँटा जा सकता है – (1) मौर्यों से पहले की परम्परा जारी रहना, जिसे अब वैदिक देवताओं के चित्रण में कहीं–कहीं देखा जा सकता है, (2) अशोक की दरबारी कला, जिसे अशोक के राज्यादेशों से उत्कीर्ण प्रस्तर (पत्थर) स्तम्भों में देखा जा सकता है और इनमें विदेशी (ईरानी) प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, तथा (3) ईंटों और पत्थरों से निर्मित वास्तुशिल्प, जैसे कि सांची का स्तूप, सांची स्थित पत्थर के जंगले और बाराबर पहाड़ियों पर लोमश ऋषि की गुफा।'' ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के व्यक्तिगत धर्म ने भी इस काल की शिल्पकला को प्रभावित किया होगा। बौद्ध परम्परा में अशोक द्वारा निर्मित 84,000 स्तूपों का जिक्र आता है, लेकिन हमें इसका केवल शाब्दिक भाव नहीं लेना चाहिये। बौद्ध तथा जैन धर्म की लोकप्रियता की वजह से इस काल में बड़े पैमाने पर स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ था, लेकिन इससे केवल यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिये कि ब्राह्मणवादी देवताओं की प्रतिमाएँ नहीं गढ़ी गई थी।

निरंजन रॉय का तर्क है कि मेगस्थनीज, अर्रिअन और स्त्राबों जैसे प्राचीन लेखकों के वृत्तान्त में पाया गया है कि हालांकि नगर भवनों और शाही महलों के नियोजन और निर्माण का श्रेय चन्द्रगुप्त को दिया जा सकता है, लेकिन विशाल कक्षों, विशेषकर स्तम्भों पर बने कक्षों पर

बाद के शासकों, बिन्दुसार, विशेषकर अशोक का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। वह कहते हें कि मौर्य कला के जीते जागते उत्कृष्ट नमूनों में ''(1) शाही महल और पाटलीपुत्र नगर के अवशेष, (2) सारनाथ में पत्थर का जंगला, (3) बोधगया में चार स्तम्भों पर टिका बोधि मण्ड या वेदी, (4) बाराबर और गया के नागार्जुन पहाड़ियों में उत्खनित चैत्य कक्ष और आवासीय गुफा, सुदामा गुफा, जिसका निर्माण काल अशोक के शासन का बारहवाँ वर्ष माना जाता है, इसमें शामिल हैं, (5) राज्यादेश युक्त तथा बिना राज्यादेश वाले स्तम्भ, (6) स्तम्भ शीर्षों पर पशुओं की प्रतिमाएँ तथा फूल–पत्तियाँ उकेर कर सजाए गए स्तम्भों के शीर्ष फलक और (7) उड़ीसा के धौली में चट्टान को तराश कर बनाई गई हाथी की गोलाकार अर्द्ध प्रतिमा शामिल है।

तथापि, और भी ऐसी प्रतिमाऐं और वास्तुशिल्प के अवशेष मिले हैं, जिन्हें शिल्प शैली के आधार पर मौर्य काल से जोड़ा गया है, जैसे कि अर्जुनपुर मथुरा की जालीदार चारदीवारी, स्तूपों के प्राचीनतम भाग, सांची और सोनार से चैत्य कक्षों की बुनियाद, पटना में यक्ष प्रतिमाएँ, मथुरा से प्राप्त लाल बलुआ–पत्थर से बनी प्रतिमाएँ, सारनाथ से प्राप्त कुछ प्रतिमाएँ, दीदारगंज और राजगीर से प्राप्त चंवरधारी यक्ष प्रतिमा, अन्य स्थानों से मिली मिट्टी की कलाकृतियाँ आदि।

2.4.1 शैल स्तम्भ

ऐसा नहीं था कि मौर्यकाल में शैल स्तम्भों के निर्माण का ज्ञान नहीं था। बहुधा मौर्यकालीन स्तम्भों की तुलना अचमेनियन साम्राज्य के स्तम्भों से की जाती है, लेकिन इनकी शैली में अन्तर है। मौर्यकालीन स्तम्भ एक शिलाखण्ड को तराश कर बनाए गए हैं, जबकि अचमेनियन स्तम्भ अनेक छोटे–छोटे शिलाखण्डों को तराश कर और जोड़कर बनाए गए हैं। उकेरे गए लेखों से युक्त शिला स्तम्भ साम्राज्य के सभी स्थानों पर स्थापित किये गये थे। हो सकता है कि राज्य की सत्ता को दर्शाने, विजय स्मारक के रूप में और राजा के धार्मिक उपदेशों को प्रचारित करने के लिए इन्हें लगाया गया होगा। रोमिला थापर का मत है कि ये स्तम्भ या तो मथुरा क्षेत्र से प्राप्त छींटदार लाल–सफेद बलुआ–पत्थरों या चुनार (वाराणसी) क्षेत्र की खदानों से निकाले गए बारीक बजरी से बने बलुआ–पत्थरों से तराशे गए थे। अशोक के समय के कला–अवशेष ज्यादातर शिलालेखों के रूप में हैं, जो सामरिक महत्व के स्थलों, पवित्र स्थानों या कस्बों और बाजारों के समीप लगाए गए थे। ये लेख शिला–खण्डों को तराश कर बनाए गए स्तम्भों पर उत्कीर्ण किये गए हैं। स्तम्भ के शीर्ष भाग पर वृषभ (बैल), सिंह, हाथी आदि की मूर्ति उत्कीर्ण की गई है। ये स्तम्भ वर्गाकार या वृत्ताकार आधार, जिसे फलक कहा जाता है, पर खड़े किये गए हैं। इन फलकों को खूबसूरती के लिए कमल पुष्पों की आकृति उत्कीर्ण की गई है। इन स्तम्भों में काफी समानता है। इससे संकेत मिलता है कि शायद इन स्तम्भों को बनाने वाले शिल्पकार एक ही क्षेत्र से थे। सारनाथ का स्तम्भ, रम्पुरवा का वृषभ स्तम्भ तथा लौरिया नन्दनगढ़ का सिंह स्तम्भ इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

सांची में मिला शीर्ष स्तम्भ, जिसे सिंह स्तम्भ भी कहा जाता है, मौर्यकालीन शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसे राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में भी अपनाया गया है। इसमें वृत्ताकार चबूतरे पर दहाड़ते सिंह की प्रतिमा तराशी गई है। वृत्ताकार चबूतरे पर सिंह, अश्व, हाथी और वृषभ (बैल) के चित्र उकेरे गए हैं। अशोक ने सारनाथ में बुद्ध के प्रथम ऐतिहासिक प्रवचन (धम्म चक्र प्रवर्तन) की स्मृति में यह सिंह स्तम्भ बनवाया था।

2.4.2 विशाल प्रतिमाएँ

इस क्षेत्र से मिली अनेक प्रतिमाओं से पता चलता है कि उस काल में यक्ष पूजा की प्रथा प्रचलित रही होगी। यह इस तथ्य की ओर भी इशारा करता है कि बौद्ध ओर जैनों के धार्मिक स्मारकों में यक्ष पूजा मूर्ति निरूपण का एक लोकप्रिय भाग रहा होगा। पटना, विदिशा और मथुरा में यक्ष और यक्षिणियों की विशाल प्रतिमाएँ मिली हैं। ये प्रतिमाएँ खड़ी मुद्रा में हैं और चमकदार सतह से इनकी पहचान की जा सकती है।

यक्षिणी की प्रतिमा का उत्कृष्ट उदाहरण पटना में दीदारगंज से मिला है। यह प्रतिमा पटना के संग्रहालय में रखी है। बलुआ–पत्थर से तराशी गई यह प्रतिमा खड़ी मुद्रा में है। इसका सुन्दर आनुपातिक अंग विन्यास और सुचिक्कण सतह मौर्यकाल की विकसित और परिष्कृत शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

2.4.3 मिट्टी की मूर्तियाँ

विभिन्न स्थलों से मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ भी मिली हैं। रोमिला थापर का तर्क है कि अहिच्छत्र में मिली मूर्तियों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मौर्यकाल में भी मातृकाओं (मातृ देवी) की परम्परा प्रचलन में थी। वो आगे कहती हैं कि अधिकांश मूर्तियाँ सुसज्जित एवं उन्नत स्वरूप की हैं और इन्हें बहुत सुन्दर तरीके से गढ़ा गया है तथा इनका अलंकरण सुस्पष्ट है। इनमें से कुछ मूर्तियों को सांचे की सहायता से ढाला गया है। तक्षशिला से मिली आकृतियों में आदिम मूर्तियाँ, देवताओं की मूर्तियाँ, खिलौने, पासे, आभूषण, मनके आदि शामिल हैं।

2.4.4 चट्टानों से तराशा गया वास्तु शिल्प

धौली, उड़ीसा में चट्टान से तराशी गयी हाथी की प्रतिमा रैखिक सामंजस्य के साथ वृत्तीय गढ़ाई का उत्कृष्ट प्रतिमान है। इसी परिसर में अशोक के राज्यादेश भी उत्कीर्ण हैं। यह तराशे गए हाथी के केवल अग्रभाग को दर्शाती है। रोमिला थापर की दलील है कि सिंह स्तम्भ बनाने वाले किसी विशेषज्ञ ने नहीं, बल्कि स्थानीय शिल्पकारों ने ही यह हस्त प्रतिमा चट्टान से तराशी होगी। तथापि, वह आगे कहती हैं कि चट्टान से उभरती यह हस्ति प्रतिमा बहुत भव्य है और यह परिसर में मौजूद शिलालेखों की ओर ध्यान आकर्षित करने के प्रयोजन से गढ़ी गई होगी। चट्टानों में तराशे गए वास्तुशिल्प का एक और उल्लेखनीय उदाहरण बिहार में गया के समीप बाराबर और नागार्जुन पहाड़ियों में निर्मित सात गुफाएँ हैं। जैन और बौद्ध भिक्षु इन गुफाओं को विहार के रूप में उपयोग करते थे और ज्यादातर गुफाएँ मौर्यकालीन शासकों द्वारा

दान स्वरूप प्रदान की गई थीं। साधारण विन्यास (प्लान) वाली इन गुफाओं की अत्यन्त सपाट अन्दरूनी दीवारें तथा अलंकृत मुख्य द्वार इनकी विशेषता है। बाराबर पहाड़ियों पर स्थित लोमश ऋषि की गुफा मौर्यकालीन वास्तुशिल्प का शानदार उदाहरण है। गुफा के अग्रभाग में प्रवेश द्वार पर अलंकृत अर्द्धवृत्ताकार चैत्य का मेहराव है, जिसे हाथियों की चित्रवल्लरी से सजाया गया है। इस गुफा का अन्दरूनी कक्ष आयताकार है और इसके पीछे एक वृत्ताकार प्रकोष्ठ है। अशोक ने विशेष रूप से यह गुफा आजीविक पंथ को भेंट की थी।

2.4.5 स्तूप

स्तूप (पवित्र स्मृति अवशेष एवं भस्म रखने के गोलाकार टीले), विहार (भिक्षुओं के आवास) और चैत्य (स्तूप युक्त प्रार्थना कक्ष) जैन और बौद्ध दोनों की स्थापत्य कला का अंग हैं, लेकिन मौर्यकाल में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के फलस्वरूप अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ। इस काल के दौरान राजगृह, कपिलवस्तु, वैशाली, अल्लकप्पा, रामग्राम, वाथदीप, पावा, कुशीनगर और पिप्पलाविना जैसे अनेक स्थलों पर बुद्ध के स्मृति अवशेषों के लिए स्तूपों का निर्माण किया गया। तथापि, जातक परम्परा में अवन्ती तथा गान्धार जैसे अन्य स्थानों पर भी स्तूपों के निर्माण का उल्लेख आया है। मूलतः ये स्तूप ईंटों से बनाए जाते थे और लकड़ी की चारदीवारी से इनका घेरा बनाया जाता था, लेकिन बाद में लकड़ी की जगह पत्थर का इस्तेमाल होने लगा। बाद के काल, अर्थात् ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में स्तूपों के निर्माण के साथ–साथ इसके परिसर के चारों ओर रैलिंग सहित गोल घेरदार रास्ता भी बनाया और मूर्तिकला से सजाया जाने लगा।

इस प्रकार के स्थापत्य के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण राजस्थान के बैराट में हैं। गोलाकार गुम्बद वाले इन विशाल स्तूपों के चारों ओर वृत्ताकार रास्ता बनाया गया है। अशोक के शासनकाल में ईंटों से बना सांची का स्तूप इसका एक और उदाहरण है। इस स्तूप को बाद में पत्थरों तथा अन्य सहायक सामग्री से मढ़ दिया गया था। रोमिला थापर के अनुसार, सांची का स्तूप अपने आप में एक परिपूर्ण शैली है, क्योंकि यह किसी स्मारक को पवित्र मान कर उसका सम्मान करने में किसी समुदाय विशेष की भूमिका का प्रतिनिधित्व करता है।

ये स्तूप दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता पर प्रकाश डालते हैं। इन स्तूपों के मामले में, संरक्षण की एक अलग प्रवृत्ति नजर आती है। इन स्तूपों के संरक्षक श्रद्धालु भी हैं और गृहपतियों से लेकर शाही वंश भी हैं। इस प्रकार समाज में विभिन्न वर्गों ने इन स्तूपों के संरक्षण में भूमिका निभाई।

2.4.6 मृद माण्ड (मिट्टी के बर्तन)

मौर्यकाल की एक खासियत यह थी कि इस काल में अनेक प्रकार के बर्तनों का उपयोग देखने को मिलता है, लेकिन इस काल में नॉर्दन ब्लैक पॉलिश (एन.बी.पी.) वाले बर्तनों के निर्माण की उच्च तकनीक में महारत हासिल हो चुकी थी। एक खास प्रकार का काला रंग,

उच्च क्वालिटी की पॉलिश, आभा और चमक इस तकनीक को और तकनीकों से अलग करती है। यह तकनीक ज्यादातर थालियाँ और तश्तरियाँ तथा बड़े कटोरे बनाने में उपयोग की जाती थी। गंगा की घाटी में ये बर्तन आम थे, लेकिन ये बर्तन अन्य प्रकार के बर्तनों से महंगे थे।

2.5 मौर्य साम्राज्य का पतन

पुराणों में संकेत मिलते हैं कि 187 ई0पू0 में मौर्य साम्राज्य का अन्त हो गया था। इसके अंतिम शासक वृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने हत्या कर के सत्ता हथिया ली थी। पुष्यमित्र शुंग द्वारा वृहद्रथ को अपदस्थ किये जाने और शुंग वंश की नींव रखने की इस घटना की पुष्टि सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट के ग्रंथ ''हर्षचरित'' से भी होती है। यह स्पष्ट नहीं है कि अशोक के बाद मौर्यवंश में कितने शासक हुए थे, लेकिन अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य शासकों की श्रृंखला आधी सदी से भी कम समय में ध्वस्त हो गई थी। हालांकि पौराणिक और बौद्ध साहित्य में अशोक के बाद के कुणाल और सम्प्रान्ति जैसे शासकों का जिक्र आया है, लेकिन इनके बारे में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। बाद के शासकों में सर्वाधिक ऐतिहासिक शासक दशरथ का नाम आता है, जिसने एक शिलालेख जारी किया था।

रोमिला थापर के अनुसार अशोक के शासन के बाद साम्राज्य का विभाजन हो गया होगा और साम्राज्य का यही विभाजन इसके दिन–पर–दिन कमजोर होने का कारण बना होगा। एच. सी. रायचौधुरी और बी.एन. मुखर्जी का तर्क है कि चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक द्वारा खड़ा किया गया विशाल साम्राज्य अशोक के उपरान्त एक के बाद एक कमजोर शासकों के कारण ध्वस्त हुआ होगा। तथापि, रणबीर चक्रवर्ती का मानना है कि हालांकि राजनीतिक सत्ता को मजबूत करने में महान हस्तियों की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। साम्राज्यों का निर्माण और पतन एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को केवल शक्तिशाली शासकों की व्यक्तिगत क्षमता या कम क्षमतावान शासकों की कमजोरी का उल्लेख करके नहीं समझाया जा सकता। वह आगे कहते हैं कि मौर्य साम्राज्य को दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से नव उदीयमान शक्तिशाली बैक्टीरियन ग्रीक, जो उत्तर–पश्चिम से होते हुए गंगा की घाटी में आए होंगे, के हमलों का सामना करना पड़ा होगा और मौर्यों को अपना साम्राज्य एकजुट रखना मुश्किल हो गया होगा।

मौर्य राजकुमारों के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को भी साम्राज्य के कमजोर होने का एक कारण बताया जाता है। प्रान्तों में नियुक्त कुमारों ने केन्द्रीय सत्ता के खिलाफ विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और सम्प्रभुता की माँग करने लगे। इसी प्रकार अशोक की मृत्यु के बाद प्रान्तों के शक्तिशाली राजुकाओं अर्थात् मंत्रियों ने अपने–अपने प्रान्तों में संप्रभु अधिकार हासिल कर लिए और शक्तिशाली बन गए। वे अपने आप को केन्द्रीय सत्ता से आजाद होने की घोषणा करने लगे और अशोक के कमजोर उत्तराधिकारी इनसे नहीं निपट सके। इनमें से कुछ अधिकारी पाटलीपुत्र स्थित मौर्य सत्ता को चुनौती देने के लिए यवनों से हाथ मिलाने लगे।

हरप्रसाद शास्त्री ने तो साम्राज्य के तेजी से पतन के लिए अशोक की ही आलोचना कर डाली है। उनके अनुसार अशोक की धम्म नीति बौद्ध धर्म के समान थी और उसने जानबूझ कर समाज में ब्राह्मणों का दर्जा नीचे गिराया। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक ब्राह्मणों के प्रति सहिष्णु था, लेकिन अंधविश्वासी पशु–बलियों और कर्मकाण्डों को निन्दनीय ठहराने वाली उसकी नीतियों से ब्राह्मणों की आजीविका, सम्मान और हितों को नुकसान पहुँचने लगा। अतः उनका तर्क है कि ब्राह्मण समुदाय की नाराजगी केन्द्र में सत्ता पलट का कारण बनी। इस सैन्य विद्रोह का नेतृत्व ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने किया। तथापि यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि अशोक अपने धम्म के प्रति धर्मान्ध था, लेकिन कभी भी उसने बौद्ध धर्म को राज्य धर्म घोषित नहीं किया। इसके अलावा अशोक के राज्यादेशों से पता चलता है कि सभी धार्मिक समूहों बौद्धों, जैनियों, आजीविकों और ब्राह्मणों को एक समान सम्मान प्राप्त था। चक्रवर्ती का तर्क है कि यदि ब्राह्मणों के प्रति भेदभाव किया जाता, तो पुष्यमित्र शुंग मौर्यों का सेनापति नहीं होता। इसलिए उनका मत है कि पुष्यमित्र का ब्राह्मण होना और उसके द्वारा सत्ता पलट केवल एक संयोग था। एच.सी. रायचौधुरी ने शास्त्री के तर्क की आलोचना की है और साथ ही अशोक के धम्म सिद्धान्त में वे खामियाँ भी देखी हैं, जिसने सेना का स्वरूप (चरित्र) और युद्ध नीति को आमूल–चूल बदल दिया। उनके अनुसार अशोक ने सेना को छिन्न–भिन्न कर दिया और यह अशोक के बाद के शासकों के लिए समस्या बन गया तथा वे यवन–आक्रामकों का मुकाबला नहीं कर सके, लेकिन चक्रवर्ती का तर्क है कि अशोक के राज्यादेशों में कहीं भी कलिंग युद्ध के बाद सेना के विघटन का उल्लेख नहीं है। दरअसल उसके राज्यादेशों में उल्लेख है कि किसी व्यक्ति को केवल एक सीमा तक क्षमा किया जा सकता है। उसने अपने उत्तराधिकारियों को सलाह दी कि जब तक अपरिहार्य या अनिवार्य न हो, हिंसा का सहारा न लें। अतः उसने कहीं भी यह नहीं कहा कि अहिंसा का पूर्ण परित्याग करें। इसके अलावा बौद्ध धर्म का अनुयायी होने के बावजूद अशोक ने अपराध के लिए मृत्युदण्ड के प्रावधान को कभी भी खत्म नहीं किया। ये सभी साक्ष्य संकेत देते हैं कि अशोक की उदार धम्म नीतियों के कारण मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए उसे जिम्मेदार ठहराना सही नहीं है।

ऐसा लगता है कि कुछ इतिहासकारों ने धम्म की भूमिका पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण होगा कि उदार आदर्शों और लक्ष्यों वाली धम्म नीतियाँ समाज में अपनी जड़ जमा सकी थीं या नहीं। धम्म किस सीमा तक जनसाधारण के जीवन में प्रवेश कर सका था और धम्म विविधतापूर्ण समाज और सांस्कृतिक जीवन वाले साम्राज्य की एकजुटता सुनिश्चित करने में कितना सफल रहा। यह मुद्दा इतिहासकारों के वाद–विवाद का विषय रहा है।

विशाल मौर्य साम्राज्य अशोक के शासनकाल में भी समस्यायें पैदा करता रहा था। अशोक ने अपने राज्यादेश में स्वयं स्वीकार किया है कि कई बार उसके अनुदेश न तो अधीनस्थों तक पहुंचे थे और न ही उन अधिकारियों ने ठीक से इनका महत्व समझा था। उसने अपने राज्यादेश में कहा है कि वह प्रान्तों में दमन के बारे में चिन्तित है, इसलिए उसने अपने महामात्रों को आदेश दिया कि अकारण नगरवासियों को यातनायें न दें। ''दिव्यदान'' ग्रन्थ में भी दुष्ट प्रशासकों (दुष्ट मात्य) के कुशासन से तक्षशिला में व्याप्त नाराजगी का उल्लेख किया गया है। विशेष रूप से प्रान्तीय अधिशासकों ने दमनकारी कार्य किये, जिससे जनसाधारण को विद्रोह करना पड़ा। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस विशाल साम्राज्य के प्रबन्धन की समस्या केवल बाद के कम सक्षम मौर्य शासकों के काल में ही नहीं उभरी थी, बल्कि अशोक जैसे शक्तिशाली शासक को भी अपने शासनकाल में इस समस्या का सामना करना पड़ा था।

सुदृढ़ और विशाल सेना तथा बहुसंख्य अधिकारियों के रख–रखाव से कृषक वर्ग पर बहुत दबाव पड़ा होगा। रोमिला थापर का कहना है कि मौर्य कृषि क्षेत्र का विस्तार नहीं कर पाए और बहुत से क्षेत्रों में जरूरत से अधिक उत्पादन नहीं हुआ। डी.डी. कौशाम्बी का तर्क है कि मौर्यों के पतन का कारण केवल अर्थव्यवस्था में गिरावट है। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को उदारता के साथ विशाल मात्रा में दान दिये जाने से मौर्य साम्राज्य को नुकसान हुआ, जिसका बोझ अन्ततः राजकोष पर पड़ा। अशोक के बाद के शासकों को वित्तीय आपदा झेलनी पड़ी और इसकी वजह से जनसाधारण पर करों का बोझ बढ़ा। पतंजलि का ''महाभाष्य'' भी मौर्यों को संदिग्ध तरीकों से स्वर्ण बटोरने वालों की संज्ञा देता है। वह आगे कहता है कि इसके लिए देवताओं की भयभीत करने वाली प्रतिमाएँ स्थापित की जाती थी और प्रजा को देवताओं को प्रसन्न करने के लिए दान देने हेतु प्रोत्साहित किया जाता था और बाद में गुप्तचर इस सम्पत्ति को गुप्तचरों की सहायता से खजाने में पहुँचा दिया जाता था। एक मत यह भी है कि बाद के मौर्य शासकों ने स्वर्ण प्रतिमाओं को गलवा दिया था।

2.6 सार–संक्षेप

मौर्य साम्राज्य अशोक के काल तक सहज रूप से चलता रहा। साम्राज्य के संगठन अधिकारियों के पदानुक्रम पर आधारित थे। प्रत्येक को कुछ खास कर्तव्य सौंपे गए थे। नगर, जनपद और ग्राम स्तर पर एक वास्तविक विशाल प्रशासन तंत्र राज्य के कार्यों के कारगर प्रबन्धन का संकेत देते हैं। विभिन्न संसाधनों से सृजित करों से राज्य के स्थायित्व और इसके प्रशासन के अनुरक्षण में सहायता मिली। तथापि अशोक की मृत्यु के बाद प्रशासनिक व्यवस्था ध्वस्त होने लगी और इसका कारण कुमारों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा तथा प्रान्तीय अधिकारियों का मौर्य सत्ता से स्वयं को आजाद घोषित करना रहा। इसके अलावा कमजोर शासक, दूरदृष्टि की कमी और अशोक की धम्म नीति भी विशाल साम्राज्य के पतन के कारणों के रूप में चर्चा

का विषय बनी। मौर्यकालीन प्रशासन केन्द्रीयकृत था या विकेन्द्रीकृत, इस बारे में विभिन्न इतिहासकारों के बीच भी लम्बा वाद–विवाद हुआ है। इसी प्रकार मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण भी बहस का मुद्दा रहे हैं। इसके बावजूद इन सबका कोई एक निर्णायक उत्तर नहीं मिला है। मौर्य काल में कला के पोषण के अनेक उदाहरण, शानदार स्तम्भों, चट्टानों से तराशे गए स्थापत्य शिल्प, स्मारक और स्तूप हैं, किन्तु इन कलाकृतियों पर ईरानी प्रभाव पर बहुधा वाद–विवाद हुआ है। इन प्रश्नों का उत्तर कुछ भी हो, लेकिन तथ्य यह है कि मौर्यों को एक ऐसे प्रथम शासक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिन्होंने सही मायने में एक साम्राज्य स्थापित किया था, जिसे वे विस्तारित भी कर सके और नियंत्रित भी कर सके।

2.7 संदर्भ एवं अनुशंसित पुस्तकें

- चक्रवर्ती, रणबीर, *दी मौर्याज़ इन, दिलीप के. चक्रवर्ती एण्ड मक्खन लाल (सम्पा0), हिस्ट्री ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया, वॉल्यूम III, दी टैक्स, पॉलिटिकल हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन टिल 200 बी0सी0,* आर्यन बुक इन्टरनेशनल, नई दिल्ली, 2014।
- कुमारस्वामी, आनन्द के0, *इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट,* थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास, 1923।
- कौशाम्बी, डी.डी., *दी कल्चर एण्ड सिविलाइज़ेशन ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन,* विकास पब्लिशिंग हाउस, 1997 (1966)।
- मुखर्जी, बी.एन., *दी करेक्टर ऑफ दी मौर्यन एम्पायर,* यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2000।
- रॉय, हिमांशु पी., *इन्टरप्रेटिंग दी मौर्यन एम्पायर, सेन्ट्रेलाइज़्ड एण्ड मल्टीपल सेन्टर्स ऑफ कन्ट्रोल इन ग्रान्ट पार्कर एण्ड कार्ला सिनोपोली (सम्पा0) एनशिएन्ट इण्डिया इन दी वाइडर वर्ल्ड,* युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2008, पीपी–1351।
- रायचौधुरी, एच.सी., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया, फ्रॉम दी एक्सेशन ऑफ परीक्षित टू दी एक्सटिंक्शन ऑफ दी गुप्त डायनेस्टी,* युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता प्रेस, 1927।
- शास्त्री, के.ए., नीलकान्त (सम्पा0) *ऐज ऑफ दी नन्दाज़ एण्ड मौर्याज़,* मोती लाल बनारसी दास, 1996 (1952)।
- शर्मा, आर.एस., *आसपेक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज़ एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एनशिएन्ट इण्डिया,* मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, 1996।
- थापर, रोमिला, *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम–I*, पेंगुइन बुक्स, 1990 (1996)।
- थापर, रोमिला, *अशोक एण्ड डिक्लाइन ऑफ दी मौर्याज़,* ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2012 (1973)।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौर्य प्रशासन का विस्तार से वर्णन करें।
2. मौर्यकाल की कला और स्थापत्य की व्याख्या करें।
3. मौर्यकालीन कला के किसी एक उदाहरण पर टिप्पणी करें।
4. मौर्य शासन के पतन से सम्बन्धित विवादित मुद्दे क्या हैं ? इनके बारे में आपकी क्या राय है ?

इकाई तीनः संगमकालीन दक्षिण भारत तथा संगम साहित्य

3.1 उद्देश्य

3.2 परिचय

3.3 संगम साहित्य के ज्ञात राजैनेतिक इतिहास

3.3.1 चोल

3.3.2 चेर

3.3.3 पाण्ड्य

3.4 शासन व्यवस्था

3.5 सांस्कृतिक व्यवस्था

3.5.1 सामाजिक व्यवस्था

3.5.2 आर्थिक व्यवस्था

3.5.3 धार्मिक व्यवस्था

3.5.4 कला एवं स्थापत्य

3.6 संगम साहित्य

3.6.1 प्रथम संगम

3.6.2 द्वितीय संगम

3.6.3 तृतीय संगम

3.5.4 उपलब्ध संगम साहित्य

3.7 सारांश

3.8 प्रस्तावित पुस्तक

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 परिचय

संगमकालीन दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड है जो ई0 पू0 तीसरी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक के इतिहास को अपने में समाहित किये हुए है। सुदूर दक्षिण भारत के कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के बीच के क्षेत्र को तमिल प्रदेश कहा जाता है। इस प्रदेश में अनेक छोटे–छोटे राज्यों का अस्तित्व था जिसमें चोल, चेर एवं पाण्ड्य प्रमुख था।

दक्षिण भारत के इस प्रदेश में तमिल कवियों द्वारा सभाओं तथा गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। इन गोष्ठियों में विद्वानों के मध्य विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श किया जाता था। इसे ही संगम के नाम से जाना जाता है। 100 ई0 से 250 ई0 के मध्य दक्षिण भारत में तीन संगमो का आयोजन किया गया। इस युग को ही इतिहास में संगम युग के नाम से जाना जाता है। सर्वप्रथम इन गोष्ठियों का आयोजन पाण्ड्य राजाओं के राजकीय संरक्षण में किया गया था। जिसकी राजधानी मदुरई थी।

3.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य मुख्य रूप से संगमकालीन दक्षिण भारत का इतिहास के विभिन्न विचार बिंदुओं को समझना है। संगम साहित्य के ज्ञात संगमकालीन संस्कृति यथा–सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, कला एवं साहित्य के साथ–साथ संगम साहित्यों का विस्तृत वर्णन करना है।

3.3 संगम साहित्य से ज्ञात राजनैतिक इतिहास

3.3.1 चोल

संगम युगीन राज्यों में सर्वाधिक शक्तिशाली चोलो का राज्य था। इसके अंतर्गत चित्तुर, उत्तरी अर्काट, मद्रास से चिंगलपुत्त तक का भाग, दक्षिणी अर्काट, तंजौर, त्रिचनापल्ली का क्षेत्र सम्मिलित था। संगम काल का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण शासक करिकाल था। इसने चेर तथा पाण्ड्य राजाओ को परास्त कर कावेरी नदी घाटी तक अपनी विजय पताका लहराया। यह ब्राह्मण मतानुयायी था तथा उसने इस धर्म को राजकीय संरक्षण भी दिया। वह स्वयं एक विद्वान, विद्वानो का आश्रयदाता, महान निर्माता, प्रजावत्सल्य के साथ एक महान विजेता भी था। पुहार पतन का निर्माण इसी के समय में हुआ। कावेरी नदी पर बांध का निर्माण इसी के समय में हुआ। कावेरी नदी पर बांध का निर्माण कर इसने सिंचाई के लिए नहरें निकलवाई। चोलो का प्रारंभिक राजधानी उरैयुर था किंतु कालांतर में कावेरीपत्तनम बन गया।

करिकाल की उपलब्धियों का अत्यन्त अतिश्योक्तिपूर्ण विवरण हमें प्राप्त होता है। बताया गया है कि उसने हिमालय तक सैनिक अभियान किया तथा वज्र, मगध और अवन्ति राज्यों को जीत लिया। इसी प्रकार कुछ अनुश्रुतियों में उसकी सिंहल विजय का वृत्तान्त मिलता है। बताया गया है कि करिकाल ने सिंहल से 12000 युद्ध बन्दियों को लाकर पुहार के समुद्री बन्दरगाह के निर्माण में लगा दिया था। किन्तु इस प्रकार के विवरण काल्पनिक प्रतीत होते हैं तथा इन्हें पुष्ट करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

करिकाल के पश्चात् चोलों की शक्ति निर्बल पड़ने लगी। उसके तीन पुत्र थे– नलंगिली, नेडुमुदुक्किलि तथा मावलत्तान। इनमें नलंगिल्ली के सम्बन्ध में हमें कुछ पता है। ऐसा लगता है कि इस समय चोल

वंश दो शाखाओं में विभक्त हो गया। नलंगिल्ली ने करिकाल के तमिल राज्य पर शासन किया। उसकी एक प्रतिद्वन्दी शाखा नेडुनगिल्ली के अधीन संगठित हो गयी। दोनों के बीच एक दीर्घकालीन गृहयुद्ध छिड़ा। अन्तोगत्वा कारियारु के युद्ध में नेडुनगिल्ली पराजित हुआ तथा मार डाला गया। इस युद्ध का विवरण मणिमेकलै में प्राप्त होता है। इन दो राजाओं का एक अन्य समकालीन कलिवलवन् था जो उरैयूर में राज्य करता था। वह एक शक्तिशाली शासक था जिसने चेरों को हराकर उनकी राजधानी करूर के ऊपर अधिकार जमा लिया।

उपर्युक्त शासकों के अतिरिक्त संगम साहित्य में चोल वंश के कुछ राजाओं के नाम भी प्राप्त होते है– कोप्परुन्जोलन, पेरुनरकिल्लि, कोञ्चेगणन् आदि। इनके संबन्ध में जो विवरण सुरक्षित है, उनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। उनकी उपलब्धियाँ काव्य का विषय है, इतिहास की नहीं। संगम युगीन चोल शासकों ने तीसरी–चौथी शती तक शासन किया। तत्पश्चात् उरैयूर के चोलवंश का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो जाता है। नवीं शताब्दी के मध्य विजयालय के नेतृत्व में पुनः सत्ता का उत्थान हुआ।

3.3.2 चेर

संगम युग का दूसरा राज्य चेर था जो आधुनिक केरल में स्थित था। इसके अंतर्गत कोयम्बटूर का कुछ भाग एवं सलेम (प्राचीन कोंगू जनपद) भी सम्मिलित थे। इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक उदियंजीरल (लगभग 130 ई0) हुआ। इसका प्रमुख एवं प्रतापी शासक सेनगुट्टवन था जो आदन् के पुत्रो में से एक था। इसके यश का गान संगम युग के सुप्रसिद्ध कवि परिणर ने किया है। वह एक वीर योद्धा के साथ–साथ कुशल सेनानायक भी था। उसके पास घोड़े, हाथी एवं नौसैनिक बेड़ा थी था। इसने अधिराज की उपाधि ग्रहण की थी। उसने पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के बीच अपना राज्य विस्तृत किया वह साहित्य एवं कला का उदार संरक्षक था। इसने पत्तिनी नामक धार्मिक संप्रदाय को समाज में प्रतिष्ठित किया एवं पत्तिनी देवी की पूजा प्रारंभ करवाई। चेरो की राजधानी करूयुर अथवा बाजीपुर थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि सेनगुट्टुवन के बाद चेरवंश कई उप–शाखाओं में बँट गया। उसके बाद के महत्वपर्ण चेर शासक अन्दुवन् तथा उसका पुत्र वाली आदन थे। तत्पश्चात् अय और पारि राजा बने। इन सभी ने अल्पकाल तक शासन किया। वे ब्राह्मण धर्म तथा साहित्य के संरक्षक थे। ये सभी उपशाखा के शासक प्रतीत होते हैं।

चेरवंश की मुख्य शाखा में सेनगुट्टुवन का पुत्र पेरूञ्जीरल इरूमपौरै (लग० 190 ई०) शासक बना। वह महान् विजेता था। उसके विरूद्ध सामन्त अडिगैमान ने चोल तथा पाण्ड्य राजाओं को मिलाकर एक मोर्चा तैयार किया। किन्तु इरूमपौरै ने अकेले ही तीनों को पराजित कर दिया तथा तगदूर नामक किले पर अपना अधिकार जमा लिया। बाद में अडिगैमान उसका मित्र बन गया। चेरवंश का अगला राजा कडक्को इलंजीराल इरूमपोरै हुआ। उसने भी चोल तथा पाण्ड्य राजाओं के विरूद्ध सफलता प्राप्त की। संगम काल का अन्तिम चेर शासक सेईयै (लगभग 210 ई॰) हुआ। उसके समकालीन पाण्ड्य शासक नेडुंजेलियन ने उसे पराजित कर चेर राज्य की स्वाधीनता का अन्त कर दिया।

3.3.3 पाण्ड्य

संगम युग का तीसरा राज्य पाण्ड्यों का था। यह राज्य कावेरी के दक्षिण में स्थित था। इसमें आधुनिक मदुरा तथा तिन्नेवल्ली के जिले और त्रावणकोर का कुछ भाग शामिल था। इसकी राजधानी मदुरा थी। संगम साहित्य में पाण्ड्य राजाओं का जो विवरण प्राप्त होता है वह अत्यन्त भ्रामक है तथा उसके आधार पर हम उनके इतिहास का क्रमबद्ध विवरण नहीं जान सकते। इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली राजा नेडुंजेलियन (लगभग 210 ई०) हुआ। पूर्ववर्ती तीन राजाओं के नाम संगम साहित्य से ज्ञात होते हैं– नेडियोन् पलशालै, मुदुकुडमै तथा नेडुंजेलियन्। किन्तु इनके शासन काल की घटनाओं के विषय में कुछ भी पता नहीं हैं। उनका काल भी ठीक ढ़ंग से निर्धारित कर पाना कठिन हैं।

राजगद्दी प्राप्त करने के समय नेडुंन्जेलियन अल्पायू था। उसके सम्मुख एक भारी विपत्ति आई। चेर, चोल तथा पाँच अन्य राजाओं ने मिलकर उसके राज्य को जीता था राजधानी मदुरा को घेर लिया। किन्तु नेडुन्जेलियन अत्यन्त वीर तथा साहसी था। उसने अपने शत्रुओं को राजधानी से खदेड़ दिया। वह उनका पीछा करते हुए चोल राज्य की सीमा में घुस गया जहाँ तलैयालनगानमे (तंजोर जिला) के युद्ध में सभी को बुरी तरह परास्त किया। चेर शासक शेय को उसने बन्दी बनाकर अपने कारागार में डाल दिया। इसके अतिरिक्त मिल्लै तथा मुतुरू नामक दो प्रदेशों पर भी उसने अधिकार कर लिया। इस प्रकार अल्पकाल में ही उसने न केवल अपने पैतृक राज्य को सुरक्षित किया, अपितु उसका विस्तार भी कर दिया।

महान् विजेता होने के साथ–साथ नेडुन्जेलियन विद्वान् तथा विद्वानों का आश्रयदाता, उदार प्रशासक एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। संगम युगीन कवियों ने उसकी उदारता एवं दानशीलता की प्रशंसा की हैं। वह वैदिक धर्म का पोषक था तथा उसने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करवाया था। उसकी राजधानी मदुरा तत्कालीन भारत की अत्यन्त प्रसिद्ध व्यापारिक एवं सांस्कृतिक नगरी बन गयी थी।

नेडुन्जेलियन् के पश्चात् कुछ समय के लिए पाण्ड्य राज्य का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो गया। सातवीं शताब्दी में पाण्ड्य सत्ता का पुनः उत्कर्ष हुआ।

3.4 शासन व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यों के अनुसार इस समय वंशानुगत राजतंत्र का ही प्रचलन था। जो ज्येष्ठता पर आधारित था। राजा का चरित्रवान, प्रजापालक, निष्पक्ष तथा संयमी होना अनिवार्य था। राजा की शक्ति सर्वोच्च होती थी। उसके अधिकार तथा शक्तियाँ असीमित थी। वह सैद्धातिंक रूप से निरंकुश होते हुए भी व्यवहारिक रूप से प्रजावत्सल्य था। उसे उसके बुद्धिमान मंत्री तथा दरबारी कविगण उसे निरंकुश होने से बचाते थे। मंत्रियो को अमाइच्चार अथवा अमाइच्चर कहा जाता था। राजसभा को मनडाय कहा जाता था। जहाँ राजा द्वारा न्याय का कार्य किया जाता था। राजा अपने जीवन काल में ही युवराज का चुनाव कर देते हैं। युवराज को कोमहन तथा अन्य पुत्रों को इलेंगों कहा जाता था। राजा के निःसंतान मरने पर मंत्रियो तथा प्रजा द्वारा राजा का चुनाव किया जाता था। राजा का जन्मदिन इस युग में एक महोत्सव की तरह मनाया जाता था। राज्याभिषेक का प्रचलन नहीं था किंतु राजा के

सिंहासनारूढ़ होने के समय उत्सव का आयोजन किया जाता था। दरबार में कवियों एवं विद्वानों का स्थान सम्मानजनक था।

राजा अपने परामर्शदाताओं की सहायता से शासन कार्य का संचालन करते थे। मुख्य परामर्शदाता थे – पुरोहित, वैश्य, ज्योतिष एवं मंत्रीगण। परामर्शदाताओं की सभा के पंचवारक कहा जाता था। राजा शासन कार्य के संचालन में गुप्तचरों की भी सहायता लिया करता था। गुप्तचरों को ओर्टर कहा जाता था। इस समय दंड व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। मृत्युदंड, कारावास, आर्थिक जूर्माना आदि विविध रूपों में दंड प्रदान किये जाते थे। अपराधी को कभी–कभी भीषण यातनाएं भी जाती थी। न्यायाधीश को निष्पक्ष न्याय देने की आशा की जाती थी। राजा सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था तथा मनडाय अर्थात् राजसभा राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय होता था तथा मन्नरम न्याय की सबसे छोटी इकाई थी।

इस युग की शासक युद्ध प्रेमी थे। वे चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा रखते थे। युद्ध में वीरगति पाना अत्यंत शुभ कार्य माना जाता था। राजा की सेना में पेशेवर सैनिक हीं होते थे। राजा के पास चतुर्रंगिणी सेना अर्थात् अश्व सेना, रथ सेना, हस्ति सेना, एवं पैदल सेना होती थी। सैनिको द्वारा जिन शस्त्रों का मुख्यतया प्रयोग किया जाता था, वे थे – वेल (भाला), विल (धनुष), कोल (वाण), वाल(खड़ग) तथा कवच आदि। शहीद सैनिको की याद में शिविर लगाये जाते थे। वीरगति प्राप्त योद्धाओं की पाषाण मूर्तियाँ बनाकर देवताओं की तरह उनकी पूजा की जाती थी। सेनाओं के लिए एक विशेष समारोह का आयोजन किया जाता था जिसमें सेनापतियों को एकाडि की विशेष उपाधि प्रदान की जाती थी। नगर एवं ग्राम प्रशासन की मुख्य इकाईयाँ थी, जहाँ का प्रशासन स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता था। उर नाम की संस्था द्वारा नगर प्रशासन का संचालन किया जाता था। ग्राम प्रशासन मन्नरम, पोदइल, अम्बलय तथा अपै के निर्देशन में संभाला जाता था।

3.5 सांस्कृतिक व्यवस्था

सगंमयुगीन सांस्कृतिक जीवन की प्रमुख विशेषता है आर्य तथा आर्येत्तर सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय। दक्षिण की संस्कृति में उत्तर भारत की संस्कृति के अनेक तत्त्व पाए जाते हैं, तथा उत्तर भारतीय संस्कृति का प्रभाव संगम साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है।

3.5.1 सामाजिक व्यवस्था

संगम साहित्यानुसार हमें तमिल देश की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है। इस समय तक सुदुर दक्षिण का आर्यीकरण हो चुका था। यह साहित्य हमारे सामने आर्य तथा द्रविड़ संस्कृतियों के समन्वय का चित्र प्रस्तुत करता है। प्राचीन तमिल समाज का स्वरूप मूलतः जनजातीय था परन्तु कृषि क्षेत्र धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहा था। धीरे–धीरे पुरानी नातेदारी व्यवस्था टूट कर वैदिक वर्ण स्थापित हो रही थी किन्तु संगम युग में कही भी स्पष्टतः वर्ण विभाजन देखने को नहीं मिलता है। इसके बावजूद भी समाज को ब्राहमणों को सम्मान जनक स्थान प्राप्त था। इस युग में केवल ब्राह्मण ही यज्ञोपवीत धारण कर सकते थे।

समाज के अन्य वर्गो के लोगों को उनके प्रातीय मूल के नाम से जाना जाता था। यथा पर्वतीय क्षेत्र के लोगों को **कुटिन्जी,** समुद्रतटीय क्षेत्र के लोगों को **नैइडल** आदि नामों से जाना जाता था इस काल की प्रमुख जातियों के विषय में **तोलकत्पियम** नामक ग्रंथ में विस्तार से जानकारी दी गई हैं। इस ग्रंथ के अनुसार इस काल की प्रमुख जातियाँ थी टुडियान, परैयान, कादम्बन, पानन आदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त संगम साहित्य में समाज के चार वर्गों में विभाजन की जानकारी मिलती है, ये चार वर्ग थे

1. अरसर–राजपरिवार से जुड़ा व्यक्ति ←शासक वर्ग
2. बेनिगर–वणिक वर्ग
3. बल्लाल–बड़े पृथक वर्ग, जो कि प्रतिष्ठित थे
4. बेल्लार–मजदुर कृषक वर्ग

संगम युग में हमें तीव्र सामाजिक विषमता का बोध होता है। धनी लोग ईट और सुरखी के मकानों में और गरीब लोग झुग्गी–झोपड़ी में रहते थे। समाज में अश्पृश्यता तो थी किन्तु दास प्रथा नहीं थी। कुछ विशेष पेशों में आने वाले लोगों में **कोल्लम** (लोहार), **तच्चन** (बढ़ई), **कवन** (नमक का व्यापारी) **कुलवा** (अनाज का व्यापारी), वैवानिकम (वस्त्रों का व्यापारी) और **पोन**, **वाणिकम** (स्वर्ण व्यापारी)। बाद में व्यापारी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत आ गए। निम्न वर्गो के लोगों के स्थिति अत्यंत सामान्य थी।

इस युग में विवाह को एक संस्कार माना जाता था और प्राचीन काल के समान ही **आठ_प्रकार** के समाज में विवाह का प्रचलन था। तमिल देश में स्त्री और पुरूष के प्रणय को पाँच तिन्नई कहा जाता था। एक पक्षीय प्रेम को **कक्किन** कहा जाता था। औचित्यहीन प्रेम को **पेरून्दिणे** कहा जाता था। संगम कालीन समाज के मातृसतात्मक होने का संकेत मिलता है। यद्यपि उच्च वर्गो में **सती–प्रथा** का संकेत मिलता है, इस समाज में **मुरूगन** की उपासना सबसे प्राचीन थी। इसकी उपासना में किया जाने वाला नृत्य **बेलनाडन** कहलाता था, संगम समाज में **कौआ** शुभ पक्षी के रूप में माना जाता था क्योंकि इसका संबंध अतिथि आगमन से था।

समाज में स्त्री का स्थान पुरूषों की अपेक्षा अत्यंत निम्न/ दयनीय था। कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। स्त्रीयों को सम्पति में कोई अधिकार नहीं था। वह शिक्षा ग्रहण करती थी, सामाजिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी, राजा के अंगरक्षक के रूप में न्युक्त होती थी। पत्नि को घर में आदरणीय स्थान प्राप्त था। नृत्य करने वाली स्त्री घरेलु स्त्री के लिए अशुभ मानी जाती थी। विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। परिवार पितृसतात्मक था। निम्न वर्ग को स्त्रीयाँ खेतों में कम करती थी। विधवाओं की स्थिति इतनी दयनीय थी कि वे स्वेच्छा से सती होना पसन्द करती थी। स्वैच्छिक सती का प्रचलन संगम कालीन समाज में था। इस समाज में गणिकाओं एवं नर्तकियों के रूप में क्रमशः **परत्तियर** व **कणिगैचर** का उल्लेस मिलता है। ये वेश्यावृति द्वारा जीवनयापन करती थी।

संगम युग में समाज के सभी वर्गो में शिक्षा का प्रचलन था, जो कि तत्कालीन युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। साहित्य, विज्ञान, गणित, व्याकरण आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षकों को **कणक्काटम्** तथा विद्यार्थियों को **पिल्लै** कहा जाता था। मंदिर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के तथा इस युग में **गुरूदक्षिणा** का प्रचलन था। चित्रकला, मूतिकला का भी विकास इस युग में हो गया था। स्त्री शिक्षा

का प्रचलन भी इस समाज में था। उच्च वर्ग की कुछ स्त्रियाँ जैसे–**ओवैयर** एवं **नच्चेलियर** ने एक सफल कवयित्री के रूप में अपने को स्थापित किया। शिकार खेलना, कुश्ती लड़ना, धूत, गोली खेलना, कविता, नाटक, नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। इस युग में प्रमुख वाद्य यंत्र के रूप में **याल** जो तारयुक्त होता था, प्रयोग किया जाता था?

3.5.2 आर्थिक व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यानुसार हमें इस काल की आर्थिक व्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक जानकारी प्राप्त होती है। इस समय यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से अत्यंत्र समृद्ध थी। इसकी समृद्धि का मूलाधार था–कृषि एवं व्यापार वाणिज्य। उपहार के द्वारा आर्थिक पुनर्वितरण होता था। समृद्ध और शक्तिशाली वर्ग में तीन प्रकार के लोग थे– वेतर, वेलिट एवं वेल्लार।

कृषि देश की आर्थिक स्थिति की मूलाधार थी। चावल, राई, गन्ना, कपास आदि की खेती की जाती थी। नदियों तथा तालाबों के द्वारा सिंचाई की व्यवस्था थी। साहित्यों में फसल काटने, अनाजों को सुखाने, गन्ने से शक्कर तैयार करने आदि का रोचक वर्णण मिलता है। किसानों को **वेल्लार** तथा इनके प्रमुखों को **वेलिर** कहा जाता था। काले तथा लाल मिट्टी के बर्तनों एवं लोहें के आविष्कार का श्रेय **वेलिर** लोगों को ही दिया जाता है। संगम साहित्य से पता चलता है कि समाज के निम्न वर्ग की महिलाएँ ही मुख्यतः कृषिकार्य किया करती थी जिसे **कडैसिवर** कहा गया हैं,

भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था, जो उपज का 1/6 भाग बसूल किया जाता था। भूमिकर को **कराई** कहा जाता था। उस समय **पारी** नामक राज्य कटहल और शहद तथा **चेर राज्य** कटहल, काली मिर्च एवं हल्दी की खेती के लिए विख्यात थे। अन्य कर के रूप में सम्पति कर, बंदरगाह कर तथा लूट के धन पर भी कर की उगाही की जाती थी। सामंतों द्वारा दिया जाने वाला कर एवं लूट द्वारा प्राप्त धन **दुराई** कहलाता था। आवश्यकतानुसार प्रजा से अधिक कर भी बसुला जाता था जिसे **इरावु** कहा जाता था। कृषि के अतिरिक्त कपड़ा बुनना प्रमुख उद्योग था उरैयार तथा मदुरई वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त रस्सी बाँटना, हाथी दांत की वस्तुएँ बनाना, जहाज निर्माण, सोने के आभूषण बनाना तथा समुद्र से मोती निकालने का कार्य भी किया जाता था, जो राज्य के आर्थिक आधार को सशक्त बनाता था।

इस समय आंतरिक तथा बाह्य व्यापार की दशा उन्नत थी। आंतरिक व्यापार मुख्यतया वस्तु विनिमय के द्वारा होता था। वस्तु विनियम प्रणाली में ऋण व्यवस्था नहीं किसी वस्तु के बदले निश्चित ऋण प्राप्त किया जा सकता था किंतु उसे उसी मात्रा में लौटाया भी जाना था। यह प्रथा **कुरीटिरपरई** कहलाती थी। धान और नमक दो ही ऐसी वस्तु थी, जिसकी निश्चित विनिमय दर थी। धान की समान मात्रा के बराबर नमक दिया जाता था।

उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के बीच व्यापार की चर्चा 4 थी ई॰पू॰ से ही ज्ञात होती है। जिस मार्ग से व्यापार होती थी वह गंगा घाटी से गोदावरी घाटी तक जाता था। यह मार्ग **दक्षिणापथ** के नाम से माना जाता है। कौटिल्य ने दक्षिण मार्ग को अनेक नाम गिनाएँ हैं। उत्तर और दक्षिण के बीच

अधिकांश व्यापार के मुधे भोग–विलास की वस्तुएँ थी जैसे–स्वर्ण, मोती, अन्य रत्न आदि। उत्तम वस्त्रों के साथ–साथ उत्तरी काली मृदभांड जो सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय था, का भी व्यापार होता था।

पेरीप्लस के अनुसार **टिंडिस**, **मुजरिस**, **नेलसिंडा** आदि पश्चिमी समुद्रतट पर महत्वपूर्ण बंदरगाह थे। पेरीप्लस **अरगूडु** या **उरैयुर** नामक स्थान की भी चर्चा करता है। यहाँ से **अरगटिक** नामक मलमल का निर्यात होता था। इस समय तमिल देश का व्यापार पश्चिम में मिस्त्र तथा अरब के यूनानी राज्य से तथा पूर्व में मलय द्वीप–समूह तथा चीन के साथ होता था। कालीमिर्च, हाथीदाँत, मोती मलमल, रेशम आदि प्रचुर मात्रा में यहाँ मिलते थे जिनकी माँग पश्चिमी देशों में काफी थी। चोल राज्य में **पुहार** (कावेरीपत्तनम), पाण्ड्य युग में **शालीयूर** और चेर राज्य में **बंदर** नामक प्रमुख बंदरगाह थे। चेरों की प्राचीन राजधानी करूयुर (बंजीपुर) से रोमन समाग्री प्राप्त होती है। मुजरिस में रोमन सम्राट अगस्त्य का मंदिर रोमनों के द्वारा बनाया गया था जो विदेशी व्यापार का संकेत अर्थात् विदेशियों से संपर्क का संकेत देते हैं। **विरूक्काम्पालिया** नामक स्थान चोल, चेर एवं पांण्ड्य राज्य के संगम स्थल के रूप हैं। इस समय व्यापारिक (स्थल मार्ग) कारवां का नेतृत्व करने वाले सार्थवाह को **वासातुस्वा** एवं समुद्री सार्थवाह मानानिकम कहा जाता था।

व्यापारिक गतिविधि में सिक्को के प्रमाण भी मिले है। इस समय तमिल साहित्यों के अनुसार– **काशु**, **कनम**, **पोन** और **बेनपोन** आदि सिक्के की जानकारी मिलती है। आहत सिक्के भी प्राप्त होते है, दश्तकारों को अपने उत्पादों पर शुल्क देना पड़ता था जिसे **कारूकारा** कहा जाता था,

भूमि निर्वतन के अनुसर मापी जाती थी। सुदुर दक्षिण में **मा** और **वेली** भूमि के माप थे। यहाँ कर देने के लिए अनाज कों अम्बानम् में तौला जाता था। संभवतः यह बड़ा तौल था। छोटे तौल के रूप में **नालि**, **उलाकू** और **अलाक** प्रचलित थे।

3.5.3 धार्मिक व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यानुसार हमें इस समय धार्मिक व्यवस्था एवं रीतियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस युग ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म का प्रचलन दिखाई देता है। अनुश्रुतियों के अनुसार दक्षिण में वैदिक संस्कृति को उत्तर भारत ले जाने का श्रेय **अगस्त्य ऋषि** को दिया जाता है। आज भी दक्षिण में अगस्त्य पूजा का व्यापक रूप से प्रचलन है। साथ ही साथ **कौंडिन्य ऋषि** का भी दक्षिण से पर्याप्त संबंध रहा है। यहाँ के अनेक मंदिर **अगस्तेश्वर** नाम से प्रसिद्ध है जहाँ शिव की मूर्तियाँ स्थापित है। एक परंपरा के अनुसार पाण्ड्य राजवंश के पुरोहित अगस्त्य वंश के पुरोहित होते थे। ऐसा ही एक परंपरा अनुश्रुतियों के अनुसार तमिल भाषा तथा व्याकरण की उत्पति अगस्त्य ऋषि ने की। महाभारत एवं पुराणा में भी दक्षिण में कृषि के विस्तार से अगस्त्य का संबंध जोड़ा जाता है।

दक्षिण भारत में सबसे प्रमुख देवता **मुरूगन** थे। बाद में इनका नाम **सुब्रमण्यम** हो गया और **स्कन्द कार्त्तिकेय** से इस देवता का एकीकरण हो गया। मुरूगन का एक अन्य नाम बेल्लन भी है जिसका संबंध **बेल** से है। यह इस देवता का प्रमुख अस्त्र था। जैनधर्म तथा बौद्ध धर्म का समाज में नाम मात्र ही प्रचलन था। इस समय मुख्य उपास्प देवता थे– **विष्णु**, **शिव**, **श्री कृष्ण**, **बलराम**, आदि इसके अतिरिक्त **वीर पूजा** तथा **सतीपूजा** का भी प्रचलन था। किसान लोग **मरूडम** (इन्द्र) की पूजा करते थे।

पुहार के वार्षिक उत्सव में इन्द्र की विशेष प्रकार की पूजा होती है, **कौईलै** विजय की देवी थी। स्कंद कार्त्तिकेय को शिव–पार्वती के पुत्र के रूप में माना जाता है, तमिल प्रदेश में **मुरूगन** का प्रतीक **मूर्गा** (कुक्कुट) को माना गया है जिसे पर्वत शिखर पर कीड़ा करना पसन्द है। इस काल में **बलि–प्रथा** का भी प्रचलन था। देवताओं की पूजा अर्चना के लिए मंदिरों की व्यवस्था थी, जिन्हें नागर, कोट्टम, पुराई या कोसी कहा जाता था। यद्यपि मंदिर अपने अस्तित्व में थे तथापि धार्मिक कार्यो का अधिकांशतः आयोजन खुले वृक्षों के नीचे किया जाता था।

3.5.4 कला एवं स्थापत्य

संगम साहित्य से तमिल प्रदेश में कला एवं स्थापत्य के विकास के विषय में भी कुछ जानकारी मिलती है। धनी वर्गों के घर ईंट और चूने से बनाए जाते थे, जबकि निर्धन वर्ग फूस की झोंपड़ियों में रहता था। दीवारों पर सुंदर भित्ति चित्र बनाए जाते थे। नगर–निर्माण सुनियोजित ढंग से होता था। नगर–निर्माण की प्रचलित परंपराओं का पालन किया जाता था। नगरों की सुरक्षा के लिए प्राचीर का निर्माण किया जाता था। उसके चारों ओर गहरी खाइयाँ खोदी जाती थीं। पुहार नगर का विशद् वर्णन संगम साहित्य में मिलता है। नगर दो भागों में बसा हुआ था। समुद्रतटीय भाग में व्यापारियों, कारीगरों तथा यवनों की बस्तियाँ, दुकाने एवं बाजारें थीं। नगर के भीतरी भाग में सुंदर आलीशन, उद्यानों से घिरे महल सदृश मकान थे। वातायनों, शयनागारों, गलियारों, तोरण द्वारों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मंदिर एवं बलि–वेदियाँ भी बनाई जाती थीं। ललित कलाओं और दस्तकारी के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इस प्रकार संगम साहित्य सुदूर दक्षिण के आरंभिक इतिहास और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता हैं।

3.6 संगम साहित्य

ऐतिहासिक युग के प्रारंभ में दक्षिण भारत का क्रमबद्ध इतिहास हमें जिस साहित्य से प्राप्त होता है उसे **संगम साहित्य** कहते हैं। इस साहित्य में दक्षिण भारत के जनजीवन की झांकी मिलती है, इस साहित्य से हमें तमिल प्रदेशों के तीन राज्यों **चोल, चेर** एवं पांण्ड्य का विवरण प्राप्त होता है। इनमें चेर का सबसे अधिक उल्लेख है। यह सबसे प्राचीन वंश था।

संगम शब्द का अर्थ है– संघ, परिषद, गोष्ठी अथवा संस्थान। वास्तव में संगम तमिल कवियों विद्धानों आचार्यो, ज्योतिषियों एवं बुद्धिजीवियों की एक परिषद थी। तमिल भाषा में लिखे गये प्राचीन साहित्य को ही **संगम साहित्य** कहा जाता है। प्रत्येक कवि अथवा लेखक अपनी रचना को संगम के समझ प्रस्तुत करता था तथा इसकी स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद ही किसी भी रचना का प्रकाशन संभव था।

संगम साहित्य की रचना कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के दक्षिण भू–भाग में स्थित प्राचीन तमिलकम प्रदेश में हुई। संगम साहित्य तमिल भाषा का प्राचीनतम अंश माना गया है। संगम साहित्य की रचना की वास्तविक तिथि विवादास्पद है। इस साहित्य में वर्णित परंपराओं एवं अनुश्रुतियों के आधार पर यह साहित्य अत्यंत प्राचीन प्रतीत होता है, किंतु इस पर विश्वास करना कठिन है। सामान्यतः इस साहित्य का विकास ईसा की प्रथम शताब्दी से तीसरी शताब्दी (110–150 ई०) माना जाता है।

परंपरा के अनुसार अतिप्राचीन समय में **पाण्ड्य शासको** के संरक्षण में कुल **तीन संगम** आयोजित किये गए। जिनमें संकलित साहित्य को **संगम साहित्य** की संज्ञा दी जाती है। प्रथम संगम **मदुरा** में, द्वितीय संगम **कपाटपुरम** में तथा तृतीय संगम **उत्तरी मदुरा** में आयोजित किया गया। इन तीनों संगमों की कुल अवधि 9950 वर्ष मानी जाती है जिसे 197 पाण्ड्य राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया एवं इसमें 8598 कवियो ने साहित्यिक रचनाएं की। इन तीनों साहित्यों का उल्लेख 8वीं शताब्दी के ग्रंथ **इरैयनार अग्गपोरूप** में हुआ है। इस ग्रंथ के अनुसार जो विवरण प्रस्तुत होता है वह कपोलकल्पित प्रस्तुत होता है। इस पर पुरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता है। यह विवरण संगम साहित्य को प्राचीनता प्रदान करने के लिए दिया गया है। इस विवरण मं ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक कल्पना का सहारा लिया गया है।

3.6.1 प्रथम संगम

इसका आयोजन पाण्डयों की प्राचीन राजधानी मदुरा (जो अब समुद्र में विलीन हो गया है) में हुआ था। इसकी अध्यक्षता ऋषि अगस्त्य ने की थी। इन्हें उत्तर भारत की आर्य संस्कृति को दक्षिण में लाने का श्रेय दिया जाता है। इस संगम में 1549 विद्वानों ने भाग लिया एवं इस संगम को 89 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस संगम के कार्यकाल में 4455 विद्वानों को अपनी रचनाएं प्रकाशित करने की अनुमति दी गई। यह संगम 4400 वर्षो तक चला। इसमें रचित प्रमुख ग्रंथ–अकट्टियम् (अगस्त्यम्), परिदाल, मदुनारै, मुदुकुरूकु तथा कलरि आविरै आदि थे। दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस संगम में सदस्यों में प्रमुख थे–तिरिपुरमेरिय, मुरूगवल तथा मुदिनागरायर आदि।

3.6.2 द्वितीय संगम

मदुरा के पतन के बाद पाण्ड्य शासको के संरक्षण में दुसरा संगम का आयोजन कपाटपुरम् (अलैवाई) में किया गया। आरंभ में इसकी अध्यक्षता का श्रेय भी अगस्त्य ऋषि को जाता है किंतु बाद में इनका स्थान इनका शिष्य **तोलप्पियर** ने ले लिया। इस संगम में कुल 49 सदस्य ने भाग लिया। इसे 59 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस संगम ने 3700 कवियों को अपनी रचना प्रकाशित करने की अनुमति प्राप्त हुई। यह संगम लगभग 3700 वर्षो तक चला। इस संगम के दौरान रचित कुछ प्रमुख ग्रंथ–अक्कितयम्, (अगस्त्यकृत), 'तोल्लकापियम्' मापुरानम, इसै–नुनुक्कम्, भूतपुरानम्, केलि, कुरूकु, वेन्दालि एवं व्यालमलय आदि थे। दुर्भाग्यवश इस संगम में रचित सिर्फ एक ही ग्रंथ–'तोल्लकापियम्' ही अवशिष्ट है जिसकी रचना अगस्त्य ऋषि के शिष्य तोल्कापियर को दिया जाता है। यह ग्रंथ तमिल भाषा का प्राचीन व्याकरण का ग्रंथ है। इसके तीन भाग है–

(क) इलुथु – वर्ग विचार

(ख) सोस – काव्य विचार

(ग) पोरूल – वस्तु

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन मदुरा के समान द्वितीय संगम का केन्द्र कपाटपुरम भी समुद्र में विलीन हो गया है। विद्वानों ने उपर्युक्त दोनों संगमों की ऐतिहासिकता पर संदेह व्यक्त किया है।

3.6.3 तृतीय संगम

इस संगम का आयोजन उत्तरी मदुरा में हुआ एवं इसकी अध्यक्षता का श्रेय **नक्कीरर** को जाता है। यह संगम 1850 वर्षों तक चली जिसे 89 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इसमें संकलित कविताएं आज भी उपलब्ध है। इसकी संख्या 49 थी एवं इसमें 449 कवियों को उनकी रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति प्रदान किया। इस संगम द्वारा संकलित उत्कृष्ट रचनायें–नेदुन्थोकै, कुरून्थोकै, नत्रिनई, एन्कुरून्नूरू, पदित्रुप्पट, नूत्रैम्बथु, परि–पादल, कूथु, वरि, पेरिसै तथा मित्रिसै आदि है। यद्यपि इनमें से अधिकांश नष्ट हो गये हैं इसके बावजूद आज जो भी तमिल साहित्य बचा हुआ है, वह इसी संगम से संबंधित है। तोल्कापियम सहित तीसरे संगम के अवशिष्ट सभी ग्रंथों का संपादन **तिन्नेवेल्ली** की **'साउथ इंडिया शैव सिद्धांत पब्लिकेशन सोसायटी'** के द्वारा किया गया है। तोल्लकापियम में 8 प्रकार के विवाह का उल्लेख किया गया है।

तिरूक्काम्पुलियर चेर, चोल व पाण्ड्य तीनों राज्यों का संगम स्थल था। तमिल संगम का सर्वप्रथम उल्लेख **अग्गपोरूल** (8वीं सदी) के भाष्य की भूमिका में मिलता है, संगम साहित्य से ज्ञात होता है कि दक्षिण में आर्य सभ्यता का विस्तार **ऋषि अगस्त्य** एवं **कौडिन्य** ने किया। संगम साहित्य का काल रामचरण शर्मा के अनुसार 300–600 ई॰ के बीच था।

उपलब्ध संगम साहित्य का विभाजन तीन भागों में किया जा सकता है–

1. पत्थुप्पातु
2. इत्थुथोकै
3. पदिनेन कीलकन्क्कु

संगम साहित्य की दो मुख्य विषय वस्तु हैं–

1. अहूम–इसका संबंध प्रेम से हैं।
2. पूरम–यह युद्ध के बारे में हैं।

पत्थुप्पातु जो तीसरे संगम के दौरान लिखा गया, इसमें 10 कविताओं का संग्रह है। ये 10 कविताएँ अलग–अलग लेखको के द्वारा लिखी गई हैं। इन पदो का समय द्वितीय शदी ई॰ का है, इनमें चोल शासक **करिकाल** एवं पाण्ड्य शासक **नेदुगेलियन** के विवरण भी मिलते हैं। **इत्थुथोकै** में 8 कविताएँ है। इनमें संगमकालीन राजाओं के नामावली के साथ–साथ तत्कालीन समय के जन–जीवन एवं आचार–विचार का विवरण भी प्राप्त होता है। इसकी अधिकांश कविताएँ चेर शासको की प्रशस्ति में लिखी गई है, **पदिनेन कीलकन्क्कु** 18 गीतों का एक लघु संग्रह है, जो सभी उपदेशात्मक है। इसमें **तिरूवल्लुवर** का **कुशल** सर्वोत्कृष्ट है जिसे तमिल बाईबिल की संज्ञा दी गई है। नीलकंठशास्त्री के अनुसार यह 5 वीं सदी की रचना है।

संगम काल में महाकाव्य की रचना की गई है। य़द्यपि ये ग्रंथ संगम साहित्य के अंतर्गत नहीं आते तथापि इनसे तत्कालीन जन–जीवन के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस काल की 5 प्रसिद्ध महाकाव्य एवं उसके लेखक इस प्रकार है–

	महाकाव्य		**लेखक**
1.	शिल्लपादिकारम	–	इतंगो आदिगल → जैन

2. मणिमेखलै – सीतल सतनार → बौद्ध

3. जीवकचिंतामणि – तिरून्तक देवर → जैन

4. तोल्लकापियम – तोल्लकाप्पियर

5. वलयपति व कुडलकेशि –

इनमें प्रथम तीन ही उपलब्ध है। **शिल्पादिकारम** और **मणिमेखलै** को महाकाव्य– 1 एवं महाकाव्य– 2 की संज्ञा दी गई है अर्थात् शिल्पादिकरम में कहानी जहाँ समाप्त होती है वहीं मणिमेजलै में इसके आगे की कहानी प्रारंभ होती है, ये दोनों महाकाव्यों की कहानी प्रेम पर आधारित है। **शिल्पादिकारम्** के नायक **कौवलन** एवं नाभिका कण्णगि की प्रेम कहानी है, इसमें खलनायक की भूमिका राजदरबार की एक नर्तकी जिसका नाम **माधवी** है, माधवी के प्रेम में पागल होकर कोवसन अपनी सारी संपत्ति बर्बाद कर देता है, नर्तकी के ठुकराएँ जाने पर वह पुनः अपनी पत्नी के पास आता है, तत्पश्चात् कोवल और कण्णिगी मदुरा के लिए खाना होते है। मदुरा में कोवलन पर रानी के एक पायल चुराने के झुठा आरोप में उसे मृत्युदंड दे दिया जाता है। कण्णिगी अपने पति को निर्दोष साबित करती है। निर्दोष कोवलन को मृत्युदंड देने की ग्लानि में राजा की मृत्यु हो जाती है तथा कण्णगी के शाप से मदुरा जलकर राख हो जाता है, शिल्पादिकारम के लेखक जेन है,

मणिमेखलै की रचना शिल्पादिकारम के कुछ समय बाद हुई। इस ग्रंथ पर शिल्पादिकारम के ही प्रभाव दिखाई देता है। इसकी रचना मदुरा के व्यापारी **सीतलैसतसार** अथवा **सीतल सतनार** ने की थी जो एक बौद्ध था। यह ग्रंथ शिल्पादिकारम की कहानी को आगे बढ़ाता है, इस महाकाव्य की नायिका **मणिमेखलै**, कोवलन और नर्तकी माधवी से उत्पन्न पुत्री है, माधवी अपने पूर्व प्रेमी की मृत्यु का समाचार सुनकर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है, राजकुमार **उदयकुमारन** मणिमेखलै से प्रेम करने लगता है, और उसे हर हाल में प्राप्त करना चाहता है किंतु मणिमेखलै अपनी सतीत्व को बचाती हुई बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है, इस ग्रंथ की कहानी दार्शनिक एवं शास्तार्थ हेतु बनायी गई है, इसका महत्व मुख्यतः धार्मिक है।

जीवकचिंतामणी संगम काल के बहुत बाद की रचना है, इसकी रचना का श्रेय जैन भिसु **तिरूत्तक्कदेवर** के दिया जाता हे। यह एक आदर्श नायक की कथा है जो युद्ध एवं शांति दोनों कलाओं में निपूण है। युवावस्था में यह अनेक साहसिक कार्य करता है, एवं एक विशाल समाज्य का स्वामी बन जाता है। वह अपने प्रत्येक सैन्य अभियान में एक नई रानी लाता है, इस प्रकार वह 8 पत्नियों का आनंद लेता है। अंततोगत्वा वह सांसारिक जीवन के मुक्त हो जाता है। वर्तमान रूप में इस काव्य में 3154 छंद है। इस पुस्तक को **विवाह की पुस्तक** भी कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रंथ भी है जिससे संगम काल के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी मिलती है। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय उत्तर एवं दक्षिण की संस्कृतियों का समन्वय हो चुका था। संगम साहित्य की निश्चित तिथि के बारे में इतिहासकारों में काफी मतभेद है। सामान्यतः इसकी रचना 100–250 ई॰ तक मानी जाती हे किंतु श्रीनिवास आयंगर ने तीनों संगमों की अवधि एक हजार वर्ष के लगभग (500 ई० पू०–500 ई०) बताई है।

3.7 सारांश

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि संगमकाल के साहित्य से हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। संगम साहित्य ने जिस प्रकार दक्षिण भारत के आम जन–जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है उतना किसी अन्य साहित्यों से प्राप्त नहीं होता है। इस साहित्य ने भारतीय साहित्य के न केवल धरोहर में वृद्धि की है बल्कि तत्कालीन समाज का सही चित्रण करके भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम किया है। इन कवियों की रचनाएं साहित्यिक दृष्टिकोण से भी बहुत प्रौढ़ एवं जीवंत है। इन साहित्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस समय उत्तर एवं दक्षिण संस्कृति का समन्वय हो चुका था और इस मिली जूली संस्कृति का प्रभाव वर्तमान समय में दृष्टिगोचर होता हैं।

3.8 प्रस्तावित पुस्तक

1. दक्षिण भारत का इतिहास – डॉ० नीलकंठ शास्त्री
2. दक्षिण भारत का वृहत इतिहास – डॉ० एच० एन० दुबे
3. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति – डॉ० वी० के० पाण्डेय
4. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के० सी० श्रीवास्तव
5. द अर्ली हिस्ट्री आव द आन्ध्र कन्ट्री (मद्रास 1941) – के० गोपालाचारी

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. संगमकालीन दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास के बारे में बताएं।
2. संगमकालीन दक्षिण भारत की सांस्कृतिक व्यवस्था की समीक्षा कीजिए।
3. संगम साहित्य से अपना परिचय दें।

इकाई एकः शुंग एवं कण्व वंश

1.1 प्रस्तावना

1.2 उददेश्य

1.3 शुंग वंश की उत्पत्ति का इतिहास

1.3.1 शुंगों की उत्पत्ति

1.3.1.1 शुंग पारसीक थे

1.3.1.2 शुंग मौर्य थे

1.3.1.3 शुंग ब्राह्मण थे

1.4 राजनीतिक संघर्षः विदर्भ युद्ध

1.5 यवनों का आक्रमण

1.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

1.7 शुंग कालीन धार्मिक स्थिति

1.8 शुंगकालीन भाषा साहित्य व कला

1.9 शुंग कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति

1.10 पुष्यमित्र की उपलब्धियाँ

1.10.1 अश्वमेघ यज्ञ

1.10.2 धर्म सहिष्णुता

1.10.3 राज्यविस्तार

1.10.4 साहित्यिक उपलब्धियाँ

1.10.5 पुष्यमित्र का मूल्यांकन

1.11 कण्व वंश की उत्पत्ति

1.12 कण्व वंश की धार्मिक नीति

1.13 सहायक ग्रन्थ सूची

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इतिहास सदैव इस बात का गवाह रहा हैं कि किसी भी मनुष्य की महत्वाकांक्षा ही उसे विजय दिलाती है। 184 ईसा पूर्व प्रसिद्ध मोर्य शाशक अंतिम शासक वृहद्रथ की जीवन लीला को समाप्त कर शुंग वंश को जिस महत्वाकांक्षी योद्धा ने स्थापित किया उसे पूष्यमित्र शुंग के नाम से प्राचीन इतिहास में जाना जाता है। विदर्भ व यवनो पर विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त पूष्यमित्र द्वारा भारत के पश्चिमी भागो

पर भी विजय प्राप्त की गई। शुंगकाल में ही यवन शासक हेलियोडोरस ने भागवत धर्म से प्रेरित होकर गरुड़ स्तंभ का निर्माण कराया (विदिशा म. प्र.) शुंग शासन में मध्य भारत में शांति व सुव्यवस्था देखने को मिलती हैं इन्होने विकेन्द्रीकरण को कुछ समय तक रोकने का प्रयास किया शुंग वंश के शासक वेदिक धर्म के अनुयायी थे। भरहुत का लेख शुंग की ऐतिहासिकता पर प्रकाष डालते है। शुंग साम्राज्य मध्य गंगा घाटी तथा चम्बल नदी के मध्य तक ही सीमित था,जिसमें अयोध्या,पाटलिपुत्र,विदिषा आदि प्रमुख नगर थे। पुराण हर्षचरित,मालविकाग्निमित्र आदि सभी ग्रंथों में पुष्यमित्र को सेनानी के रूप में ही उल्लेख किया गया है। जिस समय पुष्यमित्र शुंग सिहांसन पर बैठा देष आन्तरिक एवं बाह्म संकटों के दौड़ से गुजर रहा था। पुष्यमित्र शुंग को यवन आक्रमणकारियों से भी सामना करना पड़ा। महाभाष्य,गार्गी मालविकाग्नि आदि साक्ष्यों से पता चलता है कि यवन आक्रमणकारी बिना किसी अवरोध के पाटलिपुत्र के अत्यंत निकट आ गये। धार्मिक दृष्टि से भी पुष्यमित्र का षासन बहुत महत्वपूर्ण था। चूँकि र्मोयों के सरंक्षण के कारण बौद्ध धर्म की काफी प्रगति हुई किंतु वैदिक धर्म उपेक्षित होता गया। पुष्यमित्र ने ब्राह्मण्स धर्म में प्राण फूकने का कार्य किया इसलिए इसका काल हिन्दू धर्म के अभ्युत्थान का काल माना जाता है। वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना हेतु ही अषोक के समय से निषिद्ध यज्ञादि क्रियाएँ पुनर्जीवित की जिसके फलस्वरूप पषु वध का एक नया दौर षुरू हुआ। महाभाष्य,मालविकाग्निमित्रम् तथा धनदेव के अयोघ्या लेख आदि से ज्ञात होता है कि उसने स्वतः दो अष्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किया। यवनों से इसका संघर्ष हुआ। जहॉ एक और पुष्यमित्र को ब्राह्मण धर्म का पुनरूद्धारक माना गया है वही बौद्ध ग्रन्थों में विषेषतः दिव्यवदान तथा तारानाथ के विवरणों में उसे बौद्ध धर्म का उत्पीड़क बताया गया है। दियावदान के अनुसार उसने अशोक द्वारा निर्मित 84000 स्तूपों को नष्ट करने की प्रसिद्धि पाने का निश्चय किया। सम्भवतः बौद्ध समर्थित मौर्य वंष का अंत करने वाले पुष्यमित्र को बौद्ध अनुयायी बर्दाश्त न किये होगे। उन्होने इस प्रतिक्रिया में राजद्रोह जैसा निन्दनीय कार्य किया। जिसके कारण पुष्यमित्र को ऐसे षड़यंत्रकारियों के खिलाफ यह सख्त कार्यवाही करनी पही होगी। इस प्रकार पुष्यमित्र ने 184 ई.पू. से 148 ई. पू. तक लगभग 36 वर्षो तक षासन किया। मौर्य वंश के अयोग्य उत्तराधिकारियों द्वारा जर्जरित सम्पूर्ण भारत को वह भले ही न बचा पाया हो किन्तु मगध केन्द्र द्वारा संचालित तत्कालीन साम्राज्य की सुरक्षा में उसने प्राणपथ से प्रयास किया। उसने महान विजेता और निर्माता दोनों ही गुणों का देष को स्वस्थ एवं सुंगठित बनाने मे परिचय दिया।

जिस प्रकार पुष्यमित्र ने अपने सम्राट की हत्या करके राज्य प्राप्त किया उसी प्रकार शुंग वंश के अंतिम शासक देवभूति की हत्या करके कण्व वंश की स्थापना वासुदेव द्वारा की गई शुंग के अमत्य वसुदेव ने रानी के वेश में देवभूति की दासी की पूत्री द्वारा स्त्री प्रसंग में कामदेव के वशीभूत देवभूति की हत्या कर दी थी।

1.2 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जानेगें

1 शुंग वंश की उत्पत्ति व संक्षिप्त इतिहास

2 शुंग वंश की वंशावली

3 शुंग वंश की राजनीतिक,सामाजिक,आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति

4 शुंग वंश की उपलब्धियाँ

5 कण्व वंश की उत्पत्ति

6 कण्व वंश का इतिहास

1.3 शुंग वंश की उत्पत्ति का इतिहास

शुंग काल के विषय में विविध स्त्रोतों से ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय धार्मिक एवं धर्मेत्तर तथा विदेशी साहित्यिक ग्रंथ⁄अभिलेख व अन्य पुरातात्विक स्त्रोत मिलकर इस काल की ऐतिहासिकता को सिद्ध करते हैं।

अन्तिम मोर्य शासक वृहद्रथ को ब्रह्मण सेनापति ने मारकर शुंग वंश की नीव रखी ब्रह्मण ने हर्षचरित में उल्लेख किया हैं कि सेनापति पुष्यमित्र ने सेना का प्रदर्शन करने का आयोजन किया तथा वृहद्रप जो कि राजा था उसे आमंत्रित किया और समय की उपयोग्यता देखकर उसका वध कर दिया, पतंजलि ने महाभारत में यवनों से युद्ध की चर्चा की हैं। दिव्यदान बोद्ध ग्रंथ में भी पुष्यामित्र को मोर्य शासन का सेनापति बताया हैं। मालविकाग्नि मित्र के अनुसार पुष्यमित्र का राज्य नर्मदा तक था एवं पाटलिपूत्र अयोध्या व विदिशा उसके राज्य के प्रमुख नगर थे।

शुंग शासको के विषय में कलिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाकट से महत्वपूर्ण जानकारी मिलती हैं। इस नाटक में पुष्यमित्र का यवनों से युद्ध व अग्निमित्र से का विर्दभ के राजा यज्ञसेन के साथ हुए युद्ध का वर्णन मिलता है। बाणभटट् के 'हर्षचरित' व पतंजली के महाकाव्य में भी शुंग राजाओं का वर्णन मिलता हैं। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यदान तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के वर्णन में भी शुंग–काल का महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता हैं।

1.3.1 शुंगों की उत्पत्ति

शुंग कौन थे? यह एक अत्यंत विवादास्पद प्रश्न हैं। शुंगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तीन मत निम्नलिखित हैं–

1.3.1.1 शुंग पारसीक थे

इस मत के प्रतिपादक श्री हरिप्रसाद शास्त्री थे। अपने मत के समर्थन में वे तर्क देते हैं कि शुंग राजा अपने नाम के साथ 'मित्र' शब्द(पुष्यमित्र, अग्निमित्र,वसुमित्र आदि) लगाते थे तथा मित्र (सूर्य) की उपासनी चूंकि पारसीक राजा करते थे तथा कालांतर में स्वंय हरिप्रसाद शास्त्री ने भी स्वंय अपनी भूल स्वीकारते हुए शुंगों को ब्रह्मण ही माना।

1.3.1.2 शुंग मौर्य थे

कुछ इतिहासकारों ने 'दिव्यदान' नामक ग्रन्थ के आधार पर शुंगों को मौर्य ही माना हैं, क्योंकि दिव्यादान में पुष्यमित्र को मौर्य ही कहा गया है। किन्तु इस मत को भी स्वीकार नही किया जा सकता है क्योंकि इस तथ्य के अनेक प्रमाण हैं कि बृहद्रय ही मौर्य–वंश का अन्तिम शासक था।

1.3.1.3 शुंग ब्राह्मण थे

अधिकांस विद्वान शुंगों को ब्रह्मण ही मानते है। क्योंकि ऐसे अनेक प्रमाण मिलते है जिससे ज्ञात होता हैं कि शुंग ब्रह्मण थे। कालिदास की रचना 'मालविकाग्निमित्र' के अनुसार शुंग बैम्बिक–वंश के थे।

बैम्बिक–वंश का सम्बन्ध कुछ इतिहासकारों सम्राट बिम्बिसार कुछ के कपिपय शिलालेखों में उत्कीर्ण बिम्बिका नदी से स्थापित किया हैं, किन्तु ऐसा मानना तर्क्संगत नही हैं। बौधायन–श्रौत सूत्र से ज्ञात होता हैं कि बैम्बिक कश्यप गोत्रीय ब्रह्मण थे। इस तथ्य की पुष्टि हरिवंश से भी होती हैं।

अश्वालायन–श्रौत सूत्र के अनुसार शुंग लोग आचार्य थे। हर्षचरित से भी ज्ञात होता हैं कि पुष्यमित्र शुंग ब्रह्मण था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ पुष्यमित्र को 'एक राजकुल का पुरोहित' और ब्रह्मण राजा कहता है।। कीथ भी शुंगों को ब्रह्मण मानते थे।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता हैं कि शुंग ब्रह्मण थे, किन्तु उनका गौत्र कौन सा था, इस विषय में पुनः विद्वानों मे मतभेद है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका हैं कुछ विद्वान शुंगों को बैम्बिक–वंश का ब्रह्मण अर्थात कश्यप गोत्र का मानते हैं। इसके विपरीत, भगवतशरण उपाध्याय तथा अनेक विद्वान शुंगों को भारद्वाज गोत्र के मानते हैं। अपने मत के समर्थन में इतिहासकार पाणिनि व अश्वालायन सूत्र को अद्धत करते हैं। **यह कहना कठिन है कि शुंग कश्यप गोत्र के थे अथवा भारद्वाज, किन्तु इतना निश्चित है कि वे ब्रह्मण थे।**

शुंग वंश के नाम के अंत में मित्र शब्द को देखकर यह कहा जाता है कि ये मिथ्र या सूर्य के उपासक थे। पुराण पुष्यमित्र को शुंग कहते है। शुंग वंश को महर्षि पाणिनी ने भारद्वाज गोत्र का ब्रह्मण बताया है। मालविकाग्निमित्र में इसके पूत्र को बौद्धिक मूल से संबन्धित बताया है। वृहद्‌ारण्यक उपनिषद में शौगीपूत्र नामक एक आचार्य का उल्लेख हैं। इस प्रकार शुंग ब्रह्मण पुरोहित ही थे।

पुष्यामित्र के पूर्वज मोर्य शासक के यहाँ पुरोहित का कार्य करते थे। मोर्य शासकों द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने पर शुंगों ने समय को देखते हुए शस्त्र धारण कर लिये । मनुस्मृति में आवश्यकता होने पर ब्रह्मणों को शस्त्र उठाने की बात कही गयी हैं। छटी शताब्दी ई.पू. के प्रथम चरण में इसी प्रकार भारत को बाहरी आक्रमणों से आशंक्ति लिये पुष्यामित्र ने भी शस्त्र उठाया।

1.4 राजनीतिक संघर्षः विदर्भ युद्ध

विदर्भ का प्रांत मौर्य अमात्य यज्ञसेन के नेतृत्व में स्वतंत्र हो गया वहां यज्ञसेन द्वारा नये राज्य की नींव डाली गई थी। वह मोर्य शासक वृहद्रथ का साला था। वह पुष्यमित्र का विरोधी था। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र द्वारा जरासेन के चचेरे भाई माधवसेन से मिलकर षडयंत्र के तहत यज्ञसेन के अन्तपाल ने माधवसेन को पकड़ लिया इस पर अग्निमित्र ने वीरसेन को जरासेन के विरुद्ध भेजा और वीरसेन ने जरासेन को हरा दिया, इस पर उस को अपने राज्य का कुछ भाग माधवसेन को देना पड़ा। इस प्रकार विदर्भ राज्य को पूष्यमित्र का अधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। मालविकाग्निमित्र का नायक युवराज अग्निमित्र है।

पुष्यमित्र शुग एक महान योद्धा था। अतः अपने साम्राज्य को संगठित करने के पश्चात उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। इस दिशा में उसकी प्रथम उपलब्धि विदर्भ पर विजय थी। मालविकाग्निमित्र नामक नाटक से ज्ञात होता है कि मौर्य शासक बृहद्रथ के षासनकाल में ही राजसभा दो दल में बटी हुई थी। एक दल का नेता पुष्यमित्र शुंग था व दूसरे का मंत्री। इस मंत्री का पुत्र यज्ञसेन मौर्यकाल में विदर्भ का गवर्नर था। पुष्यमित्र शुंग द्वारा मौर्य –साम्राज्य पर अधिकार कर

लेने पर यज्ञसेन ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस प्रकार यज्ञसेन ने पुष्यमित्र की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तथा विदर्भ का स्वतंत्र शासक बन गया। पुष्यमित्र ने बृहद्रथ की हत्या करने के पष्चात यज्ञसेन के पिता को बन्दी बना लिया था तथा यज्ञसेन के एक संबंधी माधवसेन को अपने पक्ष में कर लिया था,किन्तु एक बार अवसर मिलने पर यज्ञसेन ने माधवसेन को बन्दी बना लिया। पुष्यमित्र ने यज्ञसेन से माधवसेन को मुक्त करने को कहा,किन्तु यज्ञसेन ने यह षर्त रखी कि पहले वह उसके पिता को मुक्त करे। इसी बात पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध का संचालन पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने किया तथा विजय प्राप्त करने में वह सफल हुआ। इस विजय के परिणामस्वरूप,माधवसेन मुक्त हो गया तथा विदर्भ–राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। एक भाग का शासक माधवसेन बना व दूसरे का शुंग ों की अधीनता स्वीकार करने पर यज्ञसेन को शासक बनाया गया। दोनो भागों के मध्य वर्धा नदी ने सीमारेखा का कार्य किया। खारवेल से युद्ध– कुछ विद्वानों का विचार है कि कलिंग शासक खारवेल व पुष्यमित्र शुंग में युद्ध हुआ था जिसमें खारवेल की विजय हुई। इन विद्वानों में स्मिथ व जायसवाल प्रमुख है। स्मिथ के अनुसार कलिंग के शासक खारवेल ने पुष्यमित्र के षासनकाल में दो बार मगध पर आक्रमण किया। पहला आक्रमण 165 ई.पु. व दूसरा 161 ई. पू. में हुआ था। दूसरे आक्रमण में खारवेल को अधिक सफलता मिली। पुष्यमित्र को खारवेल की अधीनता स्वीकार करनी पडी व खारवेल ने मगध के राज्यकोष पर अधिकार कर लिया। डॉ. जायसवाल ने भी हाथीगुम्फा षिलालेख के आधार पर स्मिथ के मत का समर्थन किया। इस षिलालेख के आधार पर खारवेल ने मगध के शासक वृहस्पतिमित्र पर आक्रमण कर उसे परास्त किया था। वृहस्पिति व पुष्य पर्यायवाची षब्द है,अतः जायसवाल का विचार है कि खारवेल ने पुष्यमित्र को ही हराया था तथा इस युद्ध में पराजित होने के पष्चात ही पुष्यमित्र नें दूसरा अष्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था।सत्यकेतु विद्यालंकार ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि यवन आक्रमण से लाभ उठाकर खारवेल ने यदि पुष्यमित्र को परास्त किया हो तो इसमें आष्चर्य की कोई बात नही है। किन्तु अन्य विद्वान इस मत से सहमत नही है। डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी व डॉ. आर. एस. त्रिपाठी आदि इतिहासकारों का विचार है कि खारवेल पुष्यमित्र का समकालीन नही था। अतः खारवेल द्वारा पुष्यमित्र को परास्त किए जाने का प्रश्न ही नही है। इन विद्वानों के अनुसार खारवेल का काल प्रथम शताब्दी ई. पू. के तृतीय चरण में था जबकि पुष्यमित्र की 148 ई. पू. में ही मृत्यू हो गई थी। अतः खारवेल द्वारा पराजित शासक पुष्यमित्र नही वरन कोई अन्य रहा होगा।

1.5 यवनो का आक्रमण

यह युद्ध पंजाब व सिंध नदी के तट पर हुआ और पुष्यमित्र के पोते व अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने इसमें यवनों को हराया, यवनों का भारतीय अभियान असफल हुआ तथा तथा वसुमित्र ने अश्वमेघ व अश्व को छुड़ाया। मालविकाग्नि मित्र में उल्लेखित दूसरा यवन संघर्ष उस समय हुआ जब पूष्यमित्र वृद्ध हो गया था उसके पोत्र ने सेनाएँ युद्ध के लिये भेजी। इस यवन युद्ध का संबंध पूष्यमित्र के अश्वमेघ से हैं। पूष्यमित्र ने दो अश्वमेघ युद्ध किये थे, यवनो पर विजय प्राप्ति के दौरान जो अश्वमेघ संपन्न हुआ इसका उल्लेख मालविकाग्निमित्र में आया जो उसके राज्य में संपन्न हुआ। पतंजलि ने

महाभारत में 'इंत पूष्यमित्रं याजयामः' अर्थात हम पूष्यमित्र के लिये यज्ञ करते है का उल्लेख किया है। पतंजलि को पुष्यमित्र का समकालीन माना जाता है। पतंजलि ने घटना का इस प्रकार उल्लेख किया हैः– **अरुणद्यवनः साकेतम्** अर्थात् यवनों ने अयोध्या पर आक्रमण किया और **अरुणद्यवन माध्यमिकाम्,** अर्थात माध्यमिका पर यवनों ने 'आक्रमण को स्वीकार करते है। मालविकाग्निमित्र में उल्लखित दूसरा यवन संघर्ष उस समय हुआ जब पुष्यमित्र वृद्ध हो चला था। उसका पौत्र भी इतना बडा था कि उसके नायकत्व में राजकीय सेनाएँ युद्ध जिसका सम्बन्ध पुष्यमित्र के 'अश्वमेध' से है निष्चित रूप से उसके शासन के अंतिम भाग में हुआ प्रतीत होता है।

प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. पतंजलि का महाभाष्य किस भाषा में लिखा गया है ?

लघु **लघु उत्तरीय प्रश्न –**

1. 1. ''शुंग मौर्य थे'' इस पर टिप्पणी करिये।
2. 2. शुंग का इतिहास जानने के कोई दो स्त्रोत के नाम लिखिए।

शुंग वंश की वंशावली–

पुष्यमित्र शुंग (185–149) ई.पू., अग्निमित्र (149–141) ई.पू.,वसुज्येष्ण (141–131) ई.पू., वसुमित्र (131–124) ई.पू.,अन्धक (124–122) ई.पू. पुलिन्दक (122–119) ई.पू. घोष शुंग वज्रमित्र,भगभद्र, देवभूति (88–73) ई.पू.

1.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

पुराणों में पूष्यमित्र के बाद 9 अन्य शुंग राजाओं का उल्लेख से मिलता है। अग्निमित्र का नाम रुहेलखंड से प्राप्त सिक्को पर मिला है वसुमित्र का उल्लेख मालविकाग्नि मित्र से मिलता है व उसने यवनों को पराजित किया। विलासप्रिय होने के कारण मित्रदेव ने नृत्य के आन्नद के समय उसकी मृत्यू कर दी इसके बाद के शासकों की उपलब्धि के विषय में कुछ ज्ञात नही हैं भगभट्ट के शासन में में यवन राजदूत हेलियोडोरस विदिशा स्थित दरबार में आया तथा गरुड़ स्तम्भ की स्थापना कर भागवत धर्म ग्रहण कर लिया तब अंतिम नेरश देवभूति था जिसे अमात्य वसुदेव ने मारकर कण्व वंश की स्थापना की। परन्तु अग्निमित्र के प्रयास से यरासेन पराजित हुआ तथा वधी नदी दोनों राज्यों की सीमा मान ली गई। इस प्रकार विदर्भ को दो भागों में विभाजित कर राजनीतिक स्थिति को पुष्यमित्र ने मजबूती प्रदान की। पुष्यमित्र ने पंजाब से जालंधर व स्यालकोट पर विजय प्राप्त की मेरुतुंगा के विवरण से पुष्यमित्र द्वारा अवन्ति पर अधिकार की भी प्राप्ति का उल्लेख मिलता हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1.पुष्यमित्र शुंग को बौद्ध उत्पीड़क क्यों कहा है स्पष्ट करिये।

2 शुंग राजवंश के यवन आक्रमण पर प्रकाश डालिए।

1.7 शुंग कालीन धार्मिक स्थिति

धार्मिक दृष्टि कोण से भी शुंग की स्थिति महत्वपूर्ण थी । मोर्य के संरक्षक के कारण बौद्ध धर्म की प्रगति हुई थी। परन्तु वेदिक धर्म उपेक्षित होता गया। पुष्यमित्र ने वेदिक धर्मोत्थान के लिये बहुत प्रयास किये इसलिए इसके काल को अभ्युत्थान का काल भी कहा जाती है। उसके द्वारा यज्ञीय क्रियाएँ पूर्नजीवित की गई जिसके अर्न्तगत स्वतः उसके द्वारा दो अश्वमेघ किये गये। उल्लेख मिलता हैं कि कुछ बोद्ध ग्रंन्थ में (दिव्यदान)

पुष्यमित्र अशोक की तरह सहिष्णुता का पोषक भी था जहां उसने भारतीय संस्कृति के गौरव का प्रतीक अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किये वही उसने सांची की वेदिकाएँ बनाकर बौद्ध धर्म का भी सम्मान किया। दिव्यदान में उल्लेख मिलता है कि उसेन कुछ बौद्ध व्यक्ति को मंत्री नियुक्त किया था । अन्य शुंग शासकों ने भी पुष्यमित्र की धर्म सहिष्णु नीति को अपनाकर भी भरपूर बोधगया व सांची के स्तूपों को नया रुप प्रदान किया।

1.8 शुंगकालीन भाषा साहित्य व कला

इस काल में संस्कृत को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला तथा संस्कृत भाषा लोकभाषा के रुप में परिणत हो गयी। महर्षि पतंजलि द्वारा महाभास्य व अश्वमेघ पर्व भी परिवर्धक हुआ।

शुंग कालीन काला व स्थापत्य– शुंग कालीन कला में बौद्धिक मानसिक व सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्ब की छांव देखने को मिलती है। शुंग कालीन कलाकारों द्वारा पाषाणों का प्रयोग किया गया हैं। विदिशा का गरुड़ध्वज, भाजाका चैत्य व विहार नासिक तथा काले के चैत्य व मथुरा की यज्ञ व यक्षिकी की मूर्तिया शुंग कला के उत्कृष्ट उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं।

भरतदूत स्तूप को 1977 में कनिधंम ने खोजा था। इसमें 80 स्तम्भ तथा 40 तोरणद्वार में यह स्तूप अत्यधिक कलावृत्तियों से सुज्जित है।

सांची के तोरण द्वार पर अत्य अलंकरण व इसके अंडभाग में एक वंरडिस मिलती है व इसे इसलिये त्रिमेधि स्तूप कहते है। सांची को स्तूप तोरणद्वार पर बोने हाथी व बैल की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई है,स्तम्भों के निर्मल भाग के में द्वारपाल व यज्ञों की मूर्तियां व शालभंजिका की आकर्षक मूर्तिया भी अंकित हैं। सांची के शुगकालीन स्तूप स्थापत्य कला के बेहतर नमूने के रुप में अपना स्थान रखते हैं। बोधगया की वेदिका पर हीनयान संबंधी कथानक अंकित है भरदूत की वेदिका पर एक लेख में उल्लेख मिलता है कि यह शुंग कालीन शासन में बनाया गया है।

शुंग कला के सर्वोत्तम स्मारक उपरोक्त स्तूप ही है।

सांची को स्तूप तोरणद्वार पर बोने हाथी व बैल की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई है,स्तम्भों के निर्मल भाग के में द्वारपाल व यज्ञों की मूर्तियां व शालभंजिका की आकर्षक मूर्तिया भी अंकित हैं। सांची के शुगकालीन स्तूप स्थापत्य कला के बेहतर नमूने के रुप में अपना स्थान रखते हैं। उसके समय में संस्कृत भाषा और साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई। महाभाष्य,मनुस्मृति तथा महाभारत के कुछ अंश इसी काल की देन है।

1.9 शुंग कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति

शुंग कालीन समज वर्णाश्रम व्यस्था पर आधारित था। परन्तु चार वर्ग ब्रह्मण,क्षत्रिय,वैश्य व शूद्र के अतिरिक्त समाज में अन्य जातियों भी थी जो अन्तर्वणीय विवाह से उत्पन्न हुई थी। आश्रम में संस्कार का भी विधान था तथा इन्हें न पालने वाले प्रात्य या संकर कहे गये।नारीयों की दशा अच्छी थी। विवाह के आठ प्रकार प्रचलित थे (ब्रह्मण,देव,आर्य,प्रजापत्य,असुर,गान्धर्व,राक्षस व पिशाच) समाज में सती प्रथा का उल्लेख नही मिलता हैं।

जीविकोपार्जन के दो प्रमुख स्तंभ थे। कृषि व पशुपालन,श्रम विभाजन भी व्यस्था का विधान था, व्यवसाय अनुवांशिक होते थे। प्रमुख व्यापारियों व व्यवसायियों की श्रेणियाँ थी 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है व्यापार उन्नति पर था।

पुष्यमित्र शुंग जब सिंहासन पर बैठा तब देश आंतरिक व बाह्य संकटो से गुजर रहा था। पुष्यमित्र को यवन आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। कयोंकि वे बिना किसी बाधा के पाटलिपूत्र के निकट आ गये थे। गार्गी संहिता में उल्लेख मिलता है,कि यवनो ने सांकेत,पांचाल, मथुरा को जीत कर अपने कदम पाटलिपूत्र तक बड़ी लिये थे। प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण वे मध्यप्रदेश में नही रुक सके। पुष्यामित्र के समय में दोनों यवन आक्रमणकारी मिनेमण्डर व डियोट्रियस थे। पुष्यमित्र ने जिस दृढ़ता से युद्ध किया वह तारीफ के योग्य हैं,क्योंकि उसने जीवन के प्रारम्भ में ही युद्ध का सामना किया मोर्य सम्राट की हत्या की प्रतिकिया में यज्ञसेन विदर्भ नरेश ने स्वंय के स्वतंत्र होने की घोषणा कर दी। शुंग शासन में प्रशासन तदानुसार ही चलता रहा,अग्निमित्र को विदिशा का शासक बताया। वसुमित्र के अश्वमेघ अश्व की सुरक्षा में तैनात होने की जानकारी मिलती हैं। अमात्य परिषद की प्रभावपूर्ण भूमिका का आलेख मिलता हैं। वीरसेन के समक्ष अपना आदेश पहुचाने के लिए अग्निमित्र ने मंत्रीपरिषद को निर्देशित किया था, विदर्भ में नवीन राज्य व्यवस्था की प्रस्तावना हेतु मंत्रिपरिषद द्वारा राजा को महत्वपूर्ण सलाह दिये जाने का बोध होता था। पतंजलि ने राजा का उल्लेख किया हैं। विदेश नीति से संबन्धित समस्या आने पर मंत्रिपरिषद से मंत्रंणा की जाती थी। पतंजलि ने पुष्यमित्र की सभा का जिक्र किया है। युवराज भी उचित निर्णय हेतु परिषद् का सहयोग लेते थे। विदेश नीति से सम्बन्धित कोई जटिल समस्या आने पर मन्त्रिपरिषद् से मंत्रणा की जाति थी।

1.10 पुष्यमित्र की उपलब्धियाँ

कहा जाता है कि पुष्यमित्र का इतिहास रक्त रंजित है सेना से घनिष्ठता होने के कारण उसने स्वंय को सेनापति भी कहलाया।

साम्राज्य का संगठक– वृहद्रय की हत्या के पश्चात उसके सम्मुख सर्वप्रथम समस्या साम्राज्य के संगठन की थी क्योंकि कलिंग महाराष्ट्र व आंध्र स्वतंत्र हो चूके थे। इससे यूनान खतरा बढ़ रहा था। प्राची को सलवत्स व अवन्ति जो कि मगधा के अधीन थे पर अपनी सत्ता को मजबूत बनाया विदिशा को दूसरी राजधानी बनाकर केन्द्र को शक्तिशाली बनाया। पुष्यमित्र ने अन्तिम मौर्य शासक बृहदथ की जब हत्या की थी तब मगध–साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त षोचनीय थीं। सम्भवतः पुष्यमित्र को बृहद्रथ की हत्या करने के लिए राज्य की तत्कालीन स्थिति ने भी प्रेरित किया होगा। बृहद्रथ की हत्या करने के पष्चात जब वह स्वयं उस कमजोर एवं जर्जरित राज्य का शासक बना तब उसके सम्मुख सर्वप्रमुख

साम्राज्य को संगठित करमे की थी। ऐसी परिस्थितियों में सर्वप्रथम पुष्यमित्र ने साम्राज्य की आन्तरिक स्थिति को सुधार कर उसे दृढता प्रदान की। प्राची/कोसल/वत्स व अवन्ति/आदि राज्य जो मगध के अधीन थे पुष्यमित्र ने उन पर अपनी सत्ता की मजबूत बनाया। अवन्ति का राज्य मगध से दूर होने के कारण पाटलिपुत्र से उस पर पूर्ण अधिकार बनाए रखना कठिन हो रहा था/अतः पुष्यमित्र ने विदिषा को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। विदिशा में उसनें अपने पुत्र अग्निमित्र को राज्य प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया। इस प्रकार उसने साम्राज्य को संगठित किया तथा केन्द्र को शक्तिशाली बनाया।

1.10.1 अश्वमेघ यज्ञ

पुष्यमित्र ने प्रथम अश्वमेघ विदर्भ विजय के पश्चात किया दुसरा अश्वमेघ शासनकाल के अंतिम दिनों में किया। विजयी पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध कर अपनी विजय घोषित की। एक और तो यह मौर्य साम्राज्य के ध्वंस पर नए साम्राज्य के उत्थान को व्यक्त करता है/दूसरे इससे ब्राह्मणधर्म के नवीन आंदोलन का संकेत मिलता है। पुराणों के अनुसार राजा जनमेजय के बाद राजा पुष्यमित्र ने ही अश्वमेध यज्ञ किया था। हरिवंश के अनुसार/कलियुग में अश्वमेध का पुनःप्रसारण करनेवाला कश्यप द्विज था। गोसुंडी के शिलालेख में उसे सर्वतात का शंकर्षण तथा वासुदेव का पुजारी और अश्वमेध यज्ञ करनेवाला भी कहा गया है।

1.10.2 धर्म सहिष्णु

यद्यपि ब्रह्मण धर्म का संरक्षक व उत्साही था,परन्तु बौद्ध स्तूप व वेदिका का निर्माण उसके शासनकाल में हुआ जो शुंग कालीन पुष्यमित्र की सहिष्णुता बौद्ध धर्म के प्रति उजागर करते थे। विदिशा के निकट भरहुत में उसने दान द्वारा अनेक बौद्धस्तूपों का निर्माण होने दिया। यह उसकी धार्मिक सहिष्णुता का ही परिचायक है। भरहुत के एक सुगनम् राज शिलालेख में लिखा है कि ये स्तूप शुंगों के राज्य में थे।

1.10.3 राज्यविस्तार

शुंग कालीन साम्राज्य पश्चिम में स्यालकोट तक दक्षिण में विदर्भ वन्दक्षिक पूर्व में उसके राज्य की सभा कंलिग तक थी। कौशल भी उसके साम्राज्य का हिस्सा था पाटलिपूत्र उसकी राजधानी थी।

1.10.4 साहित्यिक उपलब्धियाँ

पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म को राजधर्म घोषित किया तथा संस्कृत को राजभाषा का रुप प्रदान किया। इसके फलस्वरुप पतंजलि का महाभास्य व मनु स्मृति की हुई जो साहित्य के क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

शुंग वंश के शासकों ने 112 वर्ष तक शासन किया तथा शुंग काल में भारतीय इतिहास में राजनैतिक,सांस्कृतिक व कला के दृष्टिकोण से समृद्ध माना गया। इस काल में शुंग ने मगध की रक्षा की यवन आकलन से वैदिक धर्म ने अपना वैभव प्राप्त किया तथा इसके साथ भागवत धर्म का भी विकास हुआ।

मध्य भारत के इतिहास से पुष्यमित्र वंशीय राजाओं का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी काल में गुप्तवंशीय स्वर्णकाल जैसे पुनरुत्थान भी लहर देखने को मिलती हैं।

1.10.5 पुष्यमित्र का मूल्यांकन

पुष्यमित्र की गणना भारत के महान शासकों में होती है। उसने भारत की सेवा उस समय की, जब देश पर निरंतर यवनों का आक्रमण हो रहा था। यवनों ने कुछ प्रदेशो पर अधिकार भी कर लिया था। उसने यवनों के प्रभाव से देश को मुक्त किया। ब्राह्मण धर्मावलंबी होते हुए भी वह उदार धार्मिक नीति का समर्थक था। वह उच्चकोटि का सैनिक और सेनापति था। अपनी योग्यता के बल पर उसने नए राजवंश की स्थापना की और साम्राज्य के विस्तार मे पूर्ण सफलता पाई। वह एक योग्य शासक था। उसने साम्राज्य का दृढ संगठन किया और मगध– साम्राज्य के वैभव का विस्तार भी। ब्राह्मणधर्म की पुनःस्थापना का श्रीगणेश उसी के समय हुआ, जिसका चरमोत्कर्ष हमें बाद में देखने को मिलता है। पतंजलि और कालिदास ने शुग्डकाल में परिषद होने की चर्चा की है, परंतु यह परिषद कैसी थी इसका स्पष्ट ज्ञान नही होता है। न्यायपरिषद या मंत्रिपरिषद का रूप क्या था यह कहना कठिन है। मालविकाग्निमित्रम के अनुसार राज–व्यवस्था के अंतर्गत मंत्रिपरिषद एक महत्वपूर्ण संस्था थी। यह संस्था युवराज की सहायता भी करती थी। विदेश–नीति से संबद्ध जटिल समस्याओं पर मंत्रिपरिषद या अमात्यपरिषद में विचार भी होता था।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1 शुंग वंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये?

2 शुंग वंश के यवन आक्रमणों पर संक्षिप्त टिप्पणी करिये?

3 शुंग वंश के सांस्कृतिक स्रोत का वर्णन कीजिए?

1.11 कण्व वंश की उत्पत्ति

विष्णु पुराण में उल्लेख मिलता हैं कि शुंग वंश के राजा देवभूति को उसका अमात्य ही कण्व वसुदेव मारकर पृथ्वी पर शासन करेगा। वसुदेव द्वारा जिस राज्य की नीव डाली गई वह कण्वायन नाम से इतिहास में जाना गया।चूंकि देवभूति दुर्व्यसनी तथा जनता में अलाकप्रिय था।

वसुदेव ने 200 नौ वर्ष तक राज किया जो पुरोणों के उल्लेख में मिलता हैं। उसके पशचात तीन राजाओं का उल्लेख मिलता हैं। जिन्हें भूमिमित्र, नारायण तथा सुशर्मा के नाम से जानते हैं, जिनके शासनकाल निम्न प्रकार से हैं–

भूमिमित्र – 14 वर्ष

नारायण – 12 वर्ष

सुशर्मा – 10 वर्ष

कण्व वंश का शासन मगध एवं आसपास तक ही सीमित थी परंतु मगध के शासन होने से इस वंश के शासकों को सम्राट की उपाधि प्रदान की गई।

1.12 कण्व वंश की धार्मिक नीति

पुराणों में उल्लेख मिलता हैं कि इस वंश के राजा सत्य व न्याय के साथ शासन करेंगे व पड़ोसियों का दमन करेंगे, इनके शासक भी ब्रह्मण थे। अतः उन्होंने भी ब्रह्मण धर्म के लिए प्रयत्न किये होंगे। वैदिक धर्म में संस्कृति संरक्षक की जो परम्परा शुंग ने प्रारम्भ की उसे कण्व वंश ने भी आगे बढ़ाया। ये कण्व ऋषि के वंशज भी माने जाते हैं।

कण्व वंश का अंतिम शासक सुशर्मा अयोग्य व दूर्बल था इसकी वजह से मगध क्षेत्र संकुचित होने लगा। अनेक प्रांतों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया । सुशर्मा को आन्ध्र के शिमुक ने मारकर कण्व वंश का अंत कर दिया।

पुराणों में उल्लेख मिलता हैं कि कण्व राजाओं को शुंग भृत्य कहा गया। वासुदेव कण्व ने यदि अपनी राज गतिविधियाँ शुंग के अधीनस्थ शासकों के रुप में आरम्भ की होगी तो इस नाम का संगत कारण दिखाया जा सकता हैं।

1.13 सहायक ग्रन्थ सूची

1 भारतीय इतिहास का आदिकाल – रणवीर चक्रवर्ती

2 प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर – डा0 वासुदेव उपाध्याय

3 प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय

4 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा0 ए0 के0 मित्तल

5 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– राधाकृष्ण चौधरी

6 भारतीय इतिहास का आदिकाल – रणवीर चक्रवर्ती

7 प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर – डा0 वासुदेव उपाध्याय

8 प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय

9 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा0 ए0 के0 मित्तल

10 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – पी0 एल0 गौतम

11 प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन– वात्मज मित्र

12 भारतीय इतिहास का आदिकाल– रणवीर चक्रवर्ती प्राचीनतम पर्व से 600 ईस्वी तक ब्लैकस्वॉन ISMN- 978 81 250 47056

13 प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED ISBN – 978-0-07-070544-9

14 प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन– वातात्मज मित्र,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED ISBN – 978-0-07-066010-6

15 भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा0 ए0 के0 मित्तल साहित्य भवन पब्लिकेशन,ISBN- 81-7288-323-4

16 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति–पी0 एल0 गौतम,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED ISBN – 978-9-35-134180-4

17 प्राचीन भारतीय स्तूप,गूहा एवं मंदिर– डा0 वासुदेव उपाध्याय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1 शुंग वंश की उपलब्धियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।

2 शुंग कालीन राजनैतिक गतिविधयों पर प्रकाश डालिए

3 कण्व वशं की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी डालिए।

इकाई दोः आन्ध्र या सातवाहन वंश तथा दक्षिणापथ की राजनैतिक स्थिति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उददेश्य

2.3 संस्थापक

2.4 आन्ध्र सातवाहन की उत्पत्ति ई0पू0

2.5 विस्तार

2.6 सातवाहन का मूल स्थान

2.7 सतवाहनों की जाति

2.7.1 अनार्य

2.7.2 आर्य

2.7.3 ब्राह्मण

2.8 सातवाहन शासक

2.8.1 कृष्ण

2.8.2 शातकर्णि

2.8.3 शातकर्णि प्रथम

2.8.4 गोतमी पुत्र शातकर्णी

2.8.5 वशिष्ठपूत्र पुलुमावी

2.8.6 यज्ञ श्री शातकर्णि(145–194)

2.9 राजतत्व व प्रशासनिक व्यवस्था

2.10 आर्थिक एवं सामाजिक जीवन

2.11 सांस्कृतिक स्थिति

2.12 दक्षिणपथ की राजनीतिक स्थितियाँ–शक–सातवाहन संघर्ष

2.13 शातकर्णी (गौतमीपूत्र की उपलब्धियाँ)

2.14 सातवाहन वंश का पतन

2.15 सहायक ग्रन्थ सूची

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

दक्षिण के राजनीतिक इतिहास में सातवाहन राजवंश की भूमिका उल्लेखनीय हैं सातवाहन ने शासन व्यवस्था को संगठित किया इस मूल में अनेक प्रतापी राजा हुए हैं। जिन्होंने भारत के बड़े भू–भाग में

साम्राज स्थापित किया इनके समय में देश में शान्ति बनी रही सातवाहनों ने 3 शताब्दीयों तक दक्षिण की राजनीति में स्वंय को केन्द्र बनाया इनकी सत्ता का केन्द्र महाराष्ट्र था पुराणों में इस वंश के संस्थापक सिमुक को आन्ध्र भृत्य या आन्ध्र जातीय कहां है।

2.2 उददेश्य

इस इकाई में अध्ययन के पश्चात आप जानेंगे

1 आंध्र सातवाहन की उत्पत्ति के संबन्ध में

2 मूल स्थान

3 सातवाहन की जाति

4 सातवाहन की वंशावली

5 आन्ध्र सातवाहन की सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था

6 धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था

7 सांस्कृतिक स्थिति

8 दक्षिणापथ की राजनीतिक स्थिति

9 गोतमी पूत्र शातकर्णी की उपलब्धियाँ

10 सातवाहन वंश का अवसान

2.3 संस्थापक

पुराणों में आन्ध्र वंश के संस्थापक का नाम सिमुक मिलता हैं इसकी पुष्टि अभिलेखिय साक्ष्य से भी होती हैं। सिमुक ने कण्वों व बची हुई शुंग शक्ति को समाप्त कर सातवाहन के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की स्वतंत्र शासक बनने से पूर्व वह सामन्त के रुप में शासन करता था। सिमुक ने विदिशा जो परवर्ती शुंगों की राजधानी थी उसे विजित किया, सिमुक के लिए वृषलका सम्बोधन भी मिलता हैं। जो सम्भवतः सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक था। दक्षिण में सातवाहन सम्राटों नें वैदेशिक सत्ता से रक्षा के साथ–साथ साहित्यिक कला एवं व्यापार–वाणिज्य आदि को भी सरंक्षण प्रदान किया। सातवाहन के इतिहास रचना के लिए साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों ही साक्ष्य मिल जाते है। पुराणों के अतिरिक्त गुणाढ्यकृत बृहत्कथा मंजरी, कथासरित्सागर बृहत्कथाकोष से इसके इतिहास पर प्रकाश पडता है।

2.4 आन्ध्र सातवाहन की उत्पत्ति ई0पू0

प्रथम शताब्दी में विन्ध्य के दक्षिण में आन्ध्र सातवाहन व चेंदि दो राजनीतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण में इन्होंने 3 शताब्दियों तक दक्षिण की राजनीति में स्वंय को केन्द्र बनाया। पुराणों में इनके बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती हैं। पुराणों में इस वंश के संस्थापक सिमुक को आन्ध्र जातीय कहा हैं, जबकि अभिलेखों में इन राजायों ने स्वंय को सातवाहन भी कहा है। सातवाहन अभिलेखों में इन्हें दक्षिणीधिपति कहा गया हैं। इनके लिये आन्ध्र शब्द जातिबोधक हैं कि तथा सातवाहन शब्द मूल बोधक है।

प्रथम शासक सिमुक जो कि ब्राह्मण था ने ब्रह्मण धर्म की रक्षा के लिये शस्त्र धारण किया उसने विदिशा के पास के क्षेत्रों को शुंग व कण्व से जीत लिया तथा 23 वर्षों तक शासन किया।

पुराणों में इसे आंध्र कहा गया तथा अभिलेखों में सातवाहन कहा गया । इसलिये इसे आंध्रसातवाहन कहा जाता है। सिमुक सामंत था इसलिये इस व्यवस्था को प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रथम सामन्ती अर्थव्यवस्था भी कहा गया।

2.5 विस्तार

महाराष्ट्र के कुछ हिस्से व आंध्र के कुछ भागों में इनका विस्तार था। महाराष्ट्र की प्रतिष्ठान नामक जगह मूल स्थान था तथा अंतिम समय तक राजधानी बनी रही। शक व कलिंग राजा खारवेल से इनके संघर्ष बराबर बने रहें। इनके शासन के विस्तार को दक्षिण के शासक कहा जाता हैं तथा इन्हें इतिहास में दक्षिणाधिपति के नाम से भी अभिहित किया जाता हैं। कुछ उल्लेखनीय अभिलेख जो सातवाहन वंश की पुष्टि करते हैं।

नयीनिका का नानाघाट लेख

गोतमी पूत्र शातकर्णी के नासिक से प्राप्त दो गुहा लेख

वशिष्ठ पूत्र पुलुमामी का कार्ले गुहालेख

यज्ञ श्री शातकर्णी का नासिक गुहालेख

2.6 सातवाहन का मूल स्थान

सातवाहन नरेश की अधिकांश मुद्राएँ महाराष्ट्र से उपलब्ध हुई हैं। प्राप्त अभिलेखों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ। खारवेल के हाथीगुफा अभिलेख में शातकर्णी के राज्य का कंलिग से पश्चिम दिशा में होने का विवरण मिलता हैं। आधुनिक विदर्भ के अकाल जिले के तरहल नामक स्थान से तथा आधुनिक विदर्भ के पश्चिमी महाराष्ट्र के सांगली जिले के वेटगांव से सिक्के मिले है आन्ध्र वास्तव में द्रविड़ जाति के ही लोग थे। सातवाहन मूल रूप से कहां के निवासी थे, इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। प्रो. मिराशी का विचार है कि सातवाहनों का मूल–स्थान बरार (विदर्भ) था। अपने मत का प्रमाण वे वहां पर सातवाहनों की मुद्राओं का मिलना मानते हैं, परन्तु बरार में गौतमीपुत्र शातकर्णि से पूर्व की कोई मुद्रा नही मिलती, अतः यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। जायसवाल, बार्नेट, आदि विद्वानों ने, आंध्रदेश की सातवाहनों को मूल निवास–स्थान माना है किन्तु वासिष्ठीपुत्र पूलूमावी से पूर्व किसी सातवाहन राजा के यहां शासन करने के प्रमाण नही मिलते, अतः स्पष्ट है कि आंध्रदेश में सातवाहन बाद में पहुंचे होंगे व उनका मूल निवास–स्थान कोई अन्य रहा होगा। डा. सुर्क्थकर के मत में सातवाहन बेलारी (मद्रास) में रहते थे, किन्तु वहां से सातवाहनों के लेखों में मुद्राओं का न मिलना इस मत को भी अस्वीकार करने के लिए विवश करता है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि सातवाहन मूलतः महाराष्ट्र के निवासी थे, किन्तु शकों द्वारा प्रारास्त किए जाने पर वे कृष्णा व गोदावरी नदियों के मध्य आंध्रदेश में बस गए थे। इसी कारण इन्हें 'आंध्र' भी कहा जाने लगा। सातवाहनों का मूल निवास–स्थान महाराष्ट्र मानने वाले विद्वान निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं :–

(1) सातवाहनों की अधिकांस मुद्राएं व लेख महाराष्ट्र में भी मिलते हैं।

(2) सातवाहन लेखों में महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग किया गया हैं।

(3) सातवाहन काल की गुफाएं (नासिक, कार्ले आदि) महाराष्ट्र में ही स्थित हैं।

2.7 सातवाहनों की जाति

सातवाहन शासक किस जाति के थे, इस विषय में विद्वानों मतभेद हैं। सातवाहनों की जाति के विषय में तीन प्रमुख विचारधाराएं है–

2.7.1 अनार्य

कुछ विद्वानों के विचार है कि सातवाहन अनार्य थे। इन विद्वानों में आयंगर प्रमुख हैं। सातवाहनों को अनार्य मानने वाले विद्वान अपने मत के समर्थन में तर्क देते हैं कि अनेक सातवाहन राजाओं के नाम अनार्य थे, जैसे सिमुक हाल, पुलमावी। इसके अतिरिक्त, अनार्यों के समान सातवाहन राजाओं ने अपने नाम अपनी माताओं के नाम पर रखे। उदाहरणार्थ, गौतमीपुत्र, वसिष्ठीपुत्र आदि। सातवाहन राजाओं ने अनार्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए तथा सबसे प्रबल तर्क यह हैं कि पुराण उन्हें आंध्रजातीय बताते हैं तथा आंध्रजाति अनार्य थी।

यद्यपि विद्वानों ने इस मत के समर्थन में उपर्युक्त तर्क दिए हैं, किन्तु इस मत को स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि इन तर्को का सफलता पूर्वक खण्डन किया जा सकता हैं। दक्षिणी भारत का आर्यीकरण विलम्ब से हुआ था, इसी कारण सातवाहना राजाओं के नाम पर अनार्य प्रभाव दिखाई देता है। यही तर्क अपनी मां के नाम पर अपने नाम रखने का तर्क दिया जा सकता हैं। यह सर्वविदित है कि सातवाहन–कालीन समाज मातृप्रधान था। जहां तक अनार्यो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात है, अन्तर्जातीय विवाह प्रत्येक काल मे हुए हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी राजकुमारी से विवाह किया था, इस आधार पर उसे यूनानी नही माना जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त, पुराणों में सातवाहनों को यदि आंध्र कहा गया है तो इससे तात्पर्य उनकी जाति से नही वरन् उनके निवास स्थान से हैं। अतः सातवाहनों को अनार्य स्वीकार नही किया जा सकता है।

2.7.2 आर्य

अधिकांस विद्वानों का विचार है सातवाहन आर्य थे, किन्तु वे ब्राह्मण थे अथवा नही , इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। जो विद्वान सातवाहनों को ब्राह्मण विद्वान नही मानते उनमें गोपालाचारी व भण्डारण, आदि प्रमुख है। ये विद्वान अपने समर्थन के मत में तर्क देते है कि नासिक अभिलेख में में गौतमीपुत्र शातकर्णि की तुलना राम, अर्जुन व भीम से की गई हैं, अतः वह क्षत्रिय रहा होगा। किन्तु इस आधार पर सातवाहनों को क्षत्रिय स्वीकार नही किया जा सकता हैं क्योंकि तुलना का आधार उनकी जाति नही वरन् वीरता एवं साहस था।

2.7.3 ब्राह्मण

आधुनिक विद्वानों का विचार है कि सातवाहन ब्राह्मण थे। इस मत के समर्थन में सेनार्ट, ब्यूलर व त्रिपाठी प्रमुख हैं। हेमचन्द्र राय चौधरी भी उन्हें ब्राह्मण ही मानते हैं परन्तु उनका विचार हैं कि सातवाहनों में नाग (वंश) के रक्त का भी मिश्रण था। सातवाहनों को ब्राह्मण स्वीकार करने वाले विद्वान अपने मत के समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैः

(1) नासिक लेख में गौतमीपुत्र को **'परशुराम–सा पराक्रमी ब्राह्मण'** कहा गया है।

(2) नासिक लेख में ही एक अन्य स्थाना पर उसे क्षत्रिय का **दर्प और मान चूर करने वाला कहा गया है।** अतः स्पष्ट है कि वह क्षत्रिय न था, ऐसी स्थिति में वह ब्राह्मण ही रहा होगा।

(3) गौतमीपुत्र व वासिष्ठीपुत्र नाम ब्राह्मण गौत्र गौतम व वसिष्ठी पर आधारित हैं। अतः स्पष्ठ हैं कि सातवाहन ब्राह्मण रहे होंगे।

2.8 सातवाहन शासक

सिमुक प्रथम संस्थापक शासक था जो कि सामंत होने के कारण सामतवादी विचारधारा का था। अतः उसने प्रशासनिक कार्य की जगह धार्मिक कार्यों को बढ़ावा दिया, जैन व बोद्ध धर्म को संरक्षक दिया। बौद्ध चैत्य की स्थापना की परन्तु अंतिम समय में दुराचारी व अत्याचारी होने की वजह से लोगों के द्वारा वध कर दिया। मुलतः वह ब्राहम्ण जाति का ही था जिसने ब्राहम्ण धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए शस्त्र धारण किया क्योंकि बड़ी संख्या में क्षत्रियों द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कारण वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा गिर गयी थी। वायु पुराण से विदित होता है उसमे के आसपास का क्षेत्र शुंगों और कण्वों से जीत लिया। पुराणों से ज्ञात होता है कि उसने 23 वर्षो तक शासन किया। नाना घाट चित्रफलक अभिलेख में उसका उल्लेख मिलता है।

2.8.1 कृष्ण

इस वंश का दूसरा सम्राट सिमुक का भाई कृष्ण था। नासिक गुहा लेखों में कृष्ण (कण्ह) का उल्लेख आया है। इस लेख में स्थानीय श्रमणों के आवास हेतु गुहा निर्मित किए जाने का विवरण भी मिलता हैं कृष्ण ने 18 वर्ष शासन किया। नानाघाट गुहा चित्र फलक अभिलेख में सिमुक के साथ शातकर्णि, नायनिका तथा कृष्ण के अंकन से स्पष्ट होता हैं कि वह (शातकर्णि) सम्भवतः सिमुक का पुत्र था, न कि कृष्ण का।

इसका उल्लेख नासिक से प्राप्त शिलालेख में मिलता है। इसका अल्पकालीन शासक रहा।

2.8.2 शातकर्णि

पुराणों में जानकारी मिलता है कि कृष्ण (कान्ह) के बाद शातकर्णि (ईसा पूर्व 27–17) गददी पर बैठा। इसका उल्लेख सांची के स्तूप तोरण लेख, नायनिका, नानाघाट गुहालेखों एवं नानाघाट गुहा चित्र फलक लेख में आया है। हाथि गुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता हैं कि उसकी पूर्वी सीमा कलिंग शासक खारवेल की पश्चिमी सीमा से लगी हुई थी।

शातकर्णि को सातवाहन वंश की वृद्धि करने वाला कहा है। उसने अंगीय या अंतिम वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए नायनिका के साथ विवाह किया। अंगीय कुल शासक 'महारठी त्रणकवि कहा गया है। शातकर्णि के दो पुत्र थे ' शक्ति–श्री' व 'वेदश्री'। शातकर्णी की मृत्यु के बाद नायनिका ने इनकी अभिभाविका के रुप में शासन संचालन किया था।

2.8.3 शातकर्णि प्रथम

यह कण्व पुत्र था तथा इसे दक्षिणपथ का स्वामी कहा जाता हैं। यह प्रथम शक्तिशाली राजा था जिसका उल्लेख पेरिप्लस ऑफ द इरिथियन सी में मिलता हैं इसका वैवाहिक संबन्ध नयनिका की राजकुमारी से हुआ। नायनिका राजकुमारी ने नानाघाट में अभिलेख खुदवाया, शातकर्णि का राज्य विस्तार पश्चिमी मालवा, अनुप प्रदेश व विदर्भ तक था। शातकर्णि के राज्य में मालव शैली की मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। नानाघाट अभिलेख में प्रथम बार उल्लेख मिलता है कि बौद्ध व ब्राह्मणों को भूमिदान मे देने का। श्री शातकर्णि सिहासनारूढ़ हुआ जो सातवाहन उपाधिधारि प्रथम शासक होने के कारण

शातकर्णि प्रथम के रूप में जाना जाता है। उसने क्षहरात वंश के शक क्षत्रपों को पश्चिमी दक्कन से भगा दिया। उसका साम्राज्य पश्चिमी मालवा/अनूप(नर्मदा घाटि) विदर्भ के क्षेत्र तक फैल गया था। खारवेल के हाथी गुम्फा लेख से पता चलता है कि उसे कलिंग नरेश खारवेल का भी सामना करना पड़ा। सम्भवतः खारवेल को विजय नही प्राप्त करने दिया अन्यथा खारवेल की प्रशस्ति में इस विजय का अतिरंजित उल्लेख मिलता। उसने दो अश्वमेघ यज्ञ किये तथा पत्नी के नाम पर रजत मुद्राएं उत्कीर्ण करवाई। उसने 'दक्षिणापति' तथा 'अप्रतिहत चक्र' उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु के बाद सातवाहन काल अंधयुग का शिकार हो गया। सम्भवतः पश्चिमी भारत को शकों के क्षहरात शाखा ने सातवाहनों से जीत लिया।

2.8.4 गोतमी पुत्र शातकर्णी

गौतमीपुत्र शातकर्णि(106 ई.) आंध्र सातवाहन वंश का प्रतापी शासक कहलाता हैं। इसकी कई उपलब्धियों का वर्णन प्राप्त होता हैं। जैसे– वेककटक विन्ध्य नरेश, त्रिसमुद्र, राजाराज, अद्वितीय प्रथम भी कहा गया हैं। इसने शकशासक नहपान को हराया था। स्वंय को कृष्ण एवं बलराम व संकर्षक की उपाधि से अभिजित करता था।

प्रारंभिक राजाओं द्वारा महाराष्ट्र में स्थापित राज्य दुसरी शदी के आरम्भ में शक वंश के क्षत्रप नरेश नहपान के उदभव के साथ कुछ समय के लिए समाप्त हो गया था। नहपान का समय 119 ई0 से 125 ई0 के मध्य माना जाता हैं। महाराष्ट्र सातवाहनों का मूल प्रदेश था, किन्तु उन्हें क्षहरातों के दबाव से दक्षिण विस्थापित होना पड़ा। गोतमीपूत्र शातकर्णी के नासिक गुहा लेख से जानकारी मिलती हैं कि महाराष्ट्र गोतमीपूत्र शातकर्णी के अधीन था उसने क्षहरात्रों को बाहर किया नासिक से प्राप्त सिक्कों की निधि जिसे शातकर्णी ने दुबारा ढलवाया। उसके राज्यारोहण से पूर्व सातवाहन को शको ने आघात पहुंचाया परंतु गोतमीपूत्र. ने इनकी शक्ति को नष्ट किया तथा सातवाहन वंश को पूर्नजीवित करने का कार्य किया। सर्वप्रथम उसने क्षहरातों पर आक्रमण कर अपनी खोई राजलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए अभियान किया। इस सैनिक अभियान में क्षहरात नरेश नहपान तथा ऊषावदात न केवल परास्त हुए वरन् वीरगति को प्राप्त हुए। उसने नहपान की मुद्राओं को पुनरांकित कराया। क्षहरातों का विनाश गौतमीपुत्र की ऐसी महान सफलता थी जिसके फलस्वरूप सातवाहनों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में अकस्मात वृद्धि हुई। इस सफलता से उत्साहित होकर उसने विशाल क्षेत्र पर विजय अभियान किया उनमें ऋषिक/अस्मक/मुलक/सुराष्ट्र/कुकुर/अपरान्ह/अनूप/विदर्भ/आकर/अवन्ति आदि स्थलों पर पुनः सातवाहन सत्ता स्थापित हुई।

2.8.5 वशिष्ठपूत्र पुलुमावी

पुलुमावी–ने दक्षिण पथेश्वर, महाराष्ट्र अंध्राप्रदेश को विजित किया प्रथम आंध्र सम्राट कहा गया जिसने अधिकांस क्षेत्रों को विजित किया, अमरावती के स्तूप में वैष्णवी का निर्माण किया।` दो बार रुद्रदामन ने वशिष्ठ पुलुमावी को हराया। इसी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने दक्षिणापथ के स्वामी शातकर्णी को दो बार परास्त किया किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण इसका वध नही किया। कान्हारी लेख से ज्ञात होता है कि पुलुमावी का अनुज वासिष्ठी पुत्र शातकर्णी रूद्रदामन का दामाद था। सम्भवतः

पुलुमावी ने कार्दमक वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसके द्वारा जीते हुए प्रदेशों में कुछ को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा।

शातकर्णी के बाद पुलुमावी उत्तराधिकारी बना उसने 28–29 वर्षों तक शासन किया नासिक कार्ले तथा अमरावती से उसके अभिलेख मिलते है उसके शासन में पश्चिमी भारत में कर्दिमक शाखा में शको का पुनः बोलबाला हो गया शको ने वशिष्ठ पूत्र को परास्त करके सातवाहन साम्राज्य के अनेक प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया उसके शासन मे कुकर, सुराष्ट मरु आकर अवन्ति पर शकों ने पुनः कब्जा कर लिया सातवाहनों की शक्ति पुनः कमजोर हो गई चुंकि स्थानिय शासकों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। नासिक/कार्ले तथा अमरावती से उसके अभिलेख मिले है। उसके शासन काल में पश्चिमी भारत में कादमक शाखा के शकों का पुनः अधिकार कर लिया उसके समकालीन शक शासक चष्टन तथा रूद्रदामन थे। उसके शासन काल में कुकुर/सुराष्ट/मरू/आकर/अवन्ति आदि प्रान्त शकों ने पुनः छीन लिया किन्तु उसने दक्षिण की और विस्तार किया। पुलुमावी पहला सातवाहन राज्य था जिसका अभिलेख अमरावती से मिला है। सिक्कों तथा अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णा नदी के मुहाने वेलारी/आंध्रप्रदेश आदि पर उसने अधिपत्य कायम करके 'दक्षिणापथेश्वर' की उपाधि धारण की। उसके सिक्कों पर ''दो पतवारों वाले जहाज'' के चित्र सें उसकी शक्तिशाली नौ सेना का भी प्रमाण मिलता है।

2.8.6 यज्ञ श्री शातकर्णि(145–194)

वाशिष्ठपुत्र के पश्चात सातवाहन वंश का अंतिम प्रतापी शासक यज्ञश्री शातकर्णि हुआ। यह आंध्र का अंतिम शासक था। जिसने 165 ई.से 195 ई तक शासन किया। रुद्र्दामन की मृत्यु के बाद इसने उनके द्वारा जीते गये सभी को अपने राज्य में मिला लिया इसके सिक्कों पर जलयान की आकृति मिलती है उसकी मुद्राओ पर तोप मत्स्य व जिसका अर्थ है कि समुद्री व्यापार को बढ़ावा दिया अरब सागर व बंगाल की खाड़ी से व्यापारिक संबंध थे।शातकर्णी दुर्बल शासक थे जिसके शासन काल में कोई उपलब्धि का उल्लेख नही मिलता। यज्ञ श्री की मृत्यु के बाद सातवाहन साम्राज्य के विघटन की प्रकिया प्रारम्भ हो गई यज्ञ के बाद जो भी सिंहासन पर बैठे उसमें से कोई भी सातवाहन शासक की चहु ओर कीा राजनीतिक उथल–पूथल की प्रकिया को रोकने में सक्षम नही था। शातकर्णि अत्यन्त शक्तिशाली शासक था तथा इसने सम्भवतः शकों पर भी विजय प्राप्त की थी। उसकी मुद्राएं गुजरात, काठियावाड़, पूर्वी मालवा व मध्यप्रदेश मे मिलती हैं जिनसे इन प्रदेशों का उसके राज्य में होना प्रमाणित होता हैं। उसका साम्राज्य मुख्यतः महाराष्ट्र एवं आंध्र देश तक विस्तृत थां यज्ञश्री शातकर्णि के कुछ मुद्राओं पर जहाज व शंख के चिन्ह अंकित होने के ऐसा प्रतीत होता हैं कि उसका साम्राज्य–तट तक फैला हुआ है।

2.9 राजतत्व व प्रशासनिक व्यवस्था

सातवाहनों ने अपने लंबे शासनकाल के फलस्वरुप शासन व्यवस्था को सुचारु रुप से संगठित किया। राजा ही केन्द्रिय सत्ता का मूल एवं देवी उत्पत्ति के सिद्धांत में विश्वास रखने वाला होता था। इनकी विशेषता राजाओं के मातृ प्रधान होने की हैं कभी रानीयों ने भी शासन सम्भाला होगा। राजाओं की

सहायता अमात्य करता था और सेनापति सैन्य दल का प्रधान होता थां उत्तरी सातवाहन में महारथी तथा कोकंण में महाभोज राज्य प्रतिनिधि थे। इनका सि़द्धांत मृदु सिद्धांत पर आधारित था।

अशोक की तरह प्रशासनिक व्यवस्था का काम मिलता हैं इसके अतिरिक्त गायदान भिक्षुओं की कर मुक्ति, भूमिदान, सामान्तिक लक्षण भी वहां की राजनीतिक व्यवस्था में देखने को मिलता हैं। सातवाहनकालीन शासन व्यवस्था का बोध नासिक अभिलेखो से होता है। सातवाहनों का शासन दक्षिणी भारत एवं दक्कन के बड़े भाग में था। इस वंश के शासकों ने छोटे–छोटे राजाओं से सामंती सम्बंध स्थापित किए। इक्ष्वाकु सातवाहनों के अधीनस्थ शासक कहे गए है। दूसरे शब्दों में स्थानीय शासन सामंतो के जिम्में था जिन पर सम्राट द्वारा पदाधिकारियों के समान नियंत्रण रखा गया। अधीनस्थों शासकों की सामान्यतः तीन कोटियों की जानकारी मिलती है। प्रथम जो नाम से सिक्के ढलवाते उन्हें राजा कहा गया। महाभोज एवं महारथी का दर्जा सम्भवतः ऊॅचा था। महारथियों ने सातवाहन शासकों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी कायम किए। दक्कन के कुछ परिवारों को ही यह पद प्राप्त था। महाभोज सम्भवतः सेनापति वर्ग की एक श्रेणी थी। कुछ महासेनापति सीमावर्ती प्रान्तों के प्रभारी थे एवं कुछ केन्द्रीय विभागों में थे। राज्य अहारों (प्रशासनिक विभागों) में विभक्त था। प्रत्येक विभागों एक मंत्री (अमात्य) के अधीन रहा। भूमिदान के क्रम में अमच्च(अमात्य) महास्वामी तथा प्रतिहार जैसे अधिकारियों का जिक्र आया है। अन्य अधिकारियों में कोषपाल,प्रशासक (महामात्र) मुद्रा निर्माता,कारिन्दे,स्वर्णकार ,अभिलेखपाल,राजदूत,प्रवेशक के नाम मिलते है। ग्राम प्रशासन ग्रामिक के अधिन था। नासिक अभिलेख से जानकारी मिलती है कि राजा लोग भूमिदान देते समय किन–किन विशेषाधिकारियों का त्याग करते थे। सातवाहनों ने ब्राहम्णों एवं बौद्ध श्रमणों को प्रशासनिक करों से मुक्त भूमि प्रदान करने की शुरूआत की जिससे केन्द्रीय सत्ता क्षीण हुई। प्रारम्भ में दान भूराजस्व से ही मुक्त था लेकिन धीरे–धीरे दान प्राप्तकर्ताओं के अधिकारों में इजाफा हुआ। राजाओं ने दी गई भूमि से प्रशासनिक नियंत्रण हटा लिया फलस्वरूप धीरे–धीरे राज्य के भीतर अ र्द्धस्वतंत्र सत्ता विकसित होने लगी। आगे जाकर इस तरह सामन्ती व्यवस्था का विकास हुआ।

2.10 आर्थिक एवं सामाजिक जीवन

इनके काल में आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों मे भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। जीवन कृषि कार्य पर आश्रित था। खाद्यान में धान, गेहु, जौ का उत्पादन होता था। सातवाहनों के अभिलेख में धार्मिक उददेश्य से राजकीय आदेश पत्र जारी कर भूमिदान करने की प्रथा की जानकारी मिलती हैं।वर्ण व्यवस्था में संकर जाति व्यवस्था को समाप्त किया।

आर्थिक स्थिति– विदेशी सिक्के प्राप्त हुए हैं। रोमन में भी इनके शासन के सातवाहन सिक्के मिले हैं शीशे, तांबा, कांसा, चांदी के सिक्के चलायमान थे। भड़ौच प्रमुख अर्न्तराष्ट्रीय बंदरगाह था।

2.11 सांस्कृतिक स्थिति

दक्कन की चैत्य विहार व कार्ले की गुफाएँ इसी काल की देन हैं। प्राकृत भाषा का प्रचलन था तथा लिपि भाषा का प्रयोग किया जाता था। शैव, वैष्णव धर्म का प्रभाव व बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय का विकास चरम पर था।

2.12 दक्षिणपथ की राजनीतिक स्थितियाँ–शक–सातवाहन संघर्ष

ई0पू0 117 से 190 ई0 तक शक सातवाहन संघर्ष भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इनके आक्रमण में आर्कषण का केन्द्र दक्षिण पथ की भूमि थी इनका प्रारम्भ भूमक के समय से शुरु हुआ। गोतमीपूत्र के बाद पुलुमावी ने शक से संघर्ष जारी रखा यज्ञ शातकर्णी के समय से संघर्ष पुनः प्रारम्भ हुआ इसके सिक्कों कृष्णा, गोदावरी, बरार उत्तरी कोकंण से प्राप्त हूए है इससे प्रतीत होता है कि इन क्षेत्रों पर इन्होने अधिकार प्राप्त कर लिया। यह सातवाहन संघर्ष का अंतिम चरण था। इसके बाद किसी संघर्ष का उल्लेख नही मिलता हैं। ये दोनों ऐसे उलझे कि इनकी दक्षिणापथपति बनने की महत्वांकाक्षा समाप्त हो गई इन दोनों की जर्जर शक्ति ही संघर्ष समाप्ति का नियामक हैं।

इसमें सातवाहन शासक प्रतिष्ठा को केन्द्र मानकर सत्ता विस्तार का प्रमुख प्रयत्न कर रहे थे वही पश्चिम में शक प्राणपण सें अपनी शक्ति स्थापित करने में लगे थे। इन दोनो राजनैतिक शक्तियों के आकर्षण का केंद्र दक्षिणापथ की भूमि थी। पश्चिमी भारत में शासन करने वाले शक शासक मेम्बरस से शक सातवाहन संघर्ष का श्रीगणेश होता है। 'पेरीप्लस' से सातवाहनों से इसके संघर्ष की जानकारी मिलती है। पेरीप्लस के अतिरिक्त मेम्बरस या उसके कुल के बारे में कोई जानकारी नही मिलती है। उसके बाद पश्चिमी भारत में क्षहरातों का शासन प्रारम्भ हुआ।

इनका संघर्ष प्रारम्भ भूमक के समय हुआ उसने सातवाहन को परास्त करके मालवा, गुजरात कण्यिावाड़ आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, भूमक समकालीन सातवाहन नरेश के विषय में पुरोणों में शिवस्वाति का उल्लेख मिलता हैं। क्षहरात शक शाखा का दूसरा शासक नहपान था। उसने भी सातवाहनों के प्रदेशों की जीता था उसने सातवाहनों को मालवा अपरान्त तथा महाराष्ट्र से बाहर कर दिया। शातकर्णी प्रथम के बाद संक्रमण दौरे पर उसने सातवाहनों को पराभूत किया। नहपान के नेतृत्व में शकों के अभ्युदय के पश्चात सातवाहनों की स्थिति में परिवर्तन हुआ, जब शातकर्णी जैसा सुयोग्य व प्रतिभाशाली शासक मिला उसने नहपान व दामाद को मार दिया तथा उपरान्त अनूप सुराष्ट्र पर अधिकार कर लिया।

पुलुमावी ने भी इस संघर्ष को जारी रखा जो कि चस्टन कार्दिमक शाखा से था वहाँ से संघर्ष प्रारम्भ हुआ। चटटन ने उज्जैन सातवाहनों से छीन ली चष्टन के पूत्र रुद्रदामन ने तो जूनागढ़ प्रशस्ति के अुनसार अवन्ति, अनूप आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया इस प्रशस्ति से ज्ञात होता हैं कि उसने शातकर्णी को दो बार परास्त किया, पुलुमावी ने कार्दमक वंश से विवाह कर कुछ प्रदेशों को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा। पुलमावी के बाद शिव श्री शातवर्णी तथा शिव स्कंद शातकर्णी के शासन काल में सातवाहनों द्वारा शको से खोये क्षेत्र को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा या नही इसमें कोई प्रमाण नही हैं। दक्षिणापथ की राजनीति का दूसरा दौर यज्ञ श्री शातकर्णी के समय प्रारम्भ हुआ शकों से अपना राज्य प्राप्त करने के लिए उसने आक्रमण किया, इसके सिक्के कृष्णा,गोदावरी, बरार व सोराष्ट्र से प्राप्त हुए अपरान्त से प्राप्त से उसके अधिकारों की पुष्ठि होती हैं। यश श्री से शक का यह अंतिम चरण था इसके बाद कोई उल्लेख संघर्ष का नही मिलता है।

यज्ञ श्री के बाद दोनों की शक्तियाँ अपने निजी समस्याओं में ऐसी उलझ गयी कि दक्षिणापथ पति बनने की महत्वकांक्षा समाप्त हो गई लगभग एक शताब्दी तक चलने वाले इस संग्राम ने दोनों ही राजवंशों को कमजोर कर दिया जिससे क्षेत्रीय शक्तियाँ मुखर होने लगी तथा दोनों की जर्जर शक्ति ही इनके संघर्ष समाप्ति का कारण था।

2.13 शातकर्णी (गौतमीपूत्र की उपलब्धियाँ)

विभिन्न स्त्रोतों से ज्ञात होता हैं कि गौतमीपुत्र शातकर्णि एक योग्य, कुशल एवं दूरदर्शी शासक होने के साथ ही जनता में लोकप्रिय एवं आदर का पात्र था। गुणी होने के साथ ही वह अत्यंत रूपवान तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी था। वह बल्ष्ठि शरीर एवं लम्बी भुजाओं वाला व्यक्ति था। अपनी माता का अत्यंत आदर करता था। साहसी एवं शक्तिशाली होने के साथ ही वह अत्यंत दयालु शासक भी था। नासिक अभिलेख से उसके द्वारा दिए गए दानो के विषय में पता चलता है। गौतमीपुत्र एक प्रजावत्सल शासक था तथा उसी के अनुरू वह कार्य करता था। प्रज्ञा की खुशी के लिए वह उत्सव एवं समाज भी करवाता था। गौतमीपुत्री ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था तथ उसके विकास के लिए उसने प्रयत्न भी किए। गौतमीपुत्र यद्यपि ब्राह्मण–धर्म का अनुयायी था किन्तु वह धार्मिक क्षेत्र में असहिष्णु था।गौतमीपुत्र ने विन्ध्यपति व राजराजा, आदि उपाधियां धारण की थीं। उसकी मृत्यू 130 ई. में हुई।

(3)विजय एवं साम्रज्य विस्तार– गौतमीपुत्र शातकर्णि सातवाहन वंश का सबसे प्रतापी शासक था। वह साम्रज्यवादिता में विश्वास रखता था, अतः विभिन्न परिणामस्वरूप उसने अपने साम्रज्य की सीमाओं को दूर–दूर तक विस्तृत किया। गौतमीपुत्र शातकर्णि के शासक बनने से पूर्व शकों ने सातवाहनों के अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। गौतमीपुत्र शकों का परास्त करके न केवल खोए हुए प्रदेशों को प्राप्त किया वरन् अपने साम्रज्य का विस्तार भी किया। शकों को परास्त करने से उसका गुजरात, सौराष्ट्र, पश्चिमी राजपूताना, मालवा, बरार तथा उत्तरी कोंकण पर अधिकार हो गया। नासिक अभिलेख से ज्ञात होता हैं कि गौतमीपुत्र शकों , यवनों, पल्लवों एवं क्षहरातों का विनाश कर सातवाहनों की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित की। नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र द्वारा जीते हुए प्रदेशों की सूची भी दी गई है जिससे ज्ञात होता हैं कि उसने क्षहरातों का विशेष रूप से नाश किया था। नासिक से चांदि के सिक्कों में जो भाण्ड मिला हैं, उसमें नहपान (क्षहरात शासक) के ऐसे भी सिक्के हैं जिनको गौतमीपुत्र ने अपनी राजमुद्रा से पुनः अंकित किया हैं। अतः क्षहरातों पर इसकी विजय प्रमाणित हो जाती हैं।

नासिक के गुहालेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि की विजयों का उल्लेख करते हुए कहा गया है,''उसके वाहनों ने तीन समुद्रों का जल पिया..... उसका राज्य ऋषिक (गोदावरी नदी का तटवर्ती प्रदेश), मूलक (पैठन का निकटवर्ती क्षेत्र) कुकुर (उत्तरी काठियावाड़), अपरान्त, अनूप, विदर्भ, अवन्ति तक विस्तृत था। इस प्रकार स्पष्ट है कि अपनी विजयों के द्वारा उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गौतमीपुत्र का साम्राज्य पूरब में बरार से लेकर पश्चिम में कोंकण तक तथा उत्तर में सौराष्ट्र एवं मालवा से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक विस्तृत था।

वह प्रजा के सुख में सुखी व दुःख में दुखी होता था।

पौर जननिविसेस सम दुःख दुःखस

- निर्भिकता उसकी विशेषता थी
- बड़ो के प्रति व माँ के प्रति विनम्र व आज्ञाकारी था
- गोतमीपूत्र को तीन समुद्रो का स्वामी कहा हैं
- उसने अपराजित लोगों को पराजित किया हैं
- उसे दाताओं का दाता व शत्रु के प्रति उदार रहने वाला बताया

शातकर्णि क्षत्रिय– हाथी गुफा अभिलेख में शातकर्णि का उल्लेख मिलता है, साथ ही राजशेखर द्वारा रचित काव्यमीमांस तथा वात्सायन के काम सूत्र में भी वर्णन मिलता है।

हाल– यह आंध्र सातवाहन का वंशावली के क्रम में 19 वें नम्बर का शासक था, इसने गाथा सप्तसदी की रचना की जो एक प्रेम गाथा है। इसका सेनापति विजयानंद था जो कि लंका व्यापार के लिये जाता था वहां की राजकुमारी लीलावती के बारे मे हाल को बताता है तथा हाल उससे विवाह कर लेता हैं।

2.14 सातवाहन वंश का पतन

किन कारणों से सातवाहन वंश का पतन हुआ, यह कहना कठिन है,किन्तु यह निश्चित है कि शासकों की दूर्बलता, आन्तरिक संघर्ष व ब्राह्म आक्रमणों का इस वंश के पतन में प्रमुख योगदान रहा। आभीर–वंश के शासकों ने महाराष्ट्र तथा पल्लवों इक्ष्वाकु–वंश ने पूर्वी दक्षिणापथ पर अधिकार करके शातवाहन की शक्ति को अत्यंत क्षीण कर दिया। इस प्रकार तीसरी शताब्दी तक सातवाहन–वंश विलुप्त हो गया।

2.15 सहायक ग्रन्थ सूची

भारतीय इतिहास का आदिकाल – रणवीर चक्रवर्ती

प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर – डा0 वासुदेव उपाध्याय

प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय

प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा0 ए0 के0 मित्तल

भारतीय इतिहास का आदिकाल– रणवीर चक्रवर्ती प्राचीनतम पर्व से 600 ईस्वी तक ओखित ब्लैकस्वॉन, ISMN- 978 81 250 47056

प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED ISBN – 978-0-07-070544-9

प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन– वातात्मज मित्र,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED ISBN – 978-0-07-066010-6

भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा0 ए0 के0 मित्तल साहित्य भवन पब्लिकेशन ISBN- 81-7288-323-4

प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – पी0 एल0 गौतम,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED, ISBN – 978-9-35-134180-4

प्राचीन भारतीय स्तूप,गूहा एवं मंदिर– डा0 वासुदेव उपाध्याय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

1 सातवाहन वंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये?

2 सातवाहन कालीन उपलब्धियों पर विस्तार से वर्णन कीजिए?

इकाई तीन : पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 स्त्रोत
3.3.1 साहित्यिक
3.3.2 पुरातात्विक
3.4 उत्पति एवं प्रसार
3.5 शको का भारत में आगमन
3.6 शको का भारत में राज्य
3.7 पश्चिम भारत के क्षत्रप
3.7.1 महाराष्ट्र के शक–क्षत्रप
3.7.2 उज्जैन के शक–क्षत्रप
3.8 सारांश
3.9 प्रस्तावित पुस्तक
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 परिचय

शको को चीनी साहित्य में सई (sai) अथवा सई–वांग (Sai-wang) कहा गया है। आरंभ में शक एक घुमक्कड़ (खानाबदोश) एवं बर्बर जाति थी, जो सीर नदी के उतरी किनारे पर रहती थी। भेड़–बकरियाँ चराने वाले ये लोग निरंतर अपना स्थान बदलते रहते थे। शकों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया का सरदरिया नामक स्थान था। भारतीय साहित्यों में शको के प्रदेश को शकद्वीप अथवा शकस्थान कहा गया है।

3.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य शको की उत्पति एवं प्रसार, उनके जानने के स्त्रोत, भारत में उनका आगमन के साथ–साथ मुख्यतः पश्चिमी शक–क्षत्रप के शासन एवं उनके कार्यों की विशद व्याख्या कर उनके विभिन्न विचार बिंदुओं को समझाना है।

3.3 स्त्रोत

शको के इतिहास की जानकारी के लिए हमारे पास पुरातात्विक एवं साहित्यिक दोनो प्रकार के स्त्रोत उपलब्ध है। साहित्य के रूप में मुख्यतः चीनी साहित्य शी–की एवं पान–कू कृत सीन–हान–शू अर्थात् प्रथम हान वंश का इतिहास तथा फान–ए–कृत हाऊ–हान–शू अर्थात् परवर्ती हान वंश का इतिहास उल्लेखनीय है। इनके अध्ययन से यू–ची, हूण तथा पार्थियन जाति के साथ शको के संघर्ष तथा उनके प्रसार का ज्ञान होता है।

3.3.1 साहित्यिक स्त्रोत

चीनी साहित्य के अतिरिक्त भारतीय साहित्यों से भी शको के बारे में पता चलता है। भारतीय महाकाव्य–रामायण एवं महाभारत में यवन, पहल्व, आदि विदेशी जातियों के साथ शको का उल्लेख है। मनुस्मृति में भी विदेशी जातियो जैसे–पारद, द्रविड़, पहल्व के साथ शको का उल्लेख है। कात्यायन एवं पंतजलि भी शको से परिचित थे। पुराणो में भी शक, मुरूण्ड, यवन आदि जातियों का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त कई अन्य भारतीय ग्रंथ जेसे 'गार्गीसंहिता', 'विशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम', वाण कृत 'हर्षचरित' राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' आदि में भी शको का उल्लेख है। जैन स्त्रोतों में शको के विषय में विस्तृत विवरण दिया गया है। जैन ग्रंथ 'कालकाचार्य कथानक' में उज्जयिनी के उपर शको का आक्रमण तथा विक्रमादित्य द्वारा उनके पराजित किये जाने का विवरण सुरक्षित है। भारतीय साहित्यों में शको के प्रदेश का 'शकद्वीप' अथवा 'शकस्थान' कहा गया है।

3.3.2 पुरातात्विक स्त्रोत

भारत में शासन करने वाले शक शासको के इतिहास उनके लेखो तथा उनके द्वारा जारी किये गये सिक्को से प्राप्त होता है। अभिलेख के रूप में–राजवुल का मथुरा सिंह–शीर्ष स्तम्भ लेख, शोडास का मथुरा दानपात्रलेख, नहयानकालीन नासिक के गुहालेख, उषावदात के नासिक गुहालेख, नहपानकालीन जुन्नार का गुलालेख, रूद्रदामन् का अन्धौ (कच्छ की खाड़ी) का लेख, रूद्रदामन् के गिरनार (जूनागढ़) का लेख एवं गोन्डोफर्नीज का तख्ते–वाही (पेशावर के युसुफजई क्षेत्र में स्थित) का लेख आदि। सातवाहन राजाओं के लेखो से शको के साथ उनके संबंधों का ज्ञान होता है। इन लेखो के अतिरिक्त पश्चिमी तथा पश्चिमोतर प्रांत से प्राप्त भारी मात्राा में शको के सिक्के से भी शको की सूचना प्राप्त होती है। कनिष्क के लेखो से भी पता चलता है कि कुछ शक–क्षत्रप तथा महाक्षत्रप उसकी अधीनता में देश के कुछ भागों में शासन करते थे।

3.4 उत्पत्ति एवं प्रसार

चीनी ग्रंथो से ज्ञात होता है कि मंगोलिया के समीप रह रही यू–ची जाति पर 175 ई०पू० के आस–पास एक अन्य जाति हूंग–नू ने आक्रमण किया तथा उन्हें भागने पर विवश कर दिया। यू–ची जाति परास्त होने के पश्चात् नवीन प्रदेशो की खोज में पश्चिम की ओर चली व उसने सरदरिया में रह रहे शको पर आक्रमण किया परिणामस्वरूप शक परास्त होकर अपने मूल निवास स्थान को छोड़ने पर विवश हो गए। शको ने सीरदरिया पार कर बल्ख (बैक्ट्रिया) पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ पर रह रहे यवनो को परास्त कर भगा दिया किन्तु यू–ची जाति ने वहाँ भी उनका पीछा किया फलतः दोनो के बीच युद्ध हुआ और शक पुनः पराजित हुए। पराजित शक जाति दो शाखाओं में विभक्त हो गयी तथा कि–पिन (कपिशा) पर अधिकार कर लिया। दूसरी शाखा पश्चिम में ईरान की ओर आयी। वहाँ उसे शक्तिशाली पार्थियन सम्राटो से युद्ध करना पड़ा। शको ने दो पार्थियन राजाओं फ्रात द्वितीय (128 ई०पू०) तथा आर्तवान (123 ई०पू०) को पराजित कर पूर्वी ईरान तथा एरियाना के प्रदेशो पर अधिकार कर लिया किन्तु पार्थियन राजा मिथ्रिडेटस द्वितीय (123–88 ई०पू०) ने शको को बुरी तरह परास्त कर ईरान के पूर्वी प्रदेशो पर पुनः अधिकार कर लिया। परिणामस्वरूप शको को वहाँ से भी

भागना पड़ा। इसके पश्चात् वे पूर्व की ओर अग्रसर हुए एवं हेलमण्ड घाटी (दक्षिणी अफगानिस्तान) पर अधिकार कर यहीं बस गए और उनका नाम 'शकस्थान रख दिया जो अब 'सीस्तान' कहलाता है।

3.5 शकों का भारत में आगमन

शकस्थान से भी शको को दक्षिण–पूर्व की ओर भागना पड़ा, क्योंकि वहाँ पहल्वों (पार्थियनों) ने उन्हें पराजित कर दिया। तत्पश्चात् शक काबूल की घाटी की ओर अग्रसर हुए किन्तु उधर ग्रीको के शक्तिशाली राज्य थे। इसलिए शक ब्लूचिस्तान होते हुए बोलन दर्रे के रास्ते सिन्ध में आ गए कहा जाता है कि 'जैन कालकाचार्य' ने उन्हें भारत आने के लिए प्रेरित किया। भारत में सिन्ध नदी की घाटी में शको की बस्ती 'शक–द्वीप' या 'इंडो–सीथिया' (Indo-Scythia) कहलाई। इस प्रकार शक भारत में पूर्वी ईरान से होकर आये थे। भारतीय भूमि पर शको का यह पहला अवतरण था और इसी आधार से उन्होंने अपने अनेक राजकुलों की नींव डाली।

3.6 शकों का भारत में राज्य

डॉ० सत्यकेतु विद्यालयकार ने लिखा है कि कालक के साथ शक लोग सिन्ध में प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्होनें अपना राज्य स्थापित किया। उसके बाद उन्होंने सौराष्ट को जीतकर उज्जयिनी पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा गर्दभिल्ल को पराजित किया। भारत में शकों की मुख्य राजधानी 'मीननगर' थी। भारत के अन्य प्रदेशों के शक राजा स्वयं को 'क्षत्रप' कहते थे जो फारसी शब्द 'क्षत्रपवन' (जिसका अर्थ है, प्रांतीय शासक), से बना है। भारत में शकों के प्रमुख राज्य थे–

1 तक्षशीला के शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी तक्षशीला थी।

2 मथुरा का शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी मथुरा थी।

3 महाराष्ट्र का शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी नासिक थी।

4 उज्जैन का शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

इनमें प्रथम दो उतरी क्षत्रप एवं अन्तिम दो पश्चिमी क्षत्रप कहलाते थे।

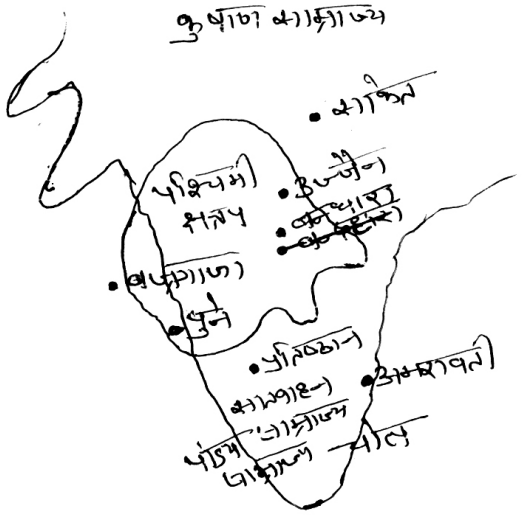

भारतीय शक–राजाओं में संभवतः पहला शासक मोआ था जिसे यूनानी इतिहासकारों ने 'मावेज' (Maues) कहा है। यह एक शक्तिशाली शासक था। तक्षशीला से प्राप्त ताम्रपत्र में उसे 'महाराय' कहा गया है। इसका राज्य काबुल घाटी व पूर्वी पंजाब में फैला हुआ था। सिन्ध सीमाप्रांत, गांधार व पश्चिमी पंजाब पर भी उसका अधिकार था। मावेज के शासनकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ई०पू० प्रथम शताब्दी के अंतिम चरण में शासन किया था।

मावेज के पश्चात् एजेज प्रथम शासक बना तथा मावेज के सामाज्य को ने केवल अक्षुण्य रखा वरन् उसने पूर्वी पंजाब में अपना साम्राज्य विस्तृत किया। मावेज व एजेज के बीच क्या संबंध था अर्थात् क्या रिश्ता था, इस विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। एजेज प्रथम के पश्चात् एजेज द्वितीय शासक बना, किन्तु इसके विषय में कोई उल्लेखनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है।

3.7 पश्चिमी भारत के क्षत्रप

पश्चिमी भारत में दो शक वंशों के अस्तित्व मिलते हैं जो इसप्रकार है–

1 महाराष्ट्र का शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी नासिक थी।

2 उज्जैन का शक–क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

3.7.1 महाराष्ट्र का शक–क्षत्रप

शकों की एक शाखा का नाम क्षहरात था। इस शाखा के लोग सिन्ध व गुजरात को पार करके दक्षिण पश्चिम भारत में पहुँच गए थे। सातवहनों से युद्ध के पश्चात् क्षहरात विजयी हुए एवं महाराष्ट्र पर शासन प्रारंभ किया। महाराष्ट्र शक–क्षत्रप कुल का प्रथम शासक **भूमक** था। उसके सिक्के गुजरात, काठियावाड़ तथा मालवा के क्षेत्र से मिलते है। सिक्कों पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में लेख खुदे हैं। खरोष्ठी लिपि के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी राजपुताना तथा सिन्ध के कुछ भागों पर थी उसका अधिकार था। इस वंश का शासन संपूर्ण महाराष्ट्र, लाट तथा सुराष्ट्र प्रदेश पर था। भूमक का कोई अभिलेख नहीं मिलता। इसके सिक्कों की बनावट तथा उसपर लिखे लेख से यह स्पष्ट पता चलता हे कि भूमक नहपान का पूर्ववर्ती शासक था।

नहपान क्षहरात वंश का सबसे प्रमुख एवं प्रतापी शासक था। भूमक व नहपान में क्या रिश्ता था, यह ठीक से ज्ञात नहीं है। नहपान अत्यंत वीर एवं प्रतापी शासक था। उसने 'राजन' व 'क्षत्रप' की उपाधिधारण की थी। जैन साहित्य, अभिलेखों एवं उसकी हजारो मुद्राओं से अनुमान लगता है कि इसने सातवाहनों से महाराष्ट्र को विजित किया था और उसका राज्य भड़ौच, काठियावाड़, अजमेर एवं पुष्कर तक फैला था। पेरीप्लस में वर्णित **नैम्बेरस** का भी समीकरण भी नहपान से किया जाता है, नहपान के शासन काल के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु इसके सिक्के सन् 119 ई॰ से 124 ई॰ तक महाराष्ट्र मे ंपाये गए है जिसके आधार पर यह अल्पावधि उसके शासन काल को माना गया है।

इसके सिक्के अजमेर से नासिक तक के क्षेत्र में मिले है। ये चाँदी एवं ताँबे के है, सिक्के निश्चित मानक के है, उसके समय में काषार्पण (सोने तथा चाँदी के सिक्के) की विनिमय दर 1:35 के अुनपात मे थी। नासिक के एक लेख में 70,000 काषार्पणो का मूल्य 2000 स्वर्ण मुद्रा में दिया गया है, सिक्कों पर वह 'राजन्' की उपाधि धारण किए हुए है।

नहपान की **पुत्री दक्षमित्रा** का विवाह **उषावदात** के साथ हुआ था। उषावदात को **ऋषभदत्त** के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने अपने श्वसुर की युद्धों में तथा दान–पुण्य आदि कार्यो में बड़ी सहायता की थी। उषावदात के गुहालेख नासिक एवं कार्ल (पूना) से मिले हैं। नहपान के अमात्य आर्यमन का एक अभिलेख जुन्नार (पूना) से मिले है। उषावदात (ऋषभदत्त) नहपान के समय में उसके दक्षिणी प्रांत–गोवरधन (नासिक) तथा मामल्ल (पूना) का वायसराय था।

नहपान द्वारा राज्य विस्तार हेतु किये गये युद्धों के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है, किन्तु मालवो पर विजय के विषय में नासिक अभिलेख से प्रकाश पड़ता है, इस अभिलेख के अनुसार नहपान ने अपने दायाद उषावदात को अपने मित्र उत्तमभद्रो की मालवो के विरूद्ध सहायता के लिए भेजा था। इस युद्ध में उषावदात की विजयी हुई। विजय के पश्चात् उसने पुष्कर तीर्थ में स्नान किया एवं ब्राह्मणों को गौओं और स्वर्ण आदि का दान दिया। इस प्रकार नहपान का अजमेर तक का अधिकार प्रमाणित होता है, परन्तु यह मालव कौन थे? इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है।

नासिक और पूना जिला को उसने सातवाहनों से जीता था। नासिक के पास एक गुफा की दीवार पर उषावदात का एक लेख खुदा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि काठियावाड़, महाराष्ट्र और कोंकण क्षत्रप नहपान के राज्य में सम्मिसित था। इसप्रकार उसका राज्य उत्तर में अजमेर से लेकर दक्षिण में उत्तर महाराष्ट्र तक विस्तृत था। पेरीप्लस के अनुसार उसकी राजधानी **मीननगर** (भड़ौच तथा उज्जैन के बीच स्थित) थी।

क्षहरातो द्वारा सातवाहनो की पराजय को सातवाहन भूल नहीं पाये थे और वे गौतमीपुत्र शातकर्णि (सातवाहन शासक) के नेतृत्व में नहपान से युद्ध किए। युद्ध काफी भीषण हुआ किन्तु परिणामस्वरूप सातवाहनों ने अपनी पराजय का बदला लिया और अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया। वे अपनी सभी प्रदेश जो नहपान द्वारा विजित किये गये थे, पुनः प्राप्त किये।

जैन ग्रंथों के अनुसार जब शातकर्णि दो वर्ष तक घेरा डालकर भी नहपान की राजधानी को जीत नहीं सका, तब उसने चालाकी से अपने अमात्य को नहपान के पास भेजकर उसे दान–पुण्य में धन खर्च करने को प्रेरित किया और जब उसका राजकोष खाली हो गया, तब आक्रमण करके सरलता से उसे हरा दिया। संभव है कि इस युद्ध में गौतमीपुत्र शातकर्णि ने नहपान को पराजित कर उसे मार डाला। नहपान ने लगभग 119 ई०– 125 ई॰ तक शासन किया। जोगलथम्बी से प्राप्त नहपान के बहुसंख्यक सिक्के गौतमीपुत्र शातकर्णि के द्वारा पुनर्रकित किसे गये है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमपुत्र ने नहपान के जोगलथम्बी स्थित कोषागार पर अधिकार कर लिया। नहपान के पश्चात् शकों की शक्ति कुछ समय के लिए क्षीण हो गई। डॉ० राधाकुमूद मुखर्जी ने लिखा है कि 'नहपान' के निधन पर उसके वंश का राज्य समाप्त हो गया। नहपान के उतराधिकारी के विषय में हमें ज्ञात नहीं हैं।

3.7.2 उज्जैन का शक–क्षत्रप कुल

सुराष्ट्र एवं दक्षिणी गुजरात के बाद शको ने मालवा पर अधिकार कर लिया और वहाँ एक अलग राज्य की स्थापना की परिणामस्वरूप एक नवीन वंश भारतीय इतिहास में प्रकाशमान हुआ जो कार्दमक वंश

के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पश्चिमी भारत में इस नए वंश को स्थापित करने का श्रेय क्षत्रप यसामोतिक का पुत्र **चस्टन** को जाता है। इसके नाम से इस वंश को **चस्टन वंश** भी कहा जाता है।

चस्टन पहले **क्षत्रप** तदोपरान्त **महाक्षत्रप** बना। यह संभवतः कुषाणों की अधीनता में पहले सिन्ध क्षेत्र का क्षत्रप था। नहपान की मृत्यु के पश्चात् उसे कुषाण साम्राज्य के दक्षिणी–पश्चिमी प्रांत का वायसराय नियुक्त किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में उसने अपने को स्वतंत्र कर महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर लिया। कुछ विद्धानों का मत है कि सन् 78 ई॰ में अपने राज्यारोहन के समय उसने एक शक संवत् (शक नृप काल) चलाया। किन्तु अधिकांश विद्धान इसे असंगत मानते हैं।

वृद्धावस्था में चस्टन ने अपने पुत्र **जयदामन्** को क्षत्रप नियुक्त किया। संभवतः उसने सातवाहनों से उज्जयिनी को जीत लिया था। चस्टन के जीवन काल में ही उसके पुत्र जयदायन् की मृत्यु हो गयी और वह स्वतंत्र शासक नहीं बन पाया क्योंकि उसका उल्लेख क्षत्रप के रूप में तो है किन्तु महाक्षत्रप के रूप में नहीं। उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। चस्टन ने अपने जीवनकाल में ही अपने पौत्र रूद्रदामन् (जयदामन् का पुत्र) को क्षत्रप नियुक्त किया। अन्धौ (कच्छखाड़ी) अभिलेख से ज्ञात होता है 130 ई॰ में चस्टन अपने पौत्र रूद्रदामन् के साथ मिलकर शासन कर रहा था। चस्टन की एक पाषण प्रतिमा मथुरा से प्राप्त हुई है, जो मथुरा संग्रहालय में अभी सुरक्षित ढ़ंग से रखी हुई है। प्रो॰ जोवो दुब्रुए का विचार है कि वह गौतमीपुत्र शातकर्णि का सामन्त था। बूसर तथा भण्डाकर के मतानुसार जयदामन् को सातवाहनों से पराजय का मूँह देखना पड़ा था इसलिए वह महाक्षत्रप नहीं बन सका किन्तु अन्धौ अभिलेख के अनुसार इन इतिहासकारों का मत स्पष्टतः असंगत प्रतीत होता है क्योंकि यह अभिलेख चस्टन और उसके पौत्र रूद्रदामन् को एक साथ 130 ई० मे शासन करने का संकेत देता है।

चस्टन की मृत्यु के पश्चात् **रूद्रदामन्** एक स्वतंत्र शासक के रूप में सामने आता है। वह महाक्षत्रप की उपाधि धारण करता है। वह अभी तक भारत में शासन करने वाले सभी शक शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली, महान् विजेता, प्रजावत्सलय एवं महत्वपूर्ण था। जूनागढ़ (गिरनार) से शक संवत् 72 (150 ई०) का उसका एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति के रूप में है। इसमें उसकी विजय व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण प्राप्त होता है, उसके महाक्षत्रप की उपाधि से संकेत मिलता है कि उसके पूर्व शको की शक्ति निर्बल पड़ गयी थी जिसे अपने बाहुबल से रूद्रदामन् ने पुनः प्रतिष्ठत किया।

जूनागढ़ अभिलेख से रूद्रदामन् के निम्नलिखित प्रदेशों पर शासन की जानकारी प्राप्त होती है,– सिन्धु (सिन्धु घाटी का पश्चिम भाग), सौवीर (सिन्धु घाटी का पूर्वी भाग), कच्छ, आनर्त (उतरी काठियावाड़), सुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़), मरू (मारवाड़), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), आकर (पूर्वी मालवा) और अवन्ति (पश्चिम मालवा) आदि।

आकर–अवन्ति – इनसे तात्पर्य पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा से है। आकर की राजधानी विदिशा तथा अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी में थी।

अनूप – नर्मदा तट पर स्थित माहिष्मती में यह प्रदेश स्थित था। इस स्थान की पहचान मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले में स्थित माहेश्वर अथवा मान्धाता से की जाती है।

अपरान्त – इससे तात्पर्य उत्तरी कोंकण से है। इसकी राजधानी शुर्पारक में थी। प्राचीन साहित्य में इस स्थान का प्रयोग पश्चिमी देशों को इंगित करने के लिए किया गया है। महाभारत में इसे परशुराम की भूमि बताया गया है।

आनर्त तथा सुराष्ट्र – इससे तात्पर्य उत्तरी तथा दक्षिणी काठियावाड़ से है। आनर्त की राजधानी द्वारका तथा सुराष्ट्र की राजधानी गिरिनगर में थी।

कुकुर – यह आनर्त का पड़ोसी राज्य था। डी०सी० सरकार के अनुसार यह उत्तरी काठियावाड़ में स्थित था।

स्वभ्र – गुजरात की सावरमती नदी के तट पर यह प्रदेश था।

मरू – इस स्थान की पहचान राजस्थान स्थित मारवाड़ से की जाती है।

सिन्ध तथा सौवीर – निचली सिन्धु नदी घाटी के क्रमशः पश्चिम तथा पूर्व की ओर ये प्रदेश स्थित थे। कनिष्क के सुई–बिहार लेख से निचली सिन्धु घाटी पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है। ऐसा लगता है कि रूद्रदामन् ने कनिष्क के उत्तराधिकारियों को हराकर इस भूभाग पर अपना अधिकार कर लिया था।

निषाद – महाभारत में इस स्थान का उल्लेख मत्स्य के बाद मिलता है जिससे सूचित होता है कि यह उत्तरी राजस्थान में स्थित था। यही विनशन तीर्थ था। वूलर ने निषाद देश की स्थिति हरियाणा के हिसार–भटनेर क्षेत्र में निर्धारित की है।

रूद्रदामन् का सातवाहन नरेश के साथ युद्ध में इतिहासकारो में मतभेद की स्थित है। कुछ विद्वानों का मानना है कि रूद्रदामन ने दक्षिणापथ के स्वामी गोतमीपुत्र शातकर्णि को दो बार पराजित किया, किन्तु संबंध में निकटता के कारण उसका वध नहीं किया किन्तु कतिपय विद्वानों का यह मत असंगत प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों जेसे–रैप्सन आदि के अनुसार रूद्रदामन् से पराजित होने वाला सातवाहन नरेश वासिष्ठीपुत्र पुलमावी था। नासिक अभिलेख से पता चलता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा विजित प्रदेशों जैसे–असिक, अस्मक, मूलक, सुराष्ट्र, कुक्कुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर तथा अवन्ति आदि में से अधिकांश प्रदेशों को उसकी मृत्यु के पश्चात् रूद्रदामन ने जीत लिया था। रूद्रदामन का यह विजय कि किस सातवाहन नरेश के साथ युद्ध किया था, विवाद का विषय हो सकता है किन्तु यह निर्विवाद साबित हो चुका है कि इस विजय के पश्चात् रूद्रदामन का साम्राज्य अत्यंत विस्तृत हो गया था। सिन्ध तथा सौवीर को उसने कनिष्क के उतराधिकारियों से जीता होगा। संभवतः उत्तर से आक्रमण करने वाले स्वाभिमानी एवं अदम्य यौद्येयों को भी उसने पराजित किया। यौद्येय गणराज्य पूर्वी पंजाब में स्थित था। इसकी पुष्टि जूनागढ़ अभिलेख करता है। यौद्येय अत्यंत वीर एवं स्वाधीनता प्रेमी थे। पाणिनी ने उन्हें 'आयुधजीवी संघ' अर्थात् 'शस्त्रो के सहारे जीवित रहने वाला कहा है।

रूद्रदामन एक महान विजेता के साथ–साथ प्रजापालक सम्राट भी था। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील जिसे अशोक ने भी मरम्मत कराकर उससे नहरें निकलवायी थी, वह झील दैवीय प्रकोप का शिकार हो गया था। उसकी बाँध भारी वर्षा के कारण टूट गया था। प्रजा को उसके कारण कृषि–कार्य में बाधा पहुँच रही थी। फलस्वरूप रूद्रदामन ने उसे पुनर्निर्मित कराया एवं पहले से तिगुना

अधिक मजबूत बाँध बनवा दिया। हालांकि इस बाँध की मरम्मत के लिए उसके मंत्रीपरिषद की सहमति नहीं थी। इसके बावजूद भी रूद्रदामन ने अपने व्यक्तिगत कोष से सुविशाख के द्वारा इसे बनवाया। इस कार्य हेतु रूद्रदामन ने अपनी प्रजा से किसी प्रकार का अतिरिक्त कर नहीं लगाया एवं नहीं किसी प्रकार से पहले के करो में वृद्धि की। वह एक उदार शासक था जिसने न तो अपनी प्रजा से कभी अनुचित धन वसूला और न ही बेगार (विष्टि) तथा प्रणय (पुण्यकर) ही लिया। उसका कोष स्वर्ण, रजत, हीरे एवं बहुमूल्य धातु से परिपूर्ण था।

रूद्रदामन का साम्राज्य अत्यंत विशाल एवं विस्तृत था। उसका साम्राज्य प्रांतों में विभक्त था। प्रत्येक प्रांत का शासक योग्य तथा विश्वासपात्र अमात्य (राज्यपाल) के अधीन रखा गया था। आनर्त सुराष्ट्र प्रान्त का शासक सुविशाख था। अन्य प्रादेशिक शासको के बारे में हमें ज्ञात नहीं है। उसकी एक मंत्रीपरिषद् थी जिसमें दो प्रकार के मंत्री होते थे–**मतिसचिव** जो उसके व्यक्तिगत सलाहकार होते थे एवं दूसरा **कर्मसचिव,** जो कार्यकारी मंत्री तथा कार्यपालिका के अधिकारी होते थे। इन्हीं में से राज्यपाल, कोषाध्यक्ष, अधीक्षक आदि की नियुक्ति की जाती थी। रूद्रदामन् प्रशासनिक कार्य अपनी मंत्रीपरिषद् की परामर्श से करता था तथा शक्ति सम्पन्न होते हुए भी वह निरंकुश नही था। जूनागढ़ अभिलेख में उसे 'भ्रष्ट–राज–प्रतिष्ठापक' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त की तरह उसने भी पराजित राजाओं के राज्य को लौटा दिया था। संभवतः ये वे राजा थे जिसे गौतमीपुत्र शातकर्णि ने हराया था। नासिक अभिलेख में रूद्रदामन् को क्षत्रिय राजाओं के मान–दर्शन करने वाला कहा गया है।

रूद्रदामन एक महान् विजेता के साथ–साथ एक विद्वान एवं विद्या प्रेमी भी था। उसके समय में उज्जयिनी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। वह एक वैदिक धर्मानुयायी था फलतः उसने संस्कृत भाषा को राज्याश्रय दिया। उसका शिलालेख अपनी शैली की रोचकता, भाव–प्रवणता एवं हृदयावर्जन के लिए प्रसिद्ध है। वस्तुतः वह एक छोटा गद्य–काव्य ही है। इससे पता चलता है कि रूद्रदामन् व्याकरण, राजनीति, संगीत तथा तर्क विद्या में प्रवीण था। उसे गद्य एवं पद्य दोनों रचनाओं में निपुण बताया गया है। विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया उसका अभिलेख प्राचीनतम अभिलेखों में से एक है तथा इससे उस समय संस्कृत भाषा के पर्याप्त रूप से विकसित होने का संकेत मिलता है। इसके समय तक शक भारतीय समाज में पूर्णतया धुलमिल गये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूद्रदामन् एक महान् विजेता, साम्राज्य निर्माता, प्रजावत्सल्य, उदार एवं लोकोपकारी शासक होने के साथ बहुमुखी प्रतिभा का भी धनी था। वह हिन्दु धर्म एवं संस्कृति का महान् उन्नायक था। सामान्यतः उसका शासन काल 130 ई० से 150 ई० तक स्वीकार किया जाता है। 150 ई० के गिरनार अभिलेख के पश्चात् हम उसका नाम नहीं सुन पाते हैं। उसकी मृत्यु अथवा उसका अंत किन परिस्थितियों में एवं कैसे हुआ यह हमें ज्ञात नहीं है। निःसंदेह उसका शासनकाल पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति के चरमोत्कर्ष को इंगित करता है।

रूद्रदामन् की मृत्यु के पश्चात् उज्जयिनी में शको की शक्ति एवं प्रभुत्व में क्रमशः क्षीणता आती गयी। इसके पश्चात् इसका पुत्र दामय्सद क्षत्रप तदोपरांत महाक्षत्रप हुआ। इसने कुछ वर्षों तक शासन

किया। इसके बाद उसका पुत्र जीवदामन् महाक्षत्रप बना। इसके बाद लगभग 2 वर्षों तक महाक्षत्रप का पद रिक्त रहा। तत्पश्चात् रूद्रसिंह प्रथम→पुनः जीवदामन् क्षत्रप से महाक्षत्रप बना। इनके बीच में समय–समय पर महाक्षत्रप का पद 2–2 वर्ष तक रिक्त रहा फलतः आभीरों की शक्ति प्रबल हुआ। तत्पश्चात् थोड़े उतार→चढ़ाव के बाद पुनः रूद्रसिंह प्रथम→पुनः जीवदामन्→रूद्रसेन प्रथम ईश्वरदत (आभीर)→यशोदामन→दामसेन→संघदामन् आदि ने क्षत्रप तदोपरांत महाक्षत्रप बने। हालाँकि इनके बीच में कुछ वर्षों लिए महाक्षत्रप का पद रिक्त भी रहा। अल्टेकर के अनुसार मालावा में शक–क्षत्रपो के सिक्के 250 ई० के बाद नहीं मिलते। उनके विचार से वाकाटक नरेश विन्ध्यशक्ति ने मालवा को शको से छीन लिया।

3.8 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि शक सत्ता का धीरे–धीरे ह्रास होने लगा। हालाँकि रूद्रदामन् के मृत्यु के पश्चात् भी लगभग 200 वर्षों तक चष्टन वंश शासन करता रहा। रूद्रदामन् के उतराधिकारी दुर्बल एवं अयोग्य थे व उनके शासनकाल की कोई उल्लेखनीय घटना उपलब्ध नहीं है। इस वंश का अंतिम शासक रूद्रसेन (रूद्रसिंह) तृतीय हुआ जिसे गुप्त शासक चंद्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटको से वैवाहिक संबंध स्थापित कर मार डाला अर्थात् शको का पूर्णरूपेण उन्मूलन कर दिया एवं शको का राज्य विशाल गुप्त साम्राज्य में विलीन हो गया।

3.9 प्रस्तावित पुस्तक

प्राचीन भारत का इतिहास – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

प्राचीन भारत का इतिहास – मोहन लाल गुप्ता

भारत का प्राचीन इतिहास – रामशरण शर्मा

प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के० सी० श्रीवास्तव

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति – डॉ० वी० के० पाण्डेय

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शक कौन थे? पश्चिमी भारत में उनके शासन एवं कार्यों का वर्णण कीजिए।
2. नहपान की उपलब्धियों पर प्रकाश डालें।
3. रूद्रदामन् की उपलब्धियों पर प्रकाश डालें।
4. भारत में रूद्रदामन् किस प्रकार शको का सबसे महत्वपूर्ण शासक के रूप में उभरा, समीक्षा कीजिए।

इकाई एकः कुषाणों का उदय

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 स्रोत

1.4 कुषाणों की उत्पत्ति

1.4.1 प्रारम्भिक इतिहास

1.4.2 दो शाखाओं में विभाजन

1.4.3 पाँच भागों में विभाजन

1.4.4 संगठित रूप

1.5 कुजुल कैडफिसेस

1.6 विम कैडफिसेस

1.7 कनिष्क

1.8 परवर्ती कुषाण शासक

1.8.1 वासिष्क

1.8.2 हुविष्क

1.8.3 कनिष्क द्वितीय

1.8.4 वासुदेव

1.9 उत्तरवर्ती कुषाण शासक

1.9.1 कनिष्क तृतीय

1.9.2 वासुदेव द्वितीय

1.10 कुषाण साम्राज्य का पतन

1.11 शासन व्यवस्था

1.12 सामाजिक व्यवस्था

1.13 आर्थिक व्यवस्था

1.14 धर्म

1.15 स्थापत्य

1.16 कला

1.16.1 गाँधार कला

1.16.2 मथुरा कला

1.16.3 विद्वानों को आश्रय

1.17 संदर्भ ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य के अवसान के पश्चात भारत की केन्द्रीयकृत राजनैतिक शक्ति का भी लोप हो गया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर देश के पश्चिमोत्तर मार्गों से अनेक विदेशी आक्रांताओं ने आकर अपनी शक्ति के बल पर देश के अनेक भागों में अपनी सत्ता की प्रतिस्थापना की। विदेशी नेतृत्व में अनेक राज्यों की स्थापना हुई। इस का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि इस युग में मध्य–एशिया से भारत के प्रत्यक्ष सांस्कृतिक, आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हुए। इस इकाई में हम इस काल में भारत में कुषाणों के उदय के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम कुषाणों की उत्पत्ति, साम्राज्य विस्तार, राजाओ के कार्य एवं उपलब्धियाँ तथा शासन व्यवस्था के सम्बन्ध जाकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 स्रोत

कुषाणकालीन इतिहास चीनी स्रोतों, बौद्ध ग्रन्थों, संस्कृत गन्थों', चीनी यात्रियो–फाह्यान तथा ह्वेनसांग के विवरणों, तिब्बती स्रोतों, तत्कालीन प्रमुख स्थानों मथुरा, तक्षशिला, कौशाम्बी, सुई विाहर आदि से प्राप्त अभिलेखों तथा कुषाण शासकों द्वारा जारी किए गए ताँबे व सोने के सिक्कों आदि से ज्ञात किया जा सकता है।

1.4 कुषाणों की उत्पत्ति

प्रारम्भिक कुषाणों के मूल स्थान एवं उनकी राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में विद्धानों में मतैक्य का अभाव मिलता है। 'कुषाण' शब्द के सम्बन्ध में कुछ विद्धानों का मानना है कि यह कुषाणों के मूल पुरूष के नाम से सम्बद्ध है जो कि इस वंश का संस्थापक रहा होगा। जबकि अनेक विद्धानों का मत है कि 'कुषाण' शब्द कबीले अथवा कुल का प्रतीक है। कुषाणों की राष्ट्रीयता केा कुछ विद्धानों ने हूणों, मंगोलों शकों आदि से जोड़ा है जो कि अभी भी विवेचनाधीन है।

1.4.1 प्रारम्भिक इतिहास

कुषाण 'यू–ची' जाति के लोग थे जो उत्तर–पश्चिमी चीन में 'कान्सू प्रांत' और 'निग–सिया' प्रांत के मूल निवासी थे। लगभव 165 ई0 पू0 में उनके निकट निवास करने वाली एक अन्य तुर्की खानाबदोश जाति हुंग्नु (ह्युग–नू) ने उनपर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया और उन्हें अपने मूल निवास स्थान को छोड़ने पर विवश कर दिया। तब यू–ची जाति दक्षिण– पश्चिम की ओर अभिगमन कर गई। वहां उसका सामना इली नदी घाटी क्षेत्र में निवास करने वाली जाति वु–सुन (Wu-Sun) से हुआ। इस युद्ध में वु–सुन जाति का सरदार ''नयन–ताऊ–मी' मारा गया। तब वु–सुन जाति ने भागकर उत्तर में स्थित 'हुंग–नु' (हूण) राज्य में शरण ली। इस युद्ध के पश्चात भी 'यू–ची' जाति ने पश्चिम की ओर अपना अभिगमन जारी रखा।

1.4.2 दो शाखाओं में विभाजन

'वु–सुन' जाति से संघर्ष के पश्चात, 'यू–ची' जाति दो शाखाओं में विभाजित हो गयी। इनमें से अपेक्षाकृत छोटी शाखा दक्षिण में जाकर तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्रों में बस गयी। जबकि दूसरी बड़ी शाखा ने दक्षिण–पश्चिम दिशा में आगे बढ़ते हुए सीर–दरया घाटी के उत्तर में निवास करने वाले

शकों पर भीषण आक्रमण करके उन्हें खदेड़ दिया और स्वयं वहां बस गई। परन्तु यू–चीयों का यह बसेरा भी अल्पकालिक ही सिद्ध हुआ। क्योंकि पराजित वु–सुन जाति ने अपने नए सरदार 'क्वेन–मो' के नेतृत्व में अपने आश्रयदाता 'ह्युग–नू' (हूण) की सहायता से लगभग 140 ई0पू0 में 'यू–चीयों' पर हमला करके उन्हें सीर–दरिया घाटी से खदेड़ दिया। तब यू–ची जाति 'वक्षु की घाटी' में और वहाँ के शांतिप्रिय निवासियों को जिन्हें चीन के लोग ताहिया (बौक्ट्रियन) पुकारते थे, उन्हें बड़ी आसानी से पराजित करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात आक्सस की घाटी के उत्तरी भाग में स्थित सोग्दियाना (बोखरा) पर अधिकार करके उसे अपनी राजधानी घोषित कर दिया। चीनी इतिहासकार–पान–कू (Pan-Ku) के विवरणानुसार पहली सदी ई0पू0 के आरम्भ तक यू–ची जाति ने खानाबदोश जीवन का त्याग करके स्थायी निवास बना लिया था।

1.4.3 पाँच भागों में विभाजन

यू–ची जाति अब अपने इन स्थायी बसेरों में पाँच भागों में विभाजित हो गयी। यहां पाँच प्रदेश थे–

1. हियू–मी– हिंदूकुश और पामीर के पठार के मध्य का वाकहान प्रदेश।
2. कुआँग–मो–हिंदूकुश के दक्षिण का चित्राल प्रदेश।
3. कुएई–चुआंग (कुषाण)– चित्राल और पंजशिर के प्रदेशों के मध्य का भाग।
4. हि–थुन– पंजशिर का परवान प्रदेश।
5. काओफू– इसका साम्य काबुल से किया जाता है।

1.4.4 संगठित रूप–

हानवंश के परवर्ती इतिहास से ज्ञात होता है कि इस विभाज्य के प्रायः एक सदी के बाद कुएई–चुआंग (कुषाण) के प्रमुख सरदार (यवुग) 'क्यू–त्सीओ–किओ' ने अन्य चारों प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसके पश्चात उसने एक संगठित व शक्तिशाली राज्य की नीव डाली। वह स्वयं इस संगठित राज्य का राजा (वाँग) बन गया। इस राजा (वाँग) की साम्यता कुषाणकालीन सिक्कों पर अंकित कुजुल कड़फाइसिस के साथ स्थापित की गई है।

1.5 कुजुल कडफाइसिस

कुजुल कडफाइसिस के इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी पान–कू के ग्रंथ 'हाऊ–हान–शू' से मिलती है। साथ ही इसके द्वारा जारी किये गए सिक्कों से भी इस विषय में सूचनाएँ प्राप्त होती है। इसकी इतिहास में प्रसिद्धि 'कडफिसेस प्रथम' नाम से भी है। इसके सिक्कों से ज्ञात होता है कि काबुल घाटी में इसकी शक्ति के विस्तार के कारण यूनानी शक्ति धीरे–धीरे समाप्त होती चली गई। कुजुल के एक प्रकार के सिक्कों में एक ओर काबुल में शासन कर रहे ग्रीक शासक हर्मियस का नाम ग्रीक में अंकित है जबकि उसके दूसरी ओर कुजुल कडफाइसिस का नाम खरोष्टी लिपि में अंकित है। इस पर कुजुल की उपाधियाँ भी अंकित है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में दोनों राज्यों के मध्य मित्रता रही होगी। किन्तु बाद के सिक्कों पर यूनानी शासक का नाम नहीं मिलता है और साथ ही इन सिक्कों पर कुजुल की उपाधि –'महाराजस' अर्थात 'महाराज' अंकित है। इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाद में कुजुल कैडफिसस ने ग्रीकों की सत्ता से मुक्ति प्राप्त

कर ली थी और स्वतंत्र शासक बन बैठा था। ग्रीक शासक हर्मियस के पश्चात पह्लवो (पार्थियन) ने किपिन (काबुल) पर अधिकार कर लिया था। इससे सम्भवतः प्रतीत होता है कि कुषाण शासक कुजुल कैडफिसस ने (किपिन) काबुल एवं दक्षिणी अफगानिस्तान पर विजय पार्थियनों को परास्त करके ही प्राप्त की थी। कुजुल कैडफिसस ने पार्थियनों पर यह विजय अपने शासन काल के अंतिम समय में प्राप्त की होगी जब सबसे प्रसिद्ध शासक गोडोफरनिस की मृत्यु हो चुकी होगी। क्योंकि 'तख्तेबही' लेख के अनुसार पह्लव राजा गोडोफरनिस 45 ई0 में पेशावर पर शासन कर रहा था।

किपिन (काबुल), दक्षिणी अफगानिस्तान के हिस्सों पर अधिकार हो जाने से कुजुल कडफाइसिस का पश्चिम के साथ सम्पर्क स्थापित हो गया। चीनी स्रोतों के अनुसार कुजुल कडफिसेस अस्सी वर्ष की आयु तक जीवित रहा। इस आधार पर इतिहासकारों ने उसका शासनकाल 15 ई0 से 65 ई0 के मध्य स्थित किया है।

1.6 विम कैडफाइसिस

चीनी स्रोतों से पता चलता है कि कुषाण सम्राट कुजुल कैडफिसेस की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र 'यन–काओ–चेन' सम्राट बना। इसके सिक्कों पर 'महाराज उवियम कवथिस' अंकित है जिसका साम्य विम कैडफिसस से किया गया है। चीनी ग्रंथ 'हाऊ–ह्यान–यू' में उल्लेख मिलता है कि विम कैडफिसस ने 'तियन–चिओ' की विजय की थी और उसने अपने प्रतिनिधि के रूप में अपने एक सेनापति की नियुक्ति वहां की थी। विद्वानों द्वारा 'तियन–चिओ' विजय का समीकरण भारतीय क्षेत्रों की विजय से लगाया गया है सम्भवतः यह सिंधु क्षेत्र में पंजाब के इलाके थे।

इससे स्पष्ट होता है कि भारत की प्रमुख भूमि क्षेत्रों में कुषाण स्वतंत्रता की स्थापना विम कैडफिसस द्वारा की गई थी। विम कैडफिसेस द्वारा चलाए गए सिक्कों में महाराज, राजाधिराज आदि उपाधियाँ मिलती हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह एक स्वतंत्र सत्ताधारी शासक था। विम कैडफिसस के सिक्कों पर उत्कीर्ण शिव और नंदी की आकृतियाँ तथा 'माहेश्वर की उपाधि से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने हिन्दु धर्म अपना लिया था तथा वह हिंदू देवता शिव का अनन्य उपासक था।

विम कैडफिसेस द्वारा स्वर्ण एवं ताम्र के सिक्कों का प्रचलन किया गया था। उसके सिक्कों पर रवरोष्ठी व ग्रीक लिपियों में लेखन किया गया था। सिक्कों का विस्तृत क्षेत्रों में पाये जाने के आधार पर विद्वानों का मत है कि विम कैडफिससे के साम्राज्य का विस्तार आक्सस घाटी क्षेत्र से लेकर सिंधू घाटी क्षेत्र तक विस्तृत था। यद्यपि उसके सिक्के अल्प मात्रा में कौशाम्बी (इलाहाबाद) और बसाढ़ (बिहार) से भी बरामद हुए हैं।

विम कैडफिसेस द्वारा जारी किए गये स्वर्ण सिक्कों से उसके राज्य की उन्नत आर्थिक स्थिति का पता चलता है। विम कैडफिसेस के कारण व्यापार वाणिज्य के क्षेत्रों में प्रगति हुई थी। उसके काल में भारत का व्यापार पश्चिम में रोम तक फैला हुआ था। उसके काल में चीन–भारत में मध्य व्यापार के क्षेत्र में उन्नति हुई थी।

कुषाण काल की एक मूर्ति उत्तर प्रदेश के मथुरा के मॉट नामक स्थान से प्राप्त हुई है। यह राजसिंहांसन पर बैठी हुई एक विशाल प्रतिमा है। इस मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख के आधार पर इतिहासकार काशी प्रसाद जासवाल ने इसका साम्य कुषाण सम्राट विम कैडफिसेस से किया है। इसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि विम कैडफिसेस का साम्राज्य विस्तार सम्भवतः मथुरा तक विस्तृत था।

1.7 कनिष्क

विम कैडफिसेस के पश्चात कुषाण साम्राज्य की गद्दी पर सम्राट कनिष्क बैठा। सम्राट कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी शासक था। वह महान विजेता एवं बौद्ध धर्म को सरंक्षण देने वाला था। इस दृष्टि से उसके व्यक्तित्व में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक योग्यता एवं सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म के प्रति समर्पण का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।

सम्राट कनिष्क के काल के अनेक अभिलेखों, उसके द्वारा निर्गत ताम्र व स्वर्ण सिक्कों व बौद्ध साहित्य आदि के आधार पर हम उसके काल के इतिहास को जानते हैं। कनिष्क कालीन अल्प ज्ञात स्रोतों के आधार पर सम्राट कनिष्क के आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य का आभाव दिखाई देता है। कनिष्क के पूर्व के कुषाण शासकों कुजुल कैडफिसियस व विम कैडफिसेस से उसका वास्तविक रूप में क्या सम्बन्ध था, अभी यह भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों जैसे स्टेनकाइनों आदि का मत है कि कनिष्क प्रथम यू–ची जाति की छोटी शाखा से सम्बंध रखता था और उसका आगमन खोतान से हुआ था। परन्तु यह भी असत्य प्रतीत होता है क्योंकि चीनी स्रोतों में कनिष्क प्रथम के वंशज वासुदेव को ता–यू–ची (बड़ी यू–ची) का राजा उल्लेखित किया गया है। कनिष्क के सिंहासनारूढ़ होने की तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों के अनेक मत है।

विस्तृत कुषाण साम्राज्य क्षेत्र में अनेक स्थानों यथा–काशी, गोरखपुर जिले में स्थित गोपालपुर स्तूप व काबुल के समीप बेग्राम नामक स्थानों पर सम्राट विम कैडफिसेस व सम्राट कनिष्क के सिक्के साथ–साथ प्राप्त हुए हैं। दोनों के ही सिक्कों की बनावट मूल रूप से समान प्रदर्शित होती है। वे आकार में चतुष्कोणिक है' व उनकी तौल व बनावट एक समान है। इन सिक्कों की एक समान एक रूपता एंव तक्षशिला स्थित पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर विम कैडफिसेस व कनिष्क के कालों में अत्यंत समीपता प्रदर्शित होती है। वस्तुतः कनिष्क सम्राट विम कैडफिसेस का उत्तराधिकारी था।

कुषाण सम्राट कनिष्क के राज्यारोहण का वर्ष वस्तुतः 78 ई0 ही था। यद्यपि फ्लीट आदि विद्वानों का मानना था कि सम्राट कनिष्क का राज्यारोहण दोनों कैडफिसेस सम्राटों से पूर्व हुआ था। फ्लीट के अनुसार कनिष्क का राज्यारोहण 58 ई0 पूर्व हुआ था। कनिष्क ने इस अवसर पर एक सम्वत् भी प्रारम्भ किया था जो कि कालान्तर में विक्रमी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ परन्तु तक्षशिक्षा से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों में कैडफिसेस शासकों के सिक्के खुदाई में निचली सतहों पर मिले है जबकि कनिष्क के सिक्के इससे ऊपरी सतह पर प्राप्त होते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि कैडफिसेस शासक कनिष्क के पूर्ववर्ती थे। साथ ही चीनी स्रोतों में भी कैडफिसेस शासक पूर्ववर्ती ही माने गए हैं। अतः यह मतः सत्य प्रतीत नहीं होता है।

वही डा0 आर0 सी0 मजुमदार कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 248 ई0 में मानते हैं जबकि आर0सी0 भंडारकर कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 278 ई0 मानते है। लेकिन सम्राट कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि के तृतीय शताब्दी तक मानने के पर्याप्त स्रोत व प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

अतः इस मत भिन्नता के बावजूद भी कनिष्क की राज्यारोहण की तिथि 78 ई0 में ही ठीक प्रतीत होती है। 78 ई0 में प्रचलित शक सम्वत् ही कनिष्क के राज्यारोहण की अधिक प्रमाणित तिथि है। इस संवत पर आधारित गणना पद्धति कनिष्क के उत्तराधिकारियों द्वारा भी प्रयुक्त की गई थी। बाद में यह संवत भारत के शक राजाओं द्वारा भी वृहद रूप में प्रयुक्त हुआ था जिससे यह शनैः शनैः शक सम्वत् के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

1.8 परवर्ती कुषाण शासक

1.8.1 वासिष्क

कुषाण सम्राट कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् वासिष्क उसका उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल अत्यंत अल्पकालीन प्रतीत होता है। उसके शासनकाल के दो अभिलेखों मथुरा से प्राप्त कनिष्क संवत् 24 (102 ई0) का अभिलेख व सांची से प्राप्त कनिष्क संवत 28 (106 ई0) का अभिलेख से उसका शासनकाल मात्र चार वर्ष का ही प्रतीत होता है। इसके आधार पर कुषाण शासक वासिष्क के साम्राज्य का विस्तार मथुरा से पूर्वी मालवा तक प्रतीत होता है। इसके विषय में अन्य जानकारियाँ अत्यंत कम है।

1.8.2 हुविष्क

वासिष्क का उत्तराधिकारी कुषाण सम्राट हुविष्क बना। उसका शासनकाल कनिष्क संवत 28 (106 ई0) से कनिष्क संवत 62 (140 ई0) तक प्रतीत होता है। कुषाण सम्राट हुविष्क भी कुषाण वंश एक प्रतापी शासक था। उसने सम्राट कनिष्क के विस्तृत साम्राज्य को अपनी प्रतिभा से संभालने रखा। उसके स्वर्ण एवं तांबे के सिक्के उसके विशाल साम्राज्य क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। उसका साम्राज्य उत्तर में कपिशा से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक विस्तृत रहा होगा। उसकी सत्ता काबुल, कश्मीर, पंजाब, मथुरा, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक अवश्य ही विस्तृत रही थी। अफगानिस्तान में काबुल के निकट वर्दक नामक स्थान से भी उसका एक लेख प्राप्त हुआ है। इससे भी उसका अफगानिस्तान तक साम्राज्य विस्तार की पुष्टि होती है। सम्राट हुविष्क एक सहिष्णु शासक था। उसके सिक्कों पर ब्राहमण धर्म के प्रमुख देवता स्कंद, शिव आदि अंकित मिलते हैं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि उसका झुकाव ब्राहमण धर्म की ओर अधिक था। यद्यपि बौद्धों व जैन मतावलंभियों के प्रति भी वह दयालुता का भाव रखता था। सम्राट हुविष्क के सिक्कों पर हिराक्लीज, सारापीज, मिथ्र, फर्रो आदि देवताओं की भी आकृतियां मिलती हैं। यद्यपि उसके सिक्कों पर महात्मा बुद्ध की आकृति का सर्वथा आभाव मिलता है लेकिन वह बौद्ध के प्रति भी सहिष्णु था। अनुश्रुतियों के अनुसार उसने मथुरा में बौद्धों भिक्षुओं के लिए एक बौद्ध विहार बनवाया था। सम्राट हुविष्क के सिक्के कला की दृष्टि से भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन पर उत्कीर्ण आकृतियाँ अत्यंत सजीव प्रतीत होती हैं। मथुरा उसके साम्राज्य का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभरा। वह एक नगर निर्माता भी था। उसने कश्मीर में अपने नाम से एक नगर जुष्कपुर या हुविष्कपुर भी बसाया।

1.8.3 कनिष्क द्वितीय

हुविष्क के बाद उसका उत्तराधिकारी कनिष्क द्वितीय हुआ। उसका काल कनिष्क संवत 62 (140 ई0) से कनिष्क संवत 67 (145 ई0) तक माना जाता है। पेशावर जिले के 'आरा' नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में बाझेष्क के पुत्र कनिष्क द्वारा शासन करने का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान इस कनिष्क का साम्य सम्राट कनिष्क प्रथम से भी करते हैं। परन्तु यह विचार उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर समीचीन प्रतीत नहीं होता है। निश्चय ही आरा लेख में उल्लखित शासक कनिष्क द्वितीय ही है। इसने महाराज, राजाधिराज, देवपुत्र आदि उपाधियों के साथ–साथ रोमन शासकों के समान कैसर आदि उपाधियां भी धारण की थी।

1.8.4 वासुदेव

कुषाण वंश में कनिष्क कुल का अंतिम प्रतापी राजा वासुदेव हुआ। उसके अभिलेखों से उसका शासनकाल कनिष्क संवत 98 (176 ई0) तक प्रतीत होता है। इसके अधिकतर अभिलेख मथुरा व इसके समीपवर्ती क्षेत्रों से ही प्राप्त हुए हैं। यद्यपि उसके सिक्के पंजाब एवं उत्तर प्रदेश से भी प्राप्त हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वासुदेव (बाजोदेओ) के पूर्वजों द्वारा शासित उत्तर–पश्चिम के प्रदेश वासुदेव के हाथों से निकल गए थे। उसका शासन अब केवल मथुरा के समीपवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया था। इसके सिक्कों की किस्मों की अल्पता उसके द्वारा शासित राज्य क्षेत्र की सीमितता को ही प्रदर्शित करते हैं। वासुदेव के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर शिव और नंदी की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार के सिककों के आधार पर विद्वानों ने वासुदेव को शैव मतानुयायी माना है। वासुदेव के वैष्णव नाम के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह ब्रहामण धर्म को मानने वाला था।

इस प्रकार वासुदेव कुषाणों के कनिष्क कुल का अंतिम सम्राट सिद्ध हुआ। इस कुल के राजाओं का शासनकाल लगभग 99 वर्ष रहा। इनका विशाल साम्राज्य आक्सस की घाटी से सिंधु घाटी व गंगा घटी तक विस्तृत था। ये शासक भारतीय संस्कृति में शनैः शनैः घुलते–मिलते चले गए। ये भारतीय संस्कृति के पोषक व संरक्षक सिद्ध हुए। इनके शासन काल में राजनैतिक एकता के कारण लम्बे समय तक साम्राज्य में शांति स्थापित रही।

1.9 उत्तरवर्ती कुषाण शासक

उत्तरवर्ती कुषाण शासकों का शासन काल द्वितीय सदी के उत्तरार्ध से लेकर तृतीय सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रतीत होता है।

1.9.1 कनिष्क तृतीय

उत्तरवर्ती कुषाण शासकों में सर्वप्रथम कनिष्क तृतीय नामक शासक के विषय में जानकारी मिलती है। इसका शासनकाल 180 ई0 से 210 ई0 तक रहा होगा। इसके सिक्के उत्तर पश्चिम प्रदेशों यथा बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान, पंजाब आदि क्षेत्रों से वृहद मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

मथुरा एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में इसके सिक्कों की अनुपलब्धता से स्पष्ट होता है कि उत्तरवर्ती कुषाणों के काल में सतलज के पूर्वी क्षेत्रों में कुषाणों का प्रभाव समाप्त हो चुका था। कनिष्क तृतीय के सिक्कों की विशिष्टतायें मिलती हैं कि इसके सिक्कों पर इसके द्वारा नियुक्त क्षेत्रपों

के नाम भी प्राप्त होते हैं यथा– 'मही' 'वासु' 'विरू'। अल्तेकर महोदय ने इन क्षत्रपों का साम्य क्रमशः महीश्वर, वासुदेव, विरूपाक्ष से किया है। उनका कहना है कि ये क्षत्रप वस्तुतः इसके भ्राता और पुत्र ही हैं। क्षत्रयों के नाम भारतीय देवताओं से साम्य रखने से निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरवर्ती कुषाण शासक ब्राह्मण धर्म का पालन करते थे और भारतीय संस्कृति में उनका आत्मसातीकरण पूर्ण हो चुका था। सिक्कों पर क्षत्रपों के नामों की उपस्थिति उनके बढ़ते हुए प्रभाव का संकेत करती है।

1.9.2 वासुदेव द्वितीय

कनिष्क तृतीय की मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी वासुदेव द्वितीय कुषाण साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अल्तेकर महोदय ने इसका शासनकाल इसके सिक्कों पर अंकित तिथियों के आधार पर सम्भवतः 210 ई0 से 230 ई0 तक निर्धारित किया है। इसके सिक्कों पर इसका नाम 'वासु' नाम उत्कीर्ण मिलता है। जबकि इनके पृष्ठ भाग पर शिव तथा नंदी की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। इसके आधार पर स्पष्ट होता है कि कुषाणों का भारतीयकरण पूर्ण हो चुका था। इसके सिक्के मुख्यतया बौक्ट्रिया एवं अफगानिस्तान के क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका शासन अब सिमट कर केवल इन्हीं क्षेत्रों में रह गया था। वासुदेव द्वितीय की सैनिक शक्ति की कमजोरी का लाभ उठाकर उसके क्षत्रपों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी एवं अनेक अन्य जातियों ने भी अपने–अपने क्षेत्रों में अपना प्रभाव व शासन स्थापित कर लिया था। यौधेय, मालव आदि अनेक राजवंशों के अतिरिक्त नागवंशी शासकों ने प्रमुख रूप से अपना स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया था। भारत के उत्तर–पश्चिम सीमाओं पर ईरान आदि से आक्रान्ताओं ने अनेक आक्रमण किये और सीमावर्ती क्षेत्रों में अपना प्रभाव स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था।

इन सब कारणों से कुषाण साम्राज्य का अंत सुनिश्चित हो गया था। उत्तरवर्ती प्रमाणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि ईरान के ससैनियन आक्रामण में पराजित कुषाण नरेश वासुदेव द्वितीय ही था न कि कुषाण नरेश प्रथम। वासुदेव द्वितीय के सिक्के वासुदेव प्रथम के सिक्कों से भिन्न प्रकार हैं। वासुदेव द्वितीय के सिक्कों की शुद्धता में कमी आई। इन पर अस्पष्ट यूनानी देवताओं के चित्र व क्षत्रपों के नामों का उल्लेख इसके सिक्कों को अपने पूर्ववर्ती से भिन्न कर देता है। ईरानी आक्राता ससैनियनों द्वारा वासुदेव द्वितीय के सिक्कों के प्रकार को ग्रहण करके ससैनियनव कुषाण प्रकार के सिक्के जारी किये। इन सिक्कों पर ससैनियन व कुषाण विशेषताओं का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।

1.10 कुषाण साम्राज्य का पतन

कुषाण वंश के पतन के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैम्यता का आभाव मिलता है। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों द्वारा अनेक मत प्रस्तुत किये गए हैं।

के0पी0 जायसवाल के अनुसार कुषाणों के उत्तरी भारत, पंजाब आदि क्षत्रों में पतन का प्रमुख कारण भारशिव नागों के अन्तर्गत शक्तिशाली राज्यों की स्थापना रहा। प्रवरसेन प्रथम के नेतृत्व में वाकाटक शक्ति के उदय से भी कुषाणों के पतन की गति और अधिक तीव्र हो गई। परन्तु सिक्कों के विश्लेषण के आधार पर अल्तेकर कुषाणों के पतन के अन्य कारण मानते हैं।

गणराज्यों का उदय भी कुषाणों के अंत का कारण बना। अल्तेकर के अनुसार यौधेयों ने संगठित रूप से कुलिन्द, अर्जुनायन आदि गणराज्यों को एक जुट करके कुषाणों पर विजय प्राप्त की

और उन्हें उनके उत्तर भारत के क्षेत्रों से खदेड़ कर पंजाब में सतलज के पार सिमटने के लिए विवश कर दिया। अल्तेकर ने यौद्धेयों के सिक्कों पर अंकित 'यौधेयनाम जय' 'जयमंत्रधर' आदि विरूदों के उत्कीर्ण होने से इसका अनुमान लगाया है। परन्तु विद्वानों का मत है कि इन सिक्कों में कुषाणों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यह कहना कठिन हो जाता है कि यौधेयों की यह विजय कुषाणों के विरूद्ध ही थी या अन्य किसी के विरूद्ध।

गुप्तों के उदय को भी कुछ विद्वानों ने कुषाणों के पतन का कारण माना है। राखलदास बनर्जी के अनुसार गुप्त साम्राज्य की शक्ति के उदय एवं विस्तार के कारण कुषाण शक्ति का पराभव हो गया। परन्तु गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की विजयों से सम्बन्धित 'प्रयाग प्रशस्ति' से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तों की शक्ति के स्थापित होने से पूर्व ही कुषाण सत्ता का अवसान हो चुका था।

विदेशी आक्रमणों को भी कुषाण शक्ति के अवसान का प्रमुख कारण माना गया है। विंसेट स्मिथ के अनुसार तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तरी भारत में कुषाण सिककों का ईरानीकरण इस बात की ओर इंगित करता है कि कुषाण साम्राज्य का अन्त ईरानी ससैनियनों के भयंकर आक्रमण के फलस्वरूप हुआ। इन आक्रमणों में से एक का उल्लेख 'फरिश्ता' ने भी किया है। ईरानी आक्रमण कुषाणों के पतन में इसलिए भी प्रमुख कारण बने कि कुषाणों की शक्ति क्षीण होने पर कुषाण साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों के सामंतों को कुषाणों की कमजोर शक्ति का लाभ उठाकर विद्रोह करके अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का सुअवर प्राप्त हो गया।

कुषाणों के पतन के कारणों के सम्बन्ध में विभिन्न किंतु अल्पमात्रा में ज्ञात प्रमाणों के आधार पर विद्वानों के विभिन्न मतों के आधार पर यह माना जा सकता है कि नागों, वाकाटकों, यौधेयों आदि के साथ–साथ अन्य भारतीय राजकुलों के उदय ने एवं ससैनियनों के विदेशी आक्रमणों ने कुषाणों की सत्ता का पराभव कर दिया। इसकी परिणति गुप्तों के अन्तर्गत उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना के रूप में हुई।

1.11 शासन व्यवस्था

कुषाणों ने एक विस्तृत साम्राज्य की नींव डाली। अपने चरम उत्कर्ष के काल में कुषाणों का शासन ऑक्सस घाटी–सिंधू घाटी–गंगाघाटी तक वितृत था। कुषाण सम्राट की प्रशासन में स्थिति सर्वोच्च थी। कुषाण शासकों की महाराधिराज की उपाधि से प्रतीत होता है कि अनेक छोटे–छोटे राजा उनका प्रभुत्व स्वीकार करते थे। इनकी 'देवपुत्र' उपाधि इनके राजत्व के दैवीय सिद्धांत को मानने की सूचक प्रतीत होती है। हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति से इनकी उपाधि 'षाहि–षाहानुषाहि' मिलती है। इसमें 'षाहि' से तात्पर्य इनके राज्य के सामंतों से माना जाता है जबकि 'षाहानुषाहि' से तात्पर्य इनके राज्य के सामंतों से माना जाता है। इसका अर्थ यह भी है कि कुषाण शासक अपनी शासन व्यवस्था को सामंतों व क्षत्रियों की सहायता से चलाते थे। ये शासक की निरंकुशता में विश्वास करते थे। कुषाण साम्राज्य अनेक क्षत्रपियों में विभाजित था, जिनपर महाक्षत्रप अथवा क्षत्रप के माध्यम से कुषाण शासक करते थे। 'विषय' एवं 'भुक्ति' क्षत्रपियों के अन्तर्गत 'जिला' एवं 'मण्डल' के रूप में प्रशासनिक इकाइयाँ थी। कुषाण अभिलेखों में 'मंत्रीपरिषद' के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। 'महादण्डनायक' एवं

'दण्डनायक' सैनिक अधिकारी थे। मथुरा से प्राप्त लेख के अनुसार 'ग्रामिक' गॉव का अधिकारी था जिसका कार्य सम्भवतः कर की वसूली करके केन्द्रीय कोषागार में जमा करवाना होता था। पुरूषपुर (पेशावर), मथुरा, कोशाम्बी, सारनाथ प्रमुख नगर थे।

1.12 सामाजिक व्यवस्था

कुषाणों के आगमन का परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा। इस काल में विदेशी शक्तियों ने तलवार के बल पर भारतीय क्षेत्रों पर अपना शासन स्थापित किया था। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रियों को शासन करने का अधिकार था। तब अपने सामाजिक आधार में वृद्धि करने हेतु एवं अपनी तलवार के बल पर जीती हुई सत्ता की वैद्यता स्थापित करने हेतु इन विदेशी शक्तियों ने स्वयं को परम्परागत वर्ण व्यवस्था में स्थापित करने का प्रयास किया। धीरे–धीरे विदेशी सत्ता की भारत में स्थापना करने वाले इन कुषाण आदि आक्राताओं को 'व्रात्य क्षत्रिय' के रूप में वर्ण व्यवस्था में प्रवेश दे दिया गया।

कुषाण साम्राज्य का विस्तार आक्सस घाटी तक विस्तृत होने के कारण इस काल में पश्चिम से व्यापार में वृद्धि हुई। अनेक नगरों की स्थापना एवं विस्तार हुआ। अनेक व्यापारिक श्रेणियां बनी। ये श्रेणियां कालान्तर में धीरे–धीरे रूढ़ता ग्रहण करती चली गई और पेशेवर जातियों के रूप में प्रकट हुई। व्यापारिक उन्नति के कारण भारतीय समाज के निचले वर्णों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। वैश्य वर्ण जहां समृद्ध हुआ वहीं शूद्रों की दशा में भी सुधार हुआ।

कुषाणकाल के सिक्कों, मूर्तियों, शिल्पों से तत्कालीन वेशभूषा का आभास होता है। यद्यपि यह प्रमाण अल्प मात्रा में ही उपलब्ध है।

1.13 आर्थिक व्यवस्था

कुषाण काल में भारतका मध्य एशिया व पश्चिमीं देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। चीन से पश्चिम की ओर जाने वाले तीनों रेशम मार्गों पर कुषाणों ने नियंत्रण प्राप्त कर लिया था। (1) कैस्पियन सागर से होकर जाने वाला मार्ग, (2) मर्व से फरात नदी होते हुए रूम सागर तक बने बंदरगाह तक जाने वाला मार्ग, (3) भारत से लाल सागर से होकर जाने वाला मार्ग।

इस रेशम व्यापार में भारतीय व्यापारी बिचौलिए का कार्य करते थे। रोम के पार्थियनों से कटु सम्बन्ध होने के बाद अब चीन से यह व्यापार कुषाण साम्राज्य के माध्यम से ही सम्भव हो सका। रोमन–कुषाण मैत्री ने इस व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय व्यापारियों ने रेशम मार्ग के क्षेत्र में अनेक वाणिज्यिक केन्द्र एवं बस्तियां बसाई थी यथा–यारकंद, काश्गर, खोतान, मीरन, कूची, तुरफान इत्यादि। इस व्यापार से भारत को पश्चिम से सोना प्राप्त होता था। प्लिनी ने रोम से भारत को होने वाले इस स्वर्ण हस्तांतरण पर दुख प्रकट किया था, उसने अपने देशवाशियों की इस सम्बन्ध में निंदा की थी। उसके विवरणानुसार रोम भारत से आयात होने वाले वस्तुओं के बदले में प्रतिवर्ष करोड़ों सैस्टर्स भारत को भेजता था। पेरीप्लस ने भी भारत से पश्चिम को भेजे जाने वाले सामानों–मसाले, गजदंत, मलमल, मोती, औषधियाँ, चंदन, इत्र आदि का उल्लेख किया है। निश्चित ही इनके बदले पश्चिम में रोम आदि से सोना भारत को भेजा जाता था।

कुषाणकाल में इस बढ़ते हुए व्यापार की आवश्यकताओं के अनुरूप सिक्कों का प्रचलन भी नियमित रूप से होता रहा था। कुषाणों ने स्वर्ण एवं तांबे के सिक्के चलाये। कनिष्क के काल तक आते–आते विशद मात्रा में स्वर्ण। सिक्के जारी किये गए। कुषाण काल में सिक्कों की शुद्धता अत्यधिक थी। तांबे के सिक्कों का प्रचलन भी वृहद स्तर पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि दैनिक व्यय छोटे लेन–देन हेतु ताँबे के सिक्के प्रयुक्त किये जाते थे। जबकि बड़े लेन–देन एवं विशेष लेन–देन हेतु स्वर्ण सिक्कों का प्रयोग किया जाता था।

इस प्रकार कुषाण काल आर्थिक दृष्टि से समृद्धि एवं व्यापारिक उन्नति का काल था। व्यापारिक प्रगति का ही परिणाम था कि इस काल में नगरों का उदय प्रचुरता से हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापर में प्रगति का एक सुफल यह हुआ था कि देश में आन्तरिक व्यापार भी खूब फूला–फला। स्थानीय स्तर पर कारीगरों, शिल्पियों, व्यवसाइयों ने खूब उन्नति की एवं संगठित होकर अपनी–अपनी श्रेणियाँ बनाई। कुषाण काल की आर्थिक स्थिति के उन्नयन में इन श्रेणियों की विशिष्ट भूमिका दिखाई देती है। कुषाण काल में भू–धारण–अधिकार की 'अक्षयनीवी प्रणाली' भी प्रारम्भ हुई। इसमें भूमि का दान ग्रहण करने वाले को भू–राजस्व का स्थायी रूप से दान कर दिया जाने लगा।

1.14 धर्म

कुषाणों का काल धार्मिक दृष्टि से सहिष्णुता का काल था। इस काल में सिक्कों पर यूनानी, जरथुस्ती, हिन्दू देवी–देवताओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई थीं। बुद्ध धर्म से सम्बन्धित आकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। इससे प्रतीत होता है कि कुषाण राजाओं ने धार्मिक कट्टरता को नहीं अपनाया था। कुजल कैडफिसस के सिक्कों के आधार पर विद्वानों का मत है कि उसने बाद में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। विम कैडफिसेस के सिक्कों पर अंकित उसकी उपाधि 'महीश्वर' तथा शिव व नंदी की आकृतियों के उत्कीर्णन से प्रतीत होता है कि वह शैव मतानुयायी हो गया था।

कनिष्क के सिक्कों से उसके धार्मिक विश्वास की स्पष्टता प्रकट नहीं होती है। इन सिक्कों से उसकी धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है। उसके सिक्कों पर मात्र ग्रीक अक्षर में ही अभिलेख अंकित है। इनपर अनेक यूनानी, ईरानी, हिन्दू देवताओ की आकृतियाँ मिलती हैं। इन पर हिरैक्लीज, सिरापिज, मीइरो (सूर्य), अथ्रो (अग्नि), शिव आदि की आकृतियां अंकित हैं। यद्यपि कुछ सिक्कों पर बुद्ध की भी आकृति मिलती हैं। इन सिक्कों के आधार पर ही बौद्ध ग्रंथों में कनिष्क के बौद्ध होने का दावा किया जाता है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार कनिष्क अपने प्रारम्भिक जीवन में अत्यधिक निर्दयी व क्रूर था किंतु बौद्ध मत में दीक्षित होने के पश्चात उसने इस क्रूरता का सर्वथा त्याग कर दिया था। वास्तव में इन विवरणों में बौद्ध मत की श्रेष्ठता को ही प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया प्रतीत होता है। यद्यपि पुरूषपुर (पेशावर) में प्रसिद्ध चैत्य का निर्माण, बुद्ध की अस्थियों को विशाल स्तूप में रखवाना और चतुर्थ बौद्ध संगति का आयोजन कराना भी उसका बौद्ध होना प्रमाणित करता है। कुषाणकाल में बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया गया था और इससे साम्राज्य की सीमाओं से बाहर चीन व मध्य एशिया में प्रचार करवाया गया था। कुषाणकाल में ही बौद्ध त्रिपटकों को प्रमाणिक रूप से संकलित किया गया तथा विभाषाशास्त्र नामक बौद्ध ग्रन्थ का संकलन हुआ।

धर्म के ऊपर अनेक विस्तृत भाष्य सम्पादित करके उनको ताम्र की चादरों पर खुदवाकर एक स्तूप में सुरक्षित किया गया। कुषाण काल में सिक्कों पर बुद्ध की आकृतियों के अंकन से स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध मत अब अपने मूल स्वरूप से भिन्न स्वरूप अख्तियार करता जा रहा था। अब बुद्ध देवता के रूप में मान्य होने लगे थे। 'महायान' के अन्तर्गत यह स्वरूप स्थापित हो रहा था। अब यह साधारण जनता के लिए अधिक सुलभ हो गया था। इसके साथ–साथ बाहरी तत्वों के भारतीय संस्कृति के साथ समावेश होने से भी बौद्ध मत में महायान सम्प्रदाय अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा था।

1.15 स्थापत्य

कुषाण काल में स्थापत्य कलल के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। सम्राट अशोक की ही भांति कनिष्क भी स्तूपों और नगरों का महान निर्माता था। चीनी यात्री सुंगयुन, फाहयान व हवेनसांग के विवरणों से स्पष्ट है कि कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरूषपर (पेशावर) में 400 फीट ऊचा 13 मंजिलों का एक टॉवर बनाया था। इसी के पास विशाल संघाराम का भी निर्माण करवाया गया था। यह संघाराम कनिष्क के नाम पर ही 'कनिष्क चैत्य' के नाम से प्रसिद्ध था। यहां उत्खनन में मिले अभिलेख के आधार पर पता चलता है कि इसका निर्माण अगिशल अथवा अगेसी–लाओस नामक यूनानी शिल्पी द्वारा किया गया था। राजतरंगिणी के विवरणानुसार कनिष्क ने कश्मीर में कानिसपोर (कनिष्कपुर) तथा तक्षशिला के समीप सिरकप नामक स्थान पर नए नगरों का निर्माण करवाया था।

1.16 कला

कुषाण शासक कला के पोषक सिद्ध हुए। इनके शासन काल में कला के क्षेत्र में गांधार कला शैली व मथुरा कला शैली का विकास हुआ।

1.16.1 गांधार कला

महायान बौद्ध मत के उदय का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि कला के क्षेत्र में एक नई शैली का जन्म हुआ जो गांधार कला शैली नाम से प्रसिद्ध हुई। सांची और भारहूत के अवशेषों से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन बौद्ध मूर्तिकला पूर्वकाल में जातक कथाओं और बुद्ध सम्बन्धी अनेक कहानियों को पत्थर पर उकेरती तो थी परन्तु स्वयं बुद्ध की मूर्ति का प्रादुर्भाव उसमें नहीं हुआ था। उनके लिए प्रतीकों यथा– बौधिवृक्ष, पद चिन्हों, रिक्त आसन अथवा छत्र आदि का प्रयोग किया जाता था। परन्तु महायान मत के प्रसार के साथ बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण किया जाने लगा। इन मूर्तियों का निर्माण का प्रारम्भिक स्थल गांधार प्रांत था, जिसका केन्द्र पुरूषपुर (पेशावर) था। अतः इस कला का नाम भी इस क्षेत्र के नाम पर गांधार कला शैली पुकारा जाता है। इस कला को ग्रीकों रोमन कला अथवा इन्डो–हैलेनिस्टिक कला भी कहा जाता है क्योंकि इस कला की विषय वस्तु तो भारतीय है लेकिन शैली ग्रीक प्रकार की है। इसमें बुद्ध की मूर्ति यूनानी देवता अपोलो के सामन प्रतीत होती है। गांधार कला शैली में सामग्री के रूप में काले स्लेटी पत्थर, चूने एवं पकी मिट्टी का प्रयोग किया जाता था। बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण पदमासन मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा, वरद मुद्रा, अभय मुद्रा में किया जाने लगा। बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूतियों के अतिरिक्त गांधार शैली में हारिति तथा रोमा देवी की मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। 'हारीति' का साम्य मातृदेवी से किया गया है।

1.16.2 मथुरा कला

कुषाण शासन काल में कला के एक अन्य केन्द्र के रूप में मथुरा भी प्रमुख रूप से उभरा। मथुरा कला शैली की मूर्तियों की अपनी विशिष्टाएँ हैं। यह कला शैली गांधार कला शैली से सर्वथा भिन्न है। मथुरा कला–शैली के विषय बौद्ध, जैन तथा ब्राहमण मत से सम्बद्ध है। यद्यपि इस कला शैली का उद्‌भव स्रोत मूलतः भारतीय कला है, फिर भी इस पर यूनानी–रोमन प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। मूर्तिकला में प्राकृतिक सौंदर्य, लोकोतर तथा आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। मूर्ति निर्माण की सामग्री सफेद चित्तिदार लाल बलूआ पत्थर है। मथुरा शैली में शारीरिक सौंदर्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। इस दृष्टि से मथुरा कला आदर्शवादी है। इस कला में कुषाण राजा और सामंतों की मूर्तियां भी बनाई गईं। मथुरा के मटगॉव से कुषाण शासकों यथा–कनिष्क, विम कैडफिसेस की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मथुरा शैली ने गुप्त शैली को प्रभावित किया था।

1.16.3 विद्वानों का आश्रय

कुषाण शासक विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनके काल में सुप्रसिद्ध विद्वान पार्शव, वसुमित्र, अश्वघोष, नागार्जुन, चरक आदि आश्रय पाते थे।

1.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

- झा एवं श्रीमाली– प्राचीन भारत का इतिहास
- के. सी. श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
- बी.बी. सिन्हा– प्राचीन भारत का इतिहास
- की.एन.लूनिया– प्राचीन भारतीय संस्कृति

इकाई दोः कनिष्क प्रथम एवं उसकी उपलब्धियां

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कनिष्क का राज्यारोहण

2.4 कनिष्क का विजय अभियान

2.5 कनिष्क की राजधानी

2.5:1 पूर्वी भारत की विजय

2.5:2 चीन के साथ युद्ध

2.5:3 पश्चिमोत्तर प्रदेश की विजय

2.5:4 दक्षिण भारत पर विजय

2.6 साम्राज्य तथा शासन

2.7 कनिष्क एवं बौद्ध धर्म

2.8 हीनयान तथा महायान

2.9 साहित्यिक प्रगति

2.10 कला और स्थापत्य कला

2.11 गान्धार शैली

2.12 मथुरा कला शैली

2.13 जैन मर्तियां तथा आयागपट्ट

2.14 कनिष्क के सिक्के

2.15 कनिष्क का अंत

2.16 सारांश एवं मूल्यांकन

2.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1: प्रस्तावना

कुषाण वंश का सबसे महत्वपूर्ण प्रतापी एवं महान शासक कनिष्क प्रथम था। वह इतिहास में एक योद्धा, साम्राज्य निर्माता तथा कुशल प्रशासक के रूप में प्रख्यात है। भारतीय इतिहास में उसका महत्व इसलिए और भी बढ़ गया है क्योंकि अशोक के पश्चात् बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान करने वाला सबसे महत्वपूर्ण शासक था। उसके समय में कला, धर्म, साहित्य, विज्ञान एवं वाणिज्य–व्यापार की भी अभूतपूर्व उन्नति हुई।

2.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि,

- कनिष्क का राज्यारोहण एवं विजय अभियान।
- कनिष्क ने किस प्रकार विस्तृत राज्य को सुदृढ़ता प्रदान की।
- कनिष्क ने कला और साहित्य को किस प्रकार संरक्षण प्रदान किया।
- गान्धार और मथुरा शैली का उदय एवं विकास।
- बौद्ध धर्म का संरक्षक एवं प्राश्रयदाता के रूप में कनिष्क।

2.3: कनिष्क का राज्यारोहण

विम कडफिसेस की मृत्यु के पश्चात् कनिष्क कुषाण साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसके राज्यारोहण के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं लेकिन मतभेदों के आधार पर इतिहासकार फर्ग्यूसन, ओल्डेनबर्ग, तामस तथा रैप्सन आदि ने निष्कर्ष निकाला है कि कनिष्क प्रथम शताब्दी ई0 में हुआ और उसी ने वह संवत् चलाया जो 78 ईसवी से प्राप्त होता है। जो आगे चलकर शक संवत् से प्रसिद्ध हुआ। इस तरह 78 ई0 को उसकी राज्यारोहण तिथि स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अधिकतर इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि कनिष्क 78 ई0–101 ई0 या 102 ई0 तक शासक रहा।

2.4: कनिष्क की राजधानी

कनिष्क के सिंहासनरूढ़ के समय कुषाण साम्राज्य बहुत विशाल था व मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा पश्चिमोत्तर भारत में फैला हुआ था। इसलिए सामरिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसने पुरूषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। यह स्थान साम्राज्य के केंद्र में स्थित था। कनिष्क ने पुरूषपुर को श्रेष्ठ स्मारकों, सार्वजनिक भवनों, प्रसादों तथा बौद्ध विहारों से सुसज्जित किया। राजधानी में उसने एक विशाल स्तंभ का निर्माण करवाया जो लकड़ी की 13 मंजिलों से निर्मित था। जिसकी ऊंचाई लगभग 400 फीट थी। उसके ऊपर लोहे का बहुत बड़ा कलश था। यह स्तंभ वास्तव में संसार के आश्चर्यों में गिना जाने योग्य था। इस स्तंभ के समीप ही एक बौद्ध विहार निर्मित किया गया था। पुरूषपुर उसके राज्य के मध्य में होने के कारण यहाँ के सारे राज्यों में नियंत्रण किया जा सकता था।

2.5: कनिष्क का विजय अभियान

कनिष्क एक योद्धा एवं महान विजेता था। उसने अपने पराक्रम एवं शक्ति से कुषाण साम्राज्य को बहुत अधिक विस्तृत किया। उसका युद्ध और विजयों का वर्णन निम्नलिखित है–:

2.5:1: पूर्वी भारत की विजय

वाराणसी के समीप सारनाथ से कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। बिहार तथ उत्तर बंगाल से उसके शासनकाल के बहुसंख्यक सिक्के मिलते हैं। "श्रीधर्मपिटकानिदानसूत्र" के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि, कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह परास्त किया तथा हर्जाने के रूप में एक बहुत बड़ी रकम की माँग की परंतु इसके बदले में वह अश्वघोष लेखक, बुद्ध का भिक्षापात्र तथा अद्भुत मुर्गा पाकर ही संतुष्ट हो गया। पटना और गया से प्राप्त सिक्के से भी स्पष्ट होता है कि, कुषाणसाम्राज्य बिहार तक स्थापित था। बिहार के बंगाल के कई स्थानों जैसे– ताम्रलुक (ताम्रलिप्ति) तथा महास्थान से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार पर निश्चितरूप से कनिष्क का अधिकार सुनिश्चित था। बलिया के खैराड़ी नामक स्थान पर

खुदाई के परिणाम स्वरूप एक अत्यंत समृद्धशाली बस्त का पता चला है। कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाओं की चरण चोटियों पर उत्कीर्ण अभिलेख से कनिष्क के शासन का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी से कनिष्क की एक मोहर भी मिली है। इन प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने उपर्युक्त प्रदेशों में विजय प्राप्त की थी।

2.5:2: चीन के साथ युद्ध

चीनी तुर्किस्तान (मध्य एशिया) के प्रश्न पर कनिष्क तथा चीन के बीच युद्ध छिड़ गया। चीनी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि 73 ई0 से 94 ई0 के बीच चीन का प्रसिद्ध सेनापति पानचाऊ अपने हनवंशी नरेश के आदेशों पर चीनी तुर्किस्तान की विजय हेतु प्रस्तुत हुआ। उसने खोतान, काशगर, कच्छ की विजय की तथा पामीर के उत्तर–पूर्व में चीनी आधिपत्य कायम किया। 88 ई0 तथा 90 ई0 में यू–ची–नरेश (कनिष्क) 70,000 अश्वरोहियों की एक विशाल सुंग–लिन् पर्वत के पार चीनियों से युद्ध के लिए भेजी। चीनी इतिहासकार युद्ध का कारण यह बताते हैं कि कनिष्क ने चीनी सेनापति के पास अपना एक दूत भेजकर हनवंशी राजकुमारी से विवाह की माँग की। पानचाऊ ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इस पर रूष्ट होकर कनिष्क ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी परंतु कनिष्क असफल रहा ओर पानचाऊ ने उसकी सेना को परास्त कर नष्ट–भ्रष्ट कर दिया, कनिष्क की इस असफलता का संकेत एक भारतीय अनुश्रुति है जिसके अनुसार उसने यह घोषित किया था कि, "मैंने उत्तर को छोड़कर अन्य तीन क्षेत्रों को जीत लिया"।

परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, कनिष्क ने शीघ्र अपनी पराजय का बदला पानचाऊ से ले लिया। हुएनसांग हमें बताता है कि "गान्धार प्रदेश के राजा कनिष्क ने प्राचीन काल में भी सभी पड़ोसी राज्यों को जीतकर एक विस्तृत प्रदेश पर शासन किया। सुग–लिंन् पर्वत के पूर्व में भी उसका अधिकार था"। यहाँ सुंग–लिन् के पूर्व के प्रदेश से तात्पर्य चीनी तुर्किस्तान से ही है जिसमें यारकंद, खोतान तथा काशगर सम्मिलित थे। प्रो0 बैली को खोतान से एक पाण्डुलिपि मिली है जिसमें बहलक बैक्ट्रिया के शासक "चंद्र कनिष्क" का उल्लेख हुआ है। इससे भी कनिष्क का खोतान पर अधिकार प्रमाणित होता है। चीनी तुर्किस्तान के अतिरिक्त बैक्ट्रिया, ख्वारिज्म् तथा बुखारा पर भी उसका अधिकार था।

2.5:3: पश्चिमोत्तर प्रदेश की विजय

कनिष्क के शासनकाल में 11वें वर्ष का अभिलेख सुईबिहार से मिला है। इससे प्रमाणित है कि अपने शासन में उसने 11वें वर्ष में निचली सिंधु घाटी को जीत लिया था। इसी वर्ष का एक लेख जेद्दा (पेशावर) से मिला है। कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि हुएनसांग करता है। काबुल के अधिकार के वार्दाक से संवत् 151 तिथि वाला हुविष्क का एक लेख मिलता है जो अफगानिस्तान के ऊपर कुषाण सत्ता को प्रमाणित करता है। यह विजय भी कनिष्क के समय में की होगी। कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि उसका कश्मीर पर अधिकार था। इसके अनुसार उसने यहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया था।

2.5:4: दक्षिण भारत पर विजय

साँची से कनिष्क संवत् 28 का एक लेख मिलता है। यह वासिष्क का है तथा बौद्ध प्रतिमा पर खुदा हुआ है। वासिष्क की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान हमें नहीं है। उसका शासन मात्र चार वर्षों का था।

अतः कहा जा सकता है कि यह भू–भाग कनिष्क द्वारा ही विजित किया होगा। सांची लेख में 'वासु' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा रहा होगा। ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण में कम से कम विंध्य पर्वत तक कनिष्क का साम्राजय विस्तृत था। साँची के अन्य लेख में 'वास' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। वह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा था।

2.6: साम्राज्य तथा शासन

अपनी अनेकानेक विजयों के द्वारा कनिष्क ने अपने लिये एक विशाल साम्राज्य निर्माण किया। उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विंध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में उत्तर प्रदेश एवं बिहार तक विस्तृत था। राजतरंगिणी से जहाँ कश्मीर पर उसका अधिकार सूचित होता है। वहीं सुईविहार तथा साँची के लेख सिंध, मालवा, गुजरात, राजस्थान के कुछ भाग तथा उत्तरी महाराष्ट्र पर उसके अधिकार की पुष्टि करते हैं। यह एक अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्य था। पुरूषपुर (पेशावर) इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी। कनिष्क के शासन प्रबंध के विषय में कम जानकारी है। वह एक शक्ति संपन्न सम्राट था। 'देवपुत्र' की उपाधि से सूचित होता है कि वह अपनी दैवी उत्पत्ति मे विश्वास करता था।

कनिष्क अपने विस्तृत साम्राज्य का निरंकुश शासक था। प्रशासन की सुविधा के लिये उसने साम्राज्य को अनेक क्षत्रपियों में विभाजित किया था। बड़ी क्षत्रपी के शासक को "महाक्षत्रप" तथा छोटी क्षत्रपी के शासक को "क्षत्रप" कहते थे। उसके अभिलेखों में अनेक क्षत्रपों के प्राप्त नामों से प्रतीत होता है कि वह अपने सम्राज्य का शासन क्षत्रपों की सहायता से करता था।

उदाहरण के लिए सारनाथ से प्राप्त लेख में खरपल्लान महाक्षत्रप तथा क्षत्रप वनस्पर का उल्लेख मिलता है। क्षत्रप के पद पर अधिकतर विदेशी व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती थी जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है। कुछ क्षत्रप अनुवांशिक होने के साथ एक ही प्रदेश में दो क्षत्रपों के शासन करने की विचित्र प्रथा का प्रारंभ कुषाणों के समय से ही प्रत्यक्ष होता है। समान्य नागरिकों के समान क्षत्रप भी बुद्ध प्रतिमाओं की स्थापना करते तथा दानादि देते थे। मथुरा संभवतः उसके शासन का मुख्य केंद्र तथा वाराणसी दूसरा प्रशासनिक केंद्र था।

कनिष्क के लेखों में किसी सलाहकारी परिषद का उल्लेख नहीं मिलता। कुषाण लेखों में हम पहली बार "दण्डनायक" तथा "महादण्डनायक" जैसे पदाधिकारियों का उल्लेख पाते हैं संभवतः वह सैनिक अधिकारी थे। ग्रामों के शासन में "ग्रामिक" का वर्णन मिलता है जिसका प्रमुख कार्य राजस्व वसूल करके केंद्रीय कोष में जमा करना होता था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, कनिष्क का शासन अधिकाशतः सैनिक शक्ति पर आधारित था और इसलिये वह स्थायी नहीं हो सका।

2.7: कनिष्क एवं बौद्ध धर्म

कुषाण साम्राज्य मध्य एशिया से पूर्वी भारत तक फैला था। ईसा पूर्व की दूसरी शती से ईसवी सन् दूसरी शती तक की अवधि में भारत के समस्त धार्मिक अवशेषों में बौद्ध धर्म सम्बन्धित अवशेषों की संख्या सर्वाधिक है। भारतीय इतिहास में कनिष्क की ख्याति मात्र उसकी विजयों के कारण ही नहीं,

अपितु शाक्य मुनि के धर्म को संरक्षण प्रदान करने के कारण भी है। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में कनिष्क के बौद्ध मत में दीक्षित होने के ही समान है।

कनिष्क के सिक्कों तथा पेशावर के लेखों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में ही बौद्ध हो गया था। कनिष्क को इस धर्म में दीक्षित करने का श्रेय सुदर्शन नामक बौद्ध आचार्य को दिया जाता है। पेशावर में प्रसिद्ध चैत्य का निर्माण करवाकर उसने इस धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। उसने बौद्ध धर्म के की महायान शाखा को राजाश्रय प्रदान कर उसका प्रचार मध्य एशिया व चीन में करवाया। कनिष्क ने मध्य एशिया में अनेक विहार, स्तूप एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया। तजाकिस्तान से मिली बुद्ध की विशालकाय मूर्तियाँ एवं अवशेष यह सपष्ट करते हैं कि कनिष्क के समय (प्रथम शताब्दी ईसवी) में बौद्ध धर्म उन प्रदशों में विस्तृत हो चुका था। काश्गर, खोतान, कूची, यारकंद, कड़ासहर, तुर्फानर आदि अनेक विहारों में भिक्षु निवास करते थे। यहीं से बौद्ध प्रचारक चीन गये। चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश 65 ई0 में हन सम्राट मिंग ती (57ई0–75ई0) में हुआ। जो कुषाणकालीन राजाओं के समकालीन थे।

कनिष्क के शासनकाल में कश्मीर के "कुण्डलवन" नामक स्थान में बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति का आयोजन किया गया था। उसकी अध्यक्षता प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र ने की थी तथा अश्वघोष उपाध्यक्ष बनाये गये। इसी संगीति में बौद्ध त्रिपिटकों के प्रमाणिक पाठ तैयार हुए तथा "विभाषाशास्त्र" आदि बौद्ध ग्रंथों का संकलन किया गया। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म स्पष्टतः दो संप्रदायों में विभक्त हो गया– (1) हीनयान (2) महायान। कनिष्क ने महायान शाखा को ही राज्याश्रय प्रदान किया तथा स्वदेश एवं विदेश में उसका प्रचार–प्रसार करवाया।

2.8: हीनयान तथा महायान

कुषाणकालीन समय तक बौद्ध मतानुयायियों की संख्या अधिक बढ़ने से अनेक लोग इस धर्म में नवीन विचारों एवं भवनाओं के साथ प्रविष्ट हुये थे। अतः बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप में समयानुसार परिवर्तन लाना जरूरी था। वह रूढ़िवादी लोग जो बौद्ध धर्म के प्राचीन आदर्शों के पक्षधर थे तथा किसी भी प्रकार के परिवर्तन से असहमत थे, ऐसे लोगों का सम्प्रदाय 'हीनयान' कहा गया। हीनयान का शाब्दिक अर्थ है–'निम्न मार्ग' जो केवल भिक्षुओं के लिये संभव था। 'महायान' का अर्थ है– 'उत्कृष्ट मार्ग'। इसमें परसेवा तथा परोपकार पर विशेष बल दिया गया। बुद्ध की मूर्ति के रूप में पूजा होने लगी। यह मार्ग सर्वसाधारण के लिये सुलभ था। इसके द्वारा अधिक लोग मोक्ष प्राप्त कर सकते थे।

हीनयान में जहाँ बुद्ध को महापुरूष, मोक्ष को व्यक्तिवादी धर्म, मूर्तिपूजा व भक्ति में अविश्वास, कठोर साधन पद्धति यदा भिक्षु जीवन, आदर्श "अर्हत" पद को प्राप्त करना जैसे दृष्टिकोणों का परिचय प्राप्त होता है। 'अहर्त' से अर्थ व्यक्ति की अपनी साधना द्वारा निर्वाण प्राप्त करना होता है। वहीं दूसरी ओर महायान में बोधिसत्व, परसेवा व परोपकार में बल, गृहस्थ धर्म, आदर्श बोधिसत्व जैसे दृष्टिकोण है। इसकी माहनता का रहस्य प्राणियों की निस्वार्थ सेवा तथा सहिष्णुता है।

इस प्रकार महायान में व्यापकता एवं उदारता है। जापानी बौद्ध डी0टी0 सुजुकी के शब्दो में "महायान ने बुद्ध की भिक्षाओं के आंतरिक महत्व का खण्डन किये बिना बौद्ध धर्म के मौलिक क्षेत्र को विस्तृत कर दिया"।

यद्यपि कनिष्क बौद्ध हो गया तथापि राजा के रूप में वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। उसके सिक्कों पर बुद्ध की आकृतियों के अतिरिक्त यूनानी, एलमी, मिथ्री, जरथ्रुस्ती तथा हिन्दु–देवी–देवताओं की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण मिलती हैं। इनमें आइशो (शिव), मिइरो (ईरानी मिश्र, सूर्य), माओ (चंद्र), नाना (सुमेरियन मातृ देवी), हेलियोस तथा सेलेनी (यूनानी सूर्य तथा चंद्र) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, यवन–कुषाण शासकों के काल में बौद्ध धर्म उत्तर–पश्चिम तथा देश के अन्य भागों में काफी लोकप्रिय हो गया।

2.9: साहित्यिक प्रगति

कनिष्क कालीन शासन साहित्य की उन्नति के लिये भी प्रसिद्ध है। वह विद्या का उदार संरक्षक था तथा उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वान दार्शनिक निवास करते थे। ऐसे विद्वानों में अश्वघोष सर्वप्रमुख हैं, वह कनिष्क का राजकवि था। उनकी तीन रचनाएँ प्रमुख है–: (1) बुद्धचरित (2) सौदरनंद तथा (3) शारिपुत्रप्रकरण। प्रथम दो महाकाव्य तथा अंतिम नाटक ग्रंथ है। बुद्धचरित में बुद्ध के जीवन का सरल तथा सरस वर्णन मिलता है। सौदरनंद में बुद्ध के सौतेले भाई सुंदरनंद के सन्यास ग्रहण का वर्णन है। इसमें 18 सर्ग है, शारिपुत्रप्रकरण नौ अंकों का नाट्य ग्रंथ है। जिसमें बुद्ध के शिष्य शारिपुत्र के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का नाटकीय विवरण प्रस्तुत किया गया है। कवि तथा नाटककार होने के साथ अश्वघोष एक महान दार्शनिक, कथाकार, नीतिज्ञ तथा संगीतज्ञ भी थे। इस प्रकार चहुमुखी प्रतिभा के कारण विद्वानों ने अश्वघोष की तुलना मिल्टज, गेटे, कान्ट तथा वाल्टेयर आदि से की है।

अश्वघोष के अतिरिक्त माध्यमिक दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन भी कनिष्क की राजसभा में निवास करते थे। उन्होंने "प्रज्ञापारमित्रासूत्र" की रचना की थी। जिसमें शून्यवाद (सापेक्ष्यवाद) का प्रतिपादन हैं। अन्य विद्वानों में पार्श्व, वसुमित्र, मातृचेट, संघरक्ष आदि थे। 'विभाषाशास्त्र' की रचना का श्रेय वसुमित्र को ही जाता है। कनिष्क के ही दरबार में आयुर्वेद के विख्यात विद्वान चरक निवास करते थे। जिन्होंने "चरक संहिता" की रचना की थी। यह औषधिशास्त्र के ऊपर प्राचीनतम रचना है।

इस प्रकार कनिष्क के समय साहित्य चरम सीमा में था। महान विद्वानों को संरक्षण प्रदान करने के कारण वह और अधिक लोकप्रिय हो चुका था।

2.10: कला एवं स्थापत्य

प्रसिद्व कुषाण शासक कनिष्क एक महान निर्माता था, अपनी राजधानी पुरूषपुर में 400 फीट ऊँचा विशाल स्तूप उसने बनवाया था। जिसकी वेदिका 150 फीट ऊँची थी। फाह्यान तथा हुएनसांग दोनों ने इसका विवरण किया है। दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में दो और मूर्तियाँ स्थापित की गयी थी। इसके निकट एक विशाल संघाराम (विहार) बना था जो 'कनिष्क चैत्य' कहा जाता था और संपूर्ण बौद्ध जगत् में प्रसिद्ध था। इसका निर्माण यवन वास्तुकार अगिलस द्वारा किया गया था। अनेक शिखर, भूमि स्तंभ आदि से अलंकृत यह विहार हुएनसांग के भारत आने के कुछ पूर्व ही यह स्तूप जलकर नष्ट हो गया था। आज केवल इसके अवशेष प्राप्त हैं।

तक्षशिला का सबसे महत्वपूर्ण स्तूप धर्मराजिका स्तूप था। अशोक के समय निर्मित इस स्तूप का आकारवर्धन कनिष्क के समय हुआ। यह ऊँचे चबूतरे में गोलाकार हैं। चार दिशाओं में चार सीढ़ियाँ हैं। उल्लेखनीय है कि गान्धार क्षेत्र के स्तूपों का विन्यास मध्य भारतीय स्तूप जैसा नहीं था। इनके चौकोर अधिष्ठान का कई भूमियों में निर्माण होता या जिन पर चढ़ने के लिए एक या अधिक सीढ़ियाँ बनायी जाती थी। ये स्तूप जातक कथाओं की अपेक्षा बुद्धचरित से सम्बन्धित थे। इन पर गान्धार शैली का स्पष्ट प्रभाव था।

स्तूपों के अतिरिक्त कनिष्क के समय में कनिष्कपुर तथा सिरकप (तक्षशिला) नामक स्थान पर नये नगरों का निर्माण करवाया तथा दो स्वतंत्र शैलियों का विकास हुआ।

2.11:गान्धार शैली

यूनानी कला के प्रभाव से देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कला की जिस नवीन शैली का उदय हुआ। उसे गान्धार शैली कहा जाता है। इस शैली में भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया है तथा रोमन कला का स्पष्ट प्रभाव है। इसका विषय केवल बौद्ध है और इसी कारण कभी–कभी इस कला को यूनानी–बौद्ध, इण्डो ग्रीक अथवा ग्रीको रोमन कला भी कहा जाता है। इस शैली की मूर्तियाँ अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के अनेक प्राचीन स्थलों से प्राप्त हुई है। प्रमुख केंद्र गान्धार होने के कारण यह गान्धार कला के नाम से ही लोकप्रिय है।

इस कला के अंतर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों का निर्माण हुआ। मूर्तियाँ स्लेटी पाषाण, चूने तथा पक्की मिट्टी से बनी हैं। ये ध्यान्, पदमासन्, धर्मचक्र प्रवर्तन, वरद तथा अभय आदि मुद्राओं में हैं। आरंभिक बुद्ध मूर्ति पेशावर के पास शाहजी की ढेरी से प्राप्त कनिष्क चैत्य की अस्थिमंजूषा पर बनी है। प्राप्त मंजूषा के ढक्कन पर बुद्ध पदमासन में विराजमान हैं। उसके दायें तथा बाएं तरफ क्रमशः ब्रह्म तथा इंद्र की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बुद्ध के कंधों पर संघाटी तथा ढक्कन के किनारे उड़ते हुए हंसों की पंक्ति हैं। उत्कीर्ण लेख में कनिष्क तथा अगिशल नामक वास्तुकार का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार लाहौर संग्राहलय में रखी गयी एक मूर्ति संरचना एवं शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन मूर्तियों के साथ ही साथ बुद्ध के जीवन तथा पूर्व जन्मों से सम्बन्धित विविध घटनाओं के दृश्यों जैसे–माया का सवप्न, उनका गर्भधारण करना, कपिलवस्तु से लुम्बिनी उद्यान में जाना, बुद्ध का जन्म, सिद्धार्थ का बोधिसत्व रूप, लिपि विज्ञान में सिद्धार्थ की परीक्षा, यशोधरा से विवाह, संबोधि प्राप्त के पहले विविध स्थितियाँ आदि सहित 61 दृश्यों का अंकन इस शैली में किया गया है। इससे सूचित होता है कि शिल्पी ने बुद्ध के लौकिक तथा परलौकिक जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी छोटी–बड़ी घटनाओं को अत्यंत बारीकी के साथ चित्रित किया है। इतना विशद चित्रांकन कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। तपस्यारत बुद्ध का एक दृश्य जिसमें उपवास के कारण उनका शरीर अत्यंत क्षीण हो गया है। गान्धार कला के सर्वोत्तम नमूनों में से है। बोधिसत्व में सबसे अधिक मूर्तियाँ मैत्रेय की है। इन्हें हाथ में कमल, पुस्तक तथा अमृकलश लिये हुए दिखाया गया है। गान्धार शैली की मूर्तियों की कुछ अलग विशेषतायें है जिनके आधार पर वे स्पष्टतः भारतीय कला से अलग की जा सकती है। इनमें वह

सहजता तथा भावात्मक स्नेह नहीं है जो भारहुत, साँची, गया तथा अमरावती की मूर्तियों में प्रत्यक्ष होता है। इसी कारण यह कहा जाता है कि कलाकार के पास यूनानी का हाथ परंतु भारतीय का हृदय था।

बुद्ध तथा बोधिसत्व के अतिरिक्त गान्धार शैली की कुछ देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं। इनमें हारीति तथा रोमा अथवा एथिना देवी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। हारीति को मातृदेवी के रूप में पूजा जाता था तथा वह सौभाग्य तथा धन की अधिष्ठात्री थी। हिन्दू देवी–देवताओं में पंचिक कुबेर, इन्द्र, हारीति, ब्रह्म, सूर्य आदि का चित्रण इस कला में मिलता है। कपिशा (तेग्राम अफगानिस्तान) से अनेक दन्तफलक मिले है जो कभी श्रृंगार पेटियों अथवा रत्नमंजूषाओं के अंग रहे होंगें। इनमें शुक्र क्रीड़ा, हंस क्रीड़ा, नृत्य दृश्य, पानगोष्ठी, उड़ते हुए हंस, दर्पण निहारती आदि सुंदरियों एवं प्रसाधिकाओं की आकृतियां अत्युत्कृष्ट हैं। एक आकृति में बालक को गोद में लेकर स्तनपान कराती हुई नारी प्रदर्शित की गयी है। ये गान्धार शैली की मोहक आकृतियां हैं। जिनमें तत्कालीन समाज के कुलीन तथा सामान्य वर्ग में प्रचलित वेशभूषा की जानकारी मिलती है। इन विविध दृश्यों पर भारतीय तथा रोमन कला, दोनों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस प्रकार गान्धार कला अपने विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय कला का सौन्दर्य विहीन रूप ही प्रतीत होती है। कुमार स्वामी के शब्दों में "गान्धार की यथार्थवादी कला घोर पाखण्ड का आभास देती है क्योंकि बोधिसत्वों की संतुष्ट अभिव्यक्ति तथा किंचित छेलछबीली वेशभूषा एवं बुद्ध मूर्तियों की स्त्रैण और निर्जीव मुद्रायें बौद्ध विचारधारा की आध्यात्मिक शक्ति का प्रकटीकरण नहीं कर पाती है किंतु भारत के बाहर गान्धार कला का व्यापक प्रभाव रहा। इसने चीनी तुर्किस्तान, मंगोलिया, चीन, कोरिया तथा जापान की बौद्ध कला को जन्म दिया"। मार्शल के अनुसार, "गान्धार की पाषाण–कला का प्रारंभ 25ई0–60ई0 के मध्य पह्व शासन काल में हुआ। द्वितीय शती में कुषाण काल में उसका पूर्ण विकास हुआ तथा ससैनियन आक्रमण के परिणामस्वरूप इस कला का चतुर्थ शती ईसवी के प्रारंभ में ह्रास हो गया। कनिष्क काल ही इसके चर्मोत्कर्ष का काल रहा। इस कला के ह्रास के साथ ही उसका स्थान अंत्युत्कृष्ट गचकारी और मृण्मय कला ने ग्रहण कर लिया।

2.12: मथुरा कला शैली

कुषाण काल में मथुरा भी कला का प्रमुख केंद्र था। जहाँ अनेक स्तूपों, विहारों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। इस समय तक शिल्पकारी एवं मूर्ति निर्माण के लिए दूर–दूर तक विख्यात कला दुर्भाग्यवश आज वहाँ शेष नहीं है। प्रारंभ में यह मान्य था कि, गान्धार की बौद्ध मूर्तियों के प्रभाव एवं अनुकरण पर ही मथुरा की बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ किंतु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मथुरा की बौद्ध मूर्तियां गान्धार से सर्वथा स्वतंत्र थी तथा उनका आधार मूल रूप से भारतीय ही था। वी0 एस0 अग्रवाल के अनुसार इस बात के प्रमाण हैं कि, ईसा पूर्व पहली शताब्दी में मथुरा भक्ति आंदोलन का केंद्र बना गया था। जहाँ संकर्षण , वासुदेव तथा पंचवीरों (बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध तथा साम्त्र) की प्रतिमाओं के साथ ही साथ जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं का भी पूर्ण विकास हो चुका था। कनिष्क काल में महायान को संरक्षण प्रदान हुआ। उन्हें बुद्ध को मानव मूर्ति के रूप में देखने की

आवश्यकता प्रतीत हुई और इसी भावना से मथुरा के शिल्पियों ने पहले बोधिसत्व तथा फिर बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया।

मथुरा से कुछ ऐसी बोधिसत्व प्रतिमायें मिली हैं जिन पर कनिष्क संवत् की प्रारंभिक तिथियों में लेख खुदे हैं। इस प्रसंग में एक अन्य विचारणीय बात यह है कि गान्धार मूर्तियों पर जो बौद्ध प्रतिमा लक्षण के चिन्ह जैसे पद्मासन, धान आदि उनका स्त्रोत भारतीय ही है न कि ईरानी तथा यूनानी। सपष्टतः गान्धार के शिल्पकारों ने इन प्रतिमालक्षणों को मथुरा के शिल्पियों से ही ग्रहण किया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्ध मर्तियाँ सर्वप्रथम मथुरा में ही गढ़ी गयी।

मथुरा से बुद्ध एवं बोधिसत्वों की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई प्राप्त मूर्तियों के व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिला है। इसमें कटरा से प्राप्त मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसे चौकी पर उत्कीर्ण लेख में "बोधिसत्व" की संज्ञा दी गयी है। इसमें बुद्ध को भिक्षु वेष धारण किये हुए दिखाया गया एवं बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान है तथा उनका दायां हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है। बुद्ध के पीछे वृत्ताकार प्रभामण्डल प्रदर्शित किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसके पूर्व की मूर्तियों में हमें प्रभामण्डल दिखार्द नहीं देता। इस प्रकार समग्र रूप से यह मूर्ति कलात्मक दृष्टि से अत्यंत प्रशंसनीय है। अभयमुद्रा में आसीन बुद्ध की एक मूर्ति अनयोर से मिली है जिसे बोधिसत्व की संज्ञा दी गयी है। इस पर कनिष्क संवत् 51ई0 अर्थात् 129 ई0 की तिथि अंकित है।

बुद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त मैत्रेय, अवलोकितेश्वर आदि बोधिसत्व–मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त होती हैं। मैत्रेय, भविष्य में अवतार लेने वाले बुद्ध हैं। गान्धार मूर्तियों के विपरीत वे सभी आध्यात्मिकता एवं भावना प्रधान हैं। बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथायें भी स्तंभों पर मिलती हैं। जन्म अभिषेक, महाभिनिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण, कुशलतापूर्वक अंकन मथुरा कला के शिल्पियों द्वारा गया है। ईरानी तथा यूनानी कला के कुछ प्रतीकों को ग्रहण कर उन पर भारतीयता का रंग चढ़ा दिया। यही कारण है कि मथुरा की कुछ बुद्ध मूर्तियों में गान्धार मूर्तियों के लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे कुछ मूर्तियों में मूँछ तथा पैरों में चप्पल दिखाई गयी है।

मथुरा शैली में शिल्पीकारी के भी सुंदर नमूने मिलते हैं। कनिष्क की एक सिरहित मूर्ति मिली है। जिस पर "महाराज राजाधिराजा देवपुत्रों कनिष्कों" अंकित है। यह खड़ी मुद्रा में है तथा 5 फुट 7 इंच ऊँची है। इस श्रेणी की दूसरी मूर्ति वेम तक्षम (विम कडफिसस) की है जो सिंहानुसीन है जिसके आगे दो सिंहों की आकृतियाँ हैं। शिल्प की दृष्टि से इसे सम्राट का यथार्थ रूपांकन कहा जा सकता है।

मथुरा शैली में हिंदू देवताओं में विष्णु, सूर्य, शिव, कुबेर, नाग, यक्ष की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। जो अत्यंत सुंदर एवं कलापूर्ण हैं। मथुरा तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से अब तक चालीस से भी अधिक विष्णु मूर्तियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। इन मूर्तियों में उल्लेखनीय है कि विष्णु का लोकप्रिय प्रतीक पद्म मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियों में नहीं मिलता। मात्र वाराह अवतार की एक प्रतिमा तथा कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित दो दृश्यांकन मिले हैं। शिव प्रतिमायें लिंग तथा मानव दोनों रूपों में मिलती हैं। शिवलिंग कई प्रकार के हैं जैसे–एक मुखी, दो मुखी, चार मुखी, पाँच मुखी आदि। शिव के साथ उनकी

अर्धांगिनी पार्वती की प्रतिमा पहली बार संभवतः मथुरा में ही कुषाण कलाकारों द्वारा बनायी गयी थी। मथुरा कला में सूर्य प्रतिमाओं का भी निर्माण किया। मानव रूप में सूर्य को लंबी कोट, पतलून तथा बूट पहने हुए दो या चार घोड़ों के रथ पर सवार दिखाया गया है। उनके सिर पर गोल तथा चपटी टोपी कंधों पर लहराते केश तथा मुहँ पर नुकीली मूँछे दिखायी गयी हैं। इसी प्रकार की वेशभूषा कुषाण राजाओं में प्रत्यक्ष होती है। हिंदू धर्म के इन प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त मथुरा की कुषाणकालीन कला में कार्तिकेय, कुबेर, इन्द्र, गणेश, अग्नि आदि की मूर्तियाँ भी बनायी गयी।

2.13: जैन मूर्तियां तथा आयागपट्ट

मथुरा तथा उसके समीपवर्ती भाग से जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो अत्यंत सुंदर एवं कलापूर्ण हैं। जैन मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं– खड़ी मूर्तियाँ जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा बैठी हुई मूर्तियाँ जो पद्मासन में है। खड़ी मुद्रा (कायोत्सर्ग) की मूर्तियाँ पूर्णतया नग्न हैं। उनकी भुजायें घुटनों के नीचे तक फैली हुई हैं तथा भौहों के बीच केश कुंज बनाया गया है। तीर्थकर प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर "श्रीवत्स" का पवित्र मांगलिक चिन्ह अंकित है। इसके अतिरिक्त कंकाली टीला से आयागपट्ट तथा पूजापट्ट मिलते है जिनका कला की दृष्टि से काफी महत्व हैं। आयागपट्टों से प्रतीक पूजा से मूर्तिपूजा का विकास क्रम सूचित होता है।

इस प्रकार मथुरा के कलाकारों का दृष्टिकोण, असाम्प्रदायिक था और उन्होंने बौद्ध, जैन तथा हिन्दू सभी के लिये उपयोगी प्रतिमाओं को प्रस्तुत किया। अग्रवाल के शब्दों में "अपनी मौलिकता, सुंदरता और रचनात्मकता विविधता एवं बहुसंख्यक सजृन के कारण मथुरा कला का पद भारतीय कला में बहुत ऊँचा है"। यहाँ की बनी मूर्तियाँ सारनाथ, श्रावस्ती तथा अन्य केंद्रों में गयी। मथुरा की कलाकृतियां वैदेशिक प्रभाव से मुक्त हैं तथा इस कला में भारहुत और साँची की प्राचीन भारतीय कला को ही आगे बढ़ाया है।

2.14: कनिष्क के सिक्के

कनिष्क के बहुसंख्यक स्वर्ण एवं ताम्र सिक्के पश्चिमोत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त किये गये हैं। स्वर्ण सिक्के तौल में रोमन सिक्कों (लगभग 124 ग्रेन) के बराबर हैं। स्वर्ण सिक्कों का विवरण इस प्रकार है।

मुख भाग–: खड़ी मुद्रा में राजा की आकृति है। वह लम्बी कोट, पायजामा, नुकीली टोपी पहने हुए हैं तथा दायें हाथ से वह हवन–कुण्ड में आहुति दे रहा है। ईरानी उपाधि के साथ यूनानी लिपि में 'शाओ नानो शाओ कनिष्क कोशानो' मुद्रालेख अंकित है। 'शाओ नानो शाओ' से तात्पर्य "शहंशाह" से है।

पृष्ठ भाग–:विभिन्न देवी–देवताओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। ये यूनानी, भारतीय तथा ईरानी देव समूह से लिये गये हैं। प्रत्येक सिक्के पर एक ही देवता तथा नीचे उसका नाम उत्कीर्ण है। नाम यूनानी भाषा में है, जैसा– मिइरो (सूर्य), मेओ (चंद्र), आरलेग्नो, नाना, आरदोक्षो (देवी) आदि।

ताम्र सिक्के–:यह गोलाकार हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है–:

मुख भाग–:कनिष्क की आकृति तथा मुद्रालेख "बेसिलियस बेसेलियन" उत्कीर्ण है, यह यूनानी उपाधि से तात्पर्य "राजाओं के राजा" से है।

पृष्ठ भाग–ःयूनानी, ईरानी अथवा भारतीय देवी–देवताओं की आकृति तथा यूनानी भाषा में उसका नाम उत्कीर्ण है।

इस प्रकार कनिष्क के सिक्कों का प्रसार जहाँ एक ओर उसके साम्राज्य विस्तार को सूचित करता है। वहीं दूसरी ओर उन पर उत्कीर्ण देवी–देवताओं की आकृतियों से उसकी धार्मिक सहिष्णुता सूचित होती है। इस प्रकार कनिष्क ने सभी वर्गों के लोगों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त किया था।

2.15: कनिष्क का अंत

कनिष्क के अंतिम दिनों के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद में उसकी मृत्यु सम्बन्धी जो अनुश्रुति सुरक्षित है। उससे पता चलता है कि उसकी अतिशय लोलुपता, निर्दयता तथा महत्वकांक्षा से प्रजा में भारी असंतोष फैल गया। निरंतर युद्धों के कारण उसके सैनिक तंग आ गये तथा उसके विरूद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। एक बार जब वह उत्तरी अभियान पर जा रहा था, मार्ग में बीमार पड़ा। उसी समय उसके सैनिकों ने लिहाफ से उसका मुँह ढूंढकर मुग्दरों से पीटकर उसे मार डाला यद्यपि इस कथा को पूर्ण रूप से सच नहीं कहा जा सकता तथापि यह निष्कर्ष निकलता है कि इस महान कुषाण सम्राट का अंत दुखद रहा।कनिष्क ने कुल 23 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन किया। यदि हम उसके राज्यारोहण की तिथि 78 ई0 मानें तो तदानुसार उसकी मृत्यु 101 ईसवी लगभग में हुई।

2.16: सारांश एवं मूल्यांकन

कुषाणकालीन राजाओं में कनिष्क की उपलब्धियों को देखते हुए भारतीय इतिहास के साथ–साथ विश्व इतिहास में भी इस सम्राट की गिनती महान सम्राटों में की जा सकती है। वह एक महान विजेता, साम्राज्य–निर्माता तथा विद्या एवं (कला–कौशल) का उदार संरक्षक था। गंगाघाटी में एक साधारण क्षत्रप के पद से उठकर उसने अपनी विजयों द्वारा सम्पूर्ण विश्व के महान राजाओं में अपना स्थान बना लिया। वह कुशल सेनानायक, सफल प्रशासक हाने के साथ धर्म सहिष्णु भी था। अशोक के समान उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने साम्राज्य के साधनों को लगा दिया। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में उसका वही स्थान है जो दक्षिणी बौद्ध परंपराओं में अशोक का। वह कभी भी धर्मान्ध अथवा धार्मिक मामलों मे असहिष्णु नहीं हुआ और अन्य धर्मों का भी सम्मान किया। इस प्रकार कनिष्क में चंद्रगुप्त जैसी सैनिक योग्यता तथा अशोक जैसी धार्मिक भावना देखने को मिलती है। इस युग में गान्धार एवं मथुरा शैली के उदय एवं विकास ने कनिष्क की उपलब्धियों पर चार चाँद लगा दिये।

2.17: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कनिष्क के विजय अभियान का वर्णन कीजिए।
2. कनिष्क के कलात्मक रूचि पर एक लेख लिखिए ।
3. कनिष्क के काल में साहित्य एवं कला के विकास की व्याख्या की कीजिए ।
4. बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए कनिष्क द्वारा किये गये कार्यों का मून्यांकन कीजिए ।
5. गान्धार और मथुरा शैली के उदय एवं विकास का परिचय दीजिए ।

2.18: सन्दर्भ ग्रन्थ

- झा एवं श्रीमाली– प्राचीन भारत का इतिहास
- के. सी. श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
- बी.बी. सिन्हा– प्राचीन भारत का इतिहास

इकाई तीनः कुषाण साम्राज्य का विस्तार

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 कुषाणों का प्रसार

3.3 कुजुल कडफिसस

3.4 विम कडफिसस

3.5 सोटर मेगस

3.6 कनिष्क

3.6.1 तिथि सम्बन्धी समस्या

3.6.2 पूर्वी भारत की विजय

3.6.3 पार्थिया से संघर्ष तथा सफलता

3.6.4 चीन से युद्ध

3.6.5 पश्चिमोत्तर प्रदेशों की विजय

3.6.6 दक्षिण भारत

3.6.7 रोम से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध

3.6.8 कनिष्क का विस्तृत साम्राज्य

3.6.9 कनिष्क का अंत

3.6.10 कनिष्क और सांस्कृतिक विस्तार

3.7 कनिष्क के उत्तराधिकारी

3.7.1 वासिष्क

3.7.2 हुविष्क

3.7.3 कनिष्क द्वितीय

3.7.4 वासुदेव

3.8 परवर्ती कुषाण

3.8.1 कनिष्क तृतीय

3.8.2 वासुदेव द्वितीय

3.9 सारांश

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

कुषाणकाल भारतीय इतिहास के एक ऐसे युग–प्रवर्तककाल का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मौर्योत्तर भारत में सर्वप्रथम एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसका प्रभाव, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के साथ–साथ मध्य एशिया तथा ईरान तक प्रसारित हुआ। अरब सागर से हिन्द महासागर तक फैला कुषाण साम्राज्य अपने उत्कर्ष काल में प्राचीन विश्व के रोम पर्शिया तथा चीन जैसे तीन बड़े साम्राज्यों के समकक्ष था। इसके अतिरिक्त मौर्य–साम्राज्य के पतन के पश्चात् हुए विदेशी आक्रमणों में कुषाणों का स्थान प्रमुख रहा। उन्होंने विदेशों से भारत के सम्बन्ध स्थापित किए और भारतीय संस्कृति को गम्भीरता से प्रभावित किया।

हूणों द्वारा पश्चिमी चीन से निकाले जाने के पश्चात् यू–ची जाति बैक्ट्रिया और ऑक्सस नदी की घाटी में बस गयी जिसको उसने शकों से जीता था। यहाँ पर रहते हुए यू–ची जाति पाँच भागों में विभक्त हो गई। इन्हीं में से एक शाखा कुषाण थी।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- कुषाण साम्राज्य और कुषाणों का प्रसार
- कनिष्क से पूर्व कुषाण वंश के शासक और उनका साम्राज्य विस्तार
- कनिष्क और उसका साम्राज्य विस्तार
- कनिष्क के उत्तराधिकारी और उनका साम्राज्य
- परवर्ती कुषाण और उनका पतन

3.2 कुषाण साम्राज्य का विस्तार
कुषाणों का प्रसार

चीनी स्रोतों से पता चलता है कि 174 तथा 165 ई0पू0 के बीच यू–ची त्सेन–होंग देश तथा कि–लियेन पर्वत अथवा तिएनचान पहाड़ी के मध्य इसिकुल झील के दक्षिण–पूर्व चीनी तुर्किस्तान में रह रहे थे जिन्हें हूणों ने पराजित करके बहिष्कृत कर दिया। यह घटना लगभग 165 ई0पू0 की है। ये शरण स्थल की तलाश में पश्चिम की ओर बढ़े। कालान्तर में ये लोग दो जत्थों में बंट गए। इनका अल्पसंख्यक जत्था दक्षिण की ओर मुड़ा और तिब्बत की सीमा पर जाकर बस गया। इसे लघु यू–ची के नाम से प्रसिद्धि मिली। दूसरा बड़ा जत्था जिसे महान यू–ची नाम दिया गया है, पश्चिम की ओर बढ़ा और शकों पर विजय प्राप्त की। शकों को विवश होकर अपने प्रदेश छोड़ने पड़े। यू–ची का इनके प्रदेशों पर अधिकार हो गया। इसी पराजय के पश्चात् शक उत्तरी दर्रों के मार्ग से भारत की आरे बढ़े थे। इस नवविजित भू–भाग से यू–ची पश्चिम की ओर बढ़ते हुए ऑक्सस घाटी में पहुँचे। यहाँ इन्होंने इस प्रदेश के निवासियों को बड़ी आसानी से पराजित कर दिया। यहीं से इन्होंने अपना वर्चस्व ऑक्सस के दक्षिण बैक्ट्रिया पर भी स्थापित कर लिया। इनकी राजधानी ऑक्सस के उत्तर वर्तमान बुखारा (प्राचीन सोग्डियाना) में स्थापित की गयी।

बैक्ट्रिया में स्थायी रूप से बसना यू–ची जाति के लिए बड़ा कारगर सिद्ध हुआ। इससे इन्हें न केवल अपने राजनीतिक विकास का सुयोग मिला, बल्कि सांस्कृतिक विकास करने का भी उचित वातावरण मिल गया। इस प्रदेश में आने से पूर्व ये भ्रमणशील तथा अर्द्धसभ्य थे लेकिन यहाँ आने पर इन्हें बैक्ट्रिया की यूनानी सभ्यता, सुदूर पश्चिम में स्थित पार्थियन सभ्यता तथा रोमन सभ्यताओं के संपर्क में आने का अवसर मिला। इनकी अपनी कोई व्यक्तिगत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नहीं थी। अतः इन सभ्यताओं के उदीयमान तत्वों को ग्रहण एवं आत्मसात करने में इन्होंने तनिक भी संकोच न किया। परिणामस्वरूप यू ची भी एक सभ्य जाति के रूप में उभरकर सामने आए। अगले सौ वर्षों का कुषाणों का इतिहास अन्धकार के गर्त में विलीन हो जाता है। कालान्तर में कुजुल कडफिसस से ही कुषाणों का स्वतन्त्र इतिहास प्रारम्भ होता है।

3.3 कुजुल कडफिसस

यह इतिहास में कडफिसस के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। उसकी विजयों के विषय में यान–कू के ग्रंथ हाऊ–हान–शू तथा उसके सिक्कों से सूचना मिलती है। ज्ञात होता है उसने पार्थियनों पर आक्रमण कर किपिन तथा काबुल पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का शासक बन बैठा। कुजुल के दो प्रकार के सिक्के मिलते हैं, प्रथम प्रकार के सिक्कों के मुखभाग पर काबुल के अंतिम यवन शासक हर्मियस का नाम यूनानी लिपि में तथा पृष्ठभाग पर कुजुल का नाम खरोष्ठी लिपि में खुदा हुआ है। इन पर इसकी कोई राजकीय उपाधि नहीं है। दूसरे प्रकार के सिक्कों पर उसकी राजकीय उपाधियां जैसे 'महाराजस महतसू कुषण–कुयुस कफस' उत्कीर्ण है। इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रारम्भ में कुजुल यवन नरेश हर्मियस के अधीन शासक था। परन्तु बाद में वह स्वतन्त्र हो गया। हर्मियस के पश्चात् काबुल क्षेत्र में पल्हवों की सत्ता कायम हुई। ऐसा लगता है कि पल्हवों को परास्त कर ही कुजुल ने काबुल और कंधार पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार कुजुल के समय में कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा गंधार के प्रदेश सम्मिलित हो गए थे। साधारणतः कुजुल का शासन काल 15 ई0 से 65 ई0 के बीच माना जाता है। उसकी मृत्यु 80 वर्ष की दीघार्यु में हुई थी।

3.4 विम कडफिसस

कुजुल कडफिसस की मृत्यु के पश्चात् विम कडफिसस राजा हुआ। वह कडफिसस द्वितीय के नाम से भी जाना जाता है। चीनी ग्रंथ 'हाऊ–हान–शू' से पता चलता है कि उसने 'तिएन चू' की विजय की तथा वहाँ अपने एक सेनापति को शासन करने के लिए नियुक्त किया। 'तिएन–चू' का समीकरण सिंधु द्वारा सिंचित पंजाब क्षेत्र से स्थापित किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम विम कडफिसस के समय में ही भारत में कुषाण सत्ता स्थापित हुई थी। विम कडफिसस ने स्वर्ण तथा तांबे के सिक्के खुदवाये थे। इन पर यूनानी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों में लेख मिलते हैं। सिक्कों का विस्तार पश्चिम में ऑक्सस–काबुल घाटी से लेकर पूर्व में सम्पूर्ण सिंधु क्षेत्र तक है। कुछ सिक्के भींटा, कौशाम्बी, बक्सर तथा बसाढ़ से मिले हैं। सिक्कों की पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में 'महाराजस राजाधिराजस सर्वलोगइश्वरस महिश्वरसं विम कडफिसस त्रतरस' (महाराज राजाधिराज सर्वलोकेश्वर महेश्वर विम कडफिसस त्राता) उत्कीर्ण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि वह एक

शक्तिशाली राजा था। सिक्कों पर शिव, नन्दी तथा त्रिशूल की आकृतियाँ मिलती हैं। इससे उसका शैव मतानुयायी होना भी सूचित होता है। उसने 'महेश्वर' की उपाधि धारण की थी। उसके विशुद्ध स्वर्ण सिक्कों से साम्राजय की समृद्धि एवं सम्पन्नता सूचित होती है। प्लिनी के विवरण से पता चलता है कि उसके समय में भारत तथा रोम के व्यापारिक सम्बन्ध अत्यन्त विकसित थे। चीन के साथ भी उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। मथुरा के पास माट नामक स्थान से सिंहासन पर विराजमान एक विशाल मूर्ति मिली है जिस पर 'महाराज राजाधिराज देवपुत्र कुषानपुत्र षहि वे्म–तक्षम' लेख खुदा हुआ है। काशी प्रसाद जायसवाल इस लेख को विम कडफिसस का बताते हैं। यदि यह समीकरण स्वीकार कर लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि उसके समय में कुषाण साम्राज्य मथुरा तक फैला था। विम कडफिसस ने संभवता 65 ई0 से 78 ई0 तक शासन किया।

3.5 सोटर मेगस

पंजाब, कंधार तथा काबुल घाटी क्षेत्र में अनेक ऐसे सिक्के मिले हैं जिनमें 'सोटर मेगस' की उपाधि वाले किसी अज्ञात शासक के अस्तित्व का पता चलता है। इस शासक की पहचान सुनिश्चित नहीं है। कुछ विद्वान इसे विम कडफिसस ही मानते हैं। यह भी हो सकता है कि वह विम कडफिसस का राज्यपाल था जो तक्षशिला में शासन करता था और विम की मृत्यु के पश्चात् वह कुछ समय के लिए स्वतन्त्र हो गया तथा इसी बीच उसने अपने नाम के सिक्के चलवा दिये। कनिष्क के उदय के साथ उसकी स्वतन्त्रता का अन्त हो गया।

3.6 कनिष्क : कुषाण शक्ति का चरमोत्कर्ष

सम्राट कनिष्क एक महान भारतीय सम्राट था। इस समय तक कुषाण भारतीय समाज एवं संस्कृति का अंग बन गए थे और स्वयं कनिष्क कुषाण सम्राट विम कडफिसस के पूर्वी भारतीय साम्राज्य का प्रांतपति अथवा 'क्षत्रप' था। कनिष्क के समय का ज्ञान प्राप्त करने के सबसे प्राचीन साधन उत्तर–प्रदेश से प्राप्त हुए हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कनिष्क कुषाण साम्राज्य के पूर्वी भाग का क्षत्रप था। विम कडफिसस की मृत्यु के पश्चात् उसके क्षत्रपों में परस्पर संघर्ष हुआ और उसमें कनिष्क विजयी हुआ। इस प्रकार कनिष्क का सम्बन्ध आरम्भ से ही भारत से रहा और उसने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर–प्रदेश से ही प्रारम्भ किया। इस कारण, उसे एक भारतीय सम्राट मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

3.6.1 तिथि सम्बन्धी समस्या

कनिष्क की तिथि के बारे में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। मजूमदार के अनुसार कनिष्क 248 ई0 में सिंहासन पर बैठा, भण्डारकर के अनुसार यह तिथि 278 ई0 थी। परन्तु इतिहासकारों द्वारा इनमें से किसी भी तिथि को मान्यता नहीं दी गयी है। इतिहासकार मार्शल, स्मिथ, बोनो आदि ने कनिष्क के सिंहासन पर बैठने का समय 125 ई0 या 144 ई0 बताया। परन्तु चीनी और तिब्बती स्रोतों तथा कनिष्क के समकालीन अन्य भारतीय सम्राटों की तिथियों पर विचार करते हुए इतिहासकारों ने जिस प्रकार मजूमदार और भण्डारकर के विचार को नकार दिया है उसी प्रकार इन पाश्चात्य विद्वानों के विचार को भी अस्वीकृत किया है। विद्वान फर्गुसन, राखलदास बनर्जी, रेप्सन, ओल्डेनवर्ग आदि ने कनिष्क के सिंहासनारोहण की तिथि 78 ई0 बतायी है। उनके अनुसार कनिष्क 78 ई0 से शक संवत

का प्रवर्तक था। चूंकि इस संवत का प्रयोग पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपों ने, जो पहले कनिष्क की अधीनता स्वीकार करते थे, अपने लेखों तथा सिक्कों में चतुर्थ शती से अंत तक किया, अतः उनके साथ निरन्तर सम्बद्ध रहने के कारण इस संवत् को बाद में शक–संवत् कहा गया।

कनिष्क की तिथि की समस्या पर विचार करने के लिये 1913 तथा 1960 ई0 में लंदन में दो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये गये। द्वितीय सम्मेलन में आम सहमति 78 ई0 के पक्ष में ही बनी। इसके समापन भाषण में ए.एल. बाशम ने कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई0 रखने के पक्ष में एक नया तर्क प्रस्तुत किया। इसके अनुसार कनिष्क की तिथि 78 ई0 न मानने की स्थिति में यह बता सकना कठिन होगा कि गांधार तथा पंजाब में किस संवत् का प्रचलन था। हमें सम्पूर्ण उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम भारत में, जो दीर्घकाल तक शक–कुषाणों की अधीनता में थे, शक संवत् के प्रचलन का प्रमाण मिलता है।

3.6.2 पूर्वी भारत की विजय

वाराणसी के पास सारनाथ से कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष का अभिलेख प्राप्त हुआ है। बिहार तथा उत्तर बंगाल से उसके शासन काल के बहुत सिक्के मिले हैं। 'श्रीधर्मपिटकनिदानसूत्र' के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह पराजित किया तथा हर्जाने के रूप में एक बड़ी रकम की मांग की। परन्तु इसके बदले में वह अश्वघोष लेखक, बुद्ध का भिक्षा–पात्र तथा एक अद्भुत मुर्गा पाकर ही संतुष्ट हो गया। स्पूनर ने पाटलिपुत्र की खुदाई के दौरान कुछ कुषाण सिक्के प्राप्त किये थे। सिक्कों का एक ढ़ेर बक्सर (जिला–भोजपुर) से मिला है। वैशाली तथा कुम्रहार से भी कुषाण सिक्के मिलते हैं। बोधगया से हुविष्क के समय का मृण्मूर्तिफलक मिला है। ये सब बिहार पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि करते हैं। बिहार के आगे बंगाल के कई स्थानों, जैसे– तामलुक (ताम्रलिप्ति) तथा महास्थान से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। दक्षिण–पूर्व में उड़ीसा प्रांत के मयूरभंज, शिशुपालगढ़, पुरी गंजाम आदि से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। किन्तु मात्र सिक्कों के प्रसार से ही कनिष्क के साम्राज्य–विस्तार का निष्कर्ष निकाल लेना युक्तिसंगत नहीं लगता। सिक्के व्यापारिक प्रयोजन से भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाए जाते थे। तथापि पूर्वी उत्तर–प्रदेश तथा बिहार पर कनिष्क का अधिकार सुनिश्चित है। हाल ही में काशी हिन्दू विश्वविद्याल के, के.के. सिन्हा तथा बी.पी. सिंह के निर्देशन में बलिया जिले के खैराडीह नामक स्थान पर खुदाई की गयी है। जिसके परिणामस्वरूप एक अत्यन्त समृद्धिशाली कुषाणकालीन बस्ती का पता चला है। घाघरा नदी के तट पर स्थित यह नगर एक प्रमुख व्यापारिक स्थल रहा होगा। इससे भी पूर्वी उत्तर–प्रदेश पर कुषाणों का अधिपत्य प्रमाणित होता है।

कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से प्राप्त बुद्ध प्रतिमाओं की चरण–चोटियों पर उत्कीर्ण अभिलेखों में कनिष्क के शासनकाल का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी से कनिष्क की एक मुहर भी मिली है। इन प्रमाणों से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने उपर्युक्त प्रदेशों की विजय की थी।

3.6.3 पार्थिया से संघर्ष तथा सफलता

पार्थिया साम्राज्य और कुषाण साम्राज्य की सीमाएं एक दूसरे से मिली हुईं थीं। पार्थिया का एरियाना–प्रदेश इस समय कुषाणों के अधिकार में था। स्वभाविक था कि पार्थिया अपने इस प्रदेश को

पुनः हस्तगत करने का अवसर खोज रहा होगा। शत्रुता का दूसरा कारण व्यापारिक था। व्यापारिक दृष्टिकोण से बैक्ट्रिया की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। यहाँ से भारत मध्य एशिया, चीन आदि को व्यापारिक मार्ग जाते थे। बैक्ट्रिया के ऊपर कनिष्क का अधिकार था। यहाँ से जाने वाले व्यापारिक मार्गों पर भी उसका प्रभाव था। यह प्रभाव पार्थिया को खलता था। अपनी समृद्धि के लिए वह मध्य एशिया के व्यापारिक मार्गों को अपने अधिकार में लेना चाहता था। इन दोनों कारणों से पार्थिया और कनिष्क का युद्ध हुआ। इसका साक्ष्य हमें चीनी साहित्य से मिलता है। चीनी साहित्य का कथन है कि नान–सी के राजा ने देवपुत्र कनिष्क पर आक्रमण कर दिया, परन्तु इस युद्ध में उसे सफलता न मिली। कनिष्क ने उसे परास्त कर दिया। नान–सी का समीकरण पार्थिया से किया जाता है।

3.6.4 चीन से युद्ध

जिस समय भारत में कनिष्क का राज्य था, उसी समय चीन में हान वंश का राजा था। यह बड़ा शक्तिशाली और साम्राज्यवादी राजवंश था। उसके सेनापति पान–चाओ ने खोतान, काशगर, कुचा काराशहर आदि को जीतकर सम्पूर्ण चीनी तुर्किस्तान को चीनी अधिकार में कर लिया था। अब उसके साम्राज्य की सीमा कनिष्क–साम्राज्य के कश्मीर प्रांत की सीमा को छूने लगी थी। चीनियों की इस साम्राज्यवादी नीति से भारत के कुषाण साम्राज्य के लिए एक भारी खतरा उत्पन्न हो गया था। अतः कनिष्क ने उसे रोकने का निश्चय किया। चीनी तुर्किस्तान को लेकर चीन साम्राज्य तथा कुषाण साम्राज्य के बीच झगड़ा पहले से चल रहा था। चीनी ग्रंथों का कथन है कि 73 ई0 में पान–चाओ ने काशगर की घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप किया और उसके राजा को सिंहासन से उतार कर अपने समर्थक को वहाँ का राजा बनाया। सिंहासनाच्युत राजा ने यू–ची राजा से सहायता मांगी। परन्तु उसे यह सहायता प्राप्त न हो सकी, क्योंकि पान–चाओ ने यू–ची राजा को बहुमूल्य उपहार आदि देकर संतुष्ट कर दिया और उसे चीनी तुर्किस्तान की राजनीति में हस्तक्षेप न करने दिया। चीनी ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ काल पश्चात् कनिष्क ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए निश्चित कदम उठाये। उसने चीनी सम्राट के समक्ष अपनी समानता स्थापित करने के लिए यह प्रस्ताव रखा कि चीनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया जाय। परन्तु चीनी सेनापति पान–चाओ ने इस प्रस्ताव को अपने सम्राट के लिए अपमानजनक समझा और कनिष्क के राजदूत को बन्दी बना लिया। यह सूचना पाते ही कनिष्क ने चीन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उस पर आक्रमण के लिए 70,000 अश्वारोहियों को भेजा। परन्तु शीत और पर्वतीय मार्ग की कठिनाईयों के कारण सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। क्षत–विक्षत अवस्था में जब वह खोतान पहुँची तो उसे पान–चाओ ने हरा दिया। इस पराजय के पश्चात् कनिष्क को प्रतिवर्ष चीन को कर देने का वचन देना पड़ा।

कनिष्क की इस पराजय के समर्थन में एक जनश्रुति का भी उल्लेख किया जाता है जिसमें कनिष्क कहता है कि 'मैंने तीनों दिशाओं को अधीन कर लिया है।..... केवल उत्तरी प्रदेश ही आत्मसमर्पण के लिए नहीं आया है।

परन्तु हेव्नसांग के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क ने अपनी पराजय का बदला ले लिया। हेव्नसांग ने लिखा है कि कनिष्क का साम्राज्य सुंग–लिंग पर्वत के पूर्व में भी विस्तृत था और

पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियाँ उससे भयभीत हो गयीं तथा उन्होंने अपने राजकुमारों को कनिष्क के दरबार में बंधक के रूप में भेज दिया। सुंग–लिंग के पूर्व के प्रदेश का अर्थ है चीनी तुर्किस्तान जिसमें यारकन्द, खोतान और काशगर स्थित हैं। पीली नदी के पश्चिम की जातियों से तात्पर्य चीनी लोगों से है। इस प्रकार हेव्नसांग के वर्णन से यह निष्कर्ष लगाया जा सकता है कि कनिष्क ने चीनी साम्राज्य पर दूसरी बार आक्रमण किया था और चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया था। विजय के परिणामस्वरूप पश्चिम में कनिष्क का साम्राज्य यारकन्द, खोतान और काशगर तक हो गया। पराजित चीनी सम्राट अथवा उसके किसी सामंत शासक ने कनिष्क की सभा में अपने पुत्रों को बंधक के रूप में रखा था।

यह भी उल्लेखनीय है कि कनिष्क के दूसरे आक्रमण और उसकी विजय का वर्णन एकमात्र हेव्नसांग ने ही किया है। इसलिए अनेक विद्वान इस वर्णन का विश्वसनीय नहीं मानते। टामस का कहना है कि पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियों का अर्थ तारिम प्रदेश के राजाओं से है। ये राजा चीनी सम्राट की साम्राज्यवादी नीति से भयभीत थे। अतः वे स्वयं कनिष्क के संरक्षण में आ गये थे।

3.6.5 पष्चिमोत्तर प्रदेषों की विजय

कनिष्क के शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष का अभिलेख सुई बिहार से मिला है। इससे यह प्रमाणित होता है कि अपने शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष में उसने निचली सिंधु घाटी को जीत लिया था। इसी वर्ष का एक लेख जेद्दा (उन्द–पेशावर) से मिला है। कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि हेव्नसांग करता है। काबुल के वार्दाक से शक संवत् 151 तिथि वाला हुविष्क का एक लेख मिला है जो अफगानिस्तान के ऊपर कुषाण सत्ता को प्रमाणित करता है। यह विजय भी कनिष्क के समय में ही की गयी होगी। कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि उसका कश्मीर पर अधिकार था। इसके अनुसार उसने यहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया था।

3.6.6 दक्षिण भारत

सांची से कनिष्क संवत् 25 का एक लेख मिला है। यह वासिष्क का है तथा बौद्ध प्रतिमा पर खुदा हुआ है। वासिष्क की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान हमें नहीं है। उसका शासन मात्र चार वर्षों का था। अतः कहा जा सकता है कि यह भू–भाग कनिष्क द्वारा ही विजित किया गया होगा। सांची लेख में 'वासु' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा रहा होगा। ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण में कम से कम विंध्य पर्वत तक कनिष्क साम्राज्य विस्तृत था।

3.6.7 रोम से मैत्रीपूर्ण संबंध

इस समय रोम साम्राज्य और पार्थिया साम्राज्य के बीच शत्रुता थी और पार्थिया कुषाण साम्राज्य का भी शत्रु था। अतः स्वभाविक रूप से कुषाण और रोम साम्राज्य के बीच मधुर सम्बन्ध थे। हालांकि भारत तथा रोम के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कनिष्क के बहुत पहले से स्थापित हो गये थे। कनिष्क के समय में इन्हें और प्रगाढ़ होने का अवसर मिला। भारतीय रत्न, रेशमी वस्त्र तथा मसाले रोम जाने लगे तथा इसके बदले भारत में प्रचुर मात्रा में स्वर्ण आने लगा जिसके परिणामस्वरूप कनिष्क के समय में प्रचुर मात्रा में स्वर्ण मुद्राएं प्रवर्तित की गयीं।

3.6.8 कनिष्क का विस्तृत साम्राज्य

अपनी अनेकानेक विजयों के द्वारा कनिष्क ने अपने लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। उसके विभिन्न लेखों तथा सिक्कों के आधार पर हम उसकी साम्राज्य सीमा का निर्धारण कर सकते हैं। कनिष्क का साम्राज्य गंधार, कश्मीर, सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, नेपाल, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी भारत में फैला था। भारतीय सीमा से संलग्न उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत तथा भारत से बाहर यह साम्राज्य अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया तथा मध्य एशिया में यारकन्द, खोतान तथा काशगर तक विस्तृत था। गांधार पर कनिष्क के प्रभाव की पुष्टि चीनी यात्री हेव्नसांग तथा चीनी स्रोतों से होती है। गांधार तत्कालीन कला का सुप्रसिद्ध केन्द्र था। कश्मीर पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि राजतरंगिणी से होती है, जिसमें उसके द्वारा कश्मीर में कनिष्कपुर नामक नगर की स्थापना का उल्लेख मिलता है। कनिंधम इस नगर की स्थिति श्रीनगर से 16 किमी. दक्षिण पीर–पंचाल दर्रा के राजमार्ग पर स्वीकार करते हैं। वर्तमान में इसे कामपुर सराय के नाम से जाना जाता है। इसके विपरीत स्टीन तथा स्मिथ इसे वितस्ता तथा बारामूल से श्रीनगर जाने वाले मार्ग के बीच स्थित मानते हैं। कनिष्क द्वारा कश्मीर पर अधिकार की पुष्टि चतुर्थ बौद्ध संगीति के आयोजन से भी हो जाती है। इस संगीति का आयोजन कश्मीर के कुण्डलवन विहार में किया गया था। चीनी बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि कनिष्क ने किसी साधु के दर्शनार्थ किपिन (कश्मीर) की यात्रा की थी। सिंध के उत्तर बहावलपुर से लगभग 24 किमी. दक्षिण–पश्चिम स्थित सुई–बिहार से कनिष्क का एक ताम्रपत्र लेख मिला है जिस पर 11 वर्ष (89 ई0) तिथि अंकित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिंध पर कनिष्क का अधिकार था। पंजाब पर कनिष्क के अधिकार का समर्थन जेदा तथा मणिकियाल लेखों से हो जाता है। टॉलमी हमें बताता है कि पूर्वी पंजाब कुषाणों के अधिकार में था। उत्तर प्रदेश पर इसके अधिकार की पुष्टि अनुश्रुतियों तथा लेखों के बहिरंग साक्ष्यों से होती है। तिब्बती अनुश्रुतियों से पता चलता है कि कनिष्क ने साकेत पर आक्रमण किया था और वहाँ का राजा पराजित हुआ था। सारनाथ के मूर्तिलेख 81 ई0 से ज्ञात होता है कि महाक्षत्रप खरपल्लान एवं क्षत्रप वनस्पर वाराणसी में प्रान्तीय शासक नियुक्त थे। कनिष्क के दूसरे तथा चौथे वर्ष के लेख क्रमशः कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से मिले हैं। मथुरा में माट नामक स्थान से उसके शासनकाल के तेइसवें वर्ष का एक लेख मिला है और मुद्रायें उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ तथा गोरखपुर से भी मिली हैं। श्रावस्ती जिले के सहेत–महेत से कुषाण मुद्राओं का ढ़ेर उपलब्ध हुआ है। जिसमें 105 मुद्रायें मिली हैं। मुद्राओं तथा लेखों के अतिरिक्त कनिष्क के समय की बहुत सी मूर्तियां, मथुरा, श्रावस्ती, सारनाथ, कौशाम्बी आदि स्थलों से मिली हैं।

धर्मापिटकनिदानसूत्र में कनिष्क के पाटलिपुत्र पर आक्रमण तथा वहाँ के शासक की पराजय का उल्लेख किया गया है। यह कनिष्क के पाटलिपुत्र पर अधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। कुछ विद्वान इसे सही नहीं मानते। जैसे राधाकृष्ण चौधरी का विचार है कि बौद्ध परम्पराओं से इतना तो निश्चित हो जाता है कि अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था तथा बौद्ध संगीति में सम्मिलित भी हुआ था, किन्तु पाटलिपुत्र पर कनिष्क का आक्रमण हुआ अथवा नहीं, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु यदि कनिष्क के सिक्के इस भू–भाग से न मिले होते तो बौद्ध परम्परा में संदेह की पर्याप्त गुंजाइश

थी। लेकिन हम जानते हैं कि कनिष्क की मुद्रायें पटना, वैशाली, राजगीरि आदि से मिली हैं जो इस भू–भाग में इसके प्रत्यक्ष अधिकार को प्रतिबिम्बित करती हैं। कनिष्क का साम्राज्य बिहार तक सीमित न रहा अपितु इसकी धुर पूर्वी सीमा बंगाल तक पहुँच गयी थी। कनिष्क की दो मुद्रायें पश्चिमी बंगाल से मिली हैं। सुधाकर चट्टोपध्याय का विचार है कि संभव है कनिष्क ने पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण किया हो, किन्तु सफलता न मिली हो।

उत्तर प्रदेश के साथ–साथ कनिष्क का शासन उड़ीसा पर भी माना जाता है। आर0डी0 बनर्जी के अनुसार उड़ीसा की परम्पराओं में जिस विदेशी आक्रमण का जिक्र है उसका सम्बन्ध कनिष्क से ही है। कुषाण शासकों की मुद्रायें मयूरभंज, गंजाम तथा पुरी से मिली हैं, किन्तु यह भी सत्य है मात्र मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर उड़ीसा पर कनिष्क का अधिपत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि मुद्राऐं व्यापारिक गतिविधियों द्वारा भी पहुँच सकती हैं। कनिष्क संवत् का प्रयोग नेपाल में लिच्छवि करते थे। इस आधार पर नेपाल पर कनिष्क के अधिकार का अनुमान होता है। किन्तु डी0सी0 सरकार संवत् प्रयोग को अधिकार का द्योतक नहीं मानते। मध्य प्रदेश पर कनिष्क के अधिकार का समर्थन अभिलेखिक एवं मौद्रिक साक्ष्यों से हो जाता है। मध्य प्रदेश के विदिशा के निकट सांची (जिला–रायसेन) से वासिष्क का एक बौद्ध प्रतिमा लेख मिला है जिस पर 28 वर्ष (160 ई0) तिथि अंकित है। वासिष्क का शासनकाल बहुत कम केवल चार वर्ष था, अतः उससे इस भू–भाग की विजय की उम्मीद करना व्यर्थ है। अतः लगता है, यह भू–भाग उसे पैतृक साम्राज्य के रूप में ही मिला होगा। सांची से प्राप्त एक लेख में वसु कुषाण नामक शासक का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कोई कुषाण वंशीय राजकुमार था, जिसे पूर्वी मालवा का गवर्नर नियुक्त किया गया। कनिष्क के छत्तीसगढ़ पर अधिकार की पुष्टि मुद्राओं से भी हो जाती है। कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों की मुद्रायें छत्तीसगढ़ के विलासपुर तथा अन्य स्थलों से मिली हैं। सांची से मथुरा कला शैली की बहुत सी प्रतिमाएं मिली हैं। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के कुछ भागों पर कनिष्क का प्रभुत्व था।

पश्चिमी मालवा, दक्षिणी राजस्थान, गुजरात एवं काठियावाड़ पर क्षहरात वंशीय क्षत्रप शासन कर रहे थे। इनका प्रथम ज्ञात शासक भूमक था, जो कनिष्क का समकालीन था। रैप्सन तथा भण्डारकर ने संभावना व्यक्त की है कि भूमक तथा उसका उत्तराधिकारी नहपान, कुषाणों के अधीन था। लेवी का विचार है कि कनिष्क का शासन उत्तरी–पश्चिमी दकन पर भी था। वह 'पेरिप्लस ऑफ द इरीथ्रियन सी' में उल्लिखित सैण्डनीज का तादात्मय चन्द्र या चन्दन से करते हैं जो चीनी 'चेन–तन' का संस्कृत रूपान्तर तथा कनिष्क की उपाधि है।

भारतीय सीमा से बाहर कनिष्क का साम्राज्य मध्य एशिया, बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान तथा उत्तरी–पश्चिमी प्रांतों में विस्तृत था। मध्य एशिया पर कनिष्क के स्वामित्व की बात चीनी यात्री हेव्नसांग के विवरण द्वारा सिद्ध हो जाती है, जिसके अनुसार कनिष्क को चीन के विरूद्ध सफलता मिली थी। इस सफलता के फलस्वरूप उसका यारकन्द, खोतान तथा काशगर पर अधिकार स्थापित हो गया था। बैक्ट्रिया पर कुषाणों का अधिपत्य कनिष्क के पहले ही स्थापित हो गया था। अतः यह उसे

पैतृक साम्राज्य के अंग रूप में मिला था। इसका कोई प्रमाण नहीं कि कनिष्क के हाथ से बैक्ट्रिया निकल गया था। खोतान से प्राप्त एक पांडुलिपि में चन्द्र कनिष्क का उल्लेख बाल्हक के शासक के रूप में किया गया है। विद्वानों का विचार है कि चन्द्र कनिष्क कुषाण वंशीय कनिष्क ही है तथा बाल्हक से तात्पर्य बैक्ट्रिया से है। अफगानिस्तान पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि अप्रत्यक्ष साक्ष्य से भी हो जाती है। काबुल से लगभग 45 किमी पश्चिम खवात (वार्दाक) से हुविष्क का एक अभिलेख मिला है। इस पर शक संवत् 51 अर्थात् 129 ई0 तिथि अंकित है। इससे पता चलता है कि हुविष्क का अफगानिस्तान पर अधिकार था। प्रश्न है, क्या इसे हुविष्क ने जीतकर कुषाण साम्राज्य में मिलाया था ? किन्तु इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा। अतः इस भू–भाग पर हुविष्क को पैतृक अधिकार मिला होगा। इस प्रकार अफगानिस्तान कनिष्क के समय से ही कुषाण साम्राज्य में था। उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त में कनिष्क के स्वत्व का प्रमाण स्वयं इसकी राजधानी है, जो पुरूषपुर या पेशावर में स्थित थी।

3.6.9 कनिष्क का अन्त

कनिष्क के अंतिम दिनों के बारे में किसी निश्चित जानकारी का अभाव है। संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद में जो अनुश्रुति सुरक्षित है उससे पता चलता है कि अतिशय लोलुपता, निर्दयता तथा महात्वाकांक्षा से प्रजा में भारी अंसतोष फैल गया। निरन्तर युद्धों के कारण उसके सैनिक तंग आ गए तथा उसके विरूद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। एक बार जब वह उत्तर अभियान पर जा रहा था, मार्ग में बीमार पड़ा। उसी समय उसके सैनिकों ने लिहाफ से उसका मुँह ढँककर मुग्दरों से पीटकर उसे मार डाला। यह कथा कहाँ तक सही है– यह नहीं कहा जा सकता तथापि इससे ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि इस महान कुषाण सम्राट का अन्त दुःखद रहा। कनिष्क ने कुल 23 वर्षों तक राज्य किया। यदि हम उसके राज्यारोहण की तिथि 78 ई0 मानें तो तदनुसार उसकी मृत्यु 101 ई0 के लगभग हुई।

कनिष्क की उपलब्धियों को देखते हुए हम उसे भारतीय इतिहास के महान सम्राटों में स्थान दे सकते हैं। वह एक महान विजेता, साम्राज्य–निर्माता तथा विद्या एवं कला कौशल का उदार संरक्षक था। गंगाघाटी के एक साधारण क्षत्रप के पद से उठकर उसने अपनी विजयों द्वारा एशिया के महान राजाओं में अपना स्थान बना लिया। वह एक कुशल सेनानायक तथा सफल प्रशासक था। अशोक के समान उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने साम्राज्य के साधनों को लगा दिया। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में उसका वही स्थान है जो दक्षिणी बौद्ध परम्पराओं में अशोक का। वह कभी भी धार्मिक मामलों में असहिष्णु नहीं हुआ। इस प्रकार कनिष्क में चन्द्रगुप्त मौर्य जैसी सैनिक योग्यता तथा अशोक जैसा धार्मिक उत्साह देखने को मिलता है। उसने मध्य तथा पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रवेश का द्वार खोल दिया।

3.6.10 कनिष्क और सांस्कृतिक विस्तार

कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और साम्राज्य के संसाधनों को उसने इसके प्रसार में लगा दिया। उसके समय में कश्मीर में चौथी बौद्ध संगति हुई। इसी अवसर पर बौद्ध धर्म की महान शाखा महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ। कनिष्क की प्रेरणा से भारत में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा में वृद्धि

हुई और बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, मध्य–एशिया तथा जापान जैसे दूरस्थ देशों में हुआ। इसी समय अजन्ता के गुफा–चित्रों का निर्माण आरम्भ हुआ। परन्तु विशेष प्रगति मूर्तिकला में हुई। गांधार में यूनानी कला से प्रभावित गांधार शैली का विकास हुआ। इसी युग में मथुरा मूर्तिकला शैली और दक्षिण भारत में अमरावती मूर्ति–कला शैली का विकास हुआ। इसके साथ ही भारत में सुन्दरतम् तथा भावनात्मक मूर्तियों के निर्माण का युग आरम्भ हुआ।

3.7 कनिष्क के उत्तराधिकारी

3.7.1 वासिष्क

कनिष्क का उत्तराधिकारी वासिष्क था। उसका एक लेख मथुरा से और दूसरा सांची से प्राप्त हुआ है। प्रथम लेख की तिथि 24 तथा द्वितीय की 28 है। दोनों ही तिथियां शक–संवत् की हैं। परन्तु उसकी मुद्राएं प्राप्त नहीं हुई हैं। राजतरंगिणी में एक जुष्क का उल्लेख है। जिसने जुष्कपुर नामक एक नगर की स्थापना की थी। सम्भवतः यह जुष्क वासिष्क ही था। उसका राज्य कम से कम मथुरा से सांची तक था।

3.7.2 हुविष्क

वासिष्क के पश्चात् हुविष्क सिंहासन पर बैठा। यह अधिक शक्तिशाली प्रतीत होता है। इसके अनेक सिक्के एवं अभिलेख प्राप्त हुए हैं। गया अभिलेख से प्रकट होता है कि इसका राज्य बिहार तक विस्तृत था। मथुरा में इसकी मुद्राऐं मिली हैं। राजतरंगिणी के अनुसार इसने कश्मीर में हुविष्कपुर नामक नगर की स्थापना की थी। वर्दक–अभिलेख से काबुल–प्रदेश पर उसका अधिपत्य सिद्ध होता है। परन्तु कोई भी साक्ष्य ऐसा नहीं मिला है जिससे सिंध के ऊपर उसका अधिपत्य सिद्ध हो सके। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः रूद्रदामन ने सिंध प्रदेश कुषाणों से छीन लिया था। हुविष्क की तिथियां 26 से 60 तक मिली हैं। इससे प्रकट होता है कि कम से कम उसने 138 ई0 तक राज्य किया था। संभवतः वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने मथुरा में एक बौद्ध विहार का निर्माण कराया था। उसकी मुद्राओं पर ईरानी, यूनानी और भारतीय देवी–देवताओं के चित्र हैं। भारतीय देवताओं में स्कन्द, शिव, विशाख, गणेश और विष्णु विशेषतः उल्लेखनीय हैं। ये मुद्राएं उसकी धार्मिक सहिष्णुता की ओर संकेत करती हैं। अधिकांश मुद्राऐं बड़ी ही सुडौल और कलात्मक हैं।

3.7.3 कनिष्क द्वितीय

आरा अभिलेख में एक कनिष्क का उल्लेख है। इसकी तिथि 41 है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह कनिष्क कौन था। लूडर्स, फलीट और स्टेन कोनो आदि विद्वानों का मत है कि यह कनिष्क प्रथम से भिन्न था। अतः इसे कनिष्क द्वितीय की संज्ञा दी गई है। संभव है कि इसने हुविष्क के साथ राज्य किया हो। उसने महाराज, राजधिराज, देवपुत्र और कैसर नामक उपाधियाँ धारण कीं।

3.7.4 वासुदेव

हुविष्क के पश्चात् वासुदेव कुषाण साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। इसकी तिथियां 67 से 98 कनिष्क संवत् तक मिलती हैं। इससे प्रकट होता है कि कम से कम इसने 176 ई0 तक राज्य किया। इसके सिक्के और लेख मात्र पंजाब और उत्तर प्रदेश में ही मिले हैं। इससे प्रकट होता है कि उसके समय तक अफगानिस्तान, कश्मीर, सिंध व मालवा के प्रदेश कुषाण साम्राज्य से निकल चुके थे। इस

प्रकार वह मात्र भारतीय राज्य का ही शासक रह गया था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी उसका पूर्णतः भारतीयकरण हो गया था। यह सत्य उसके नाम से ही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त उसकी मुद्राओं पर शिव और नन्दी की आकृतियां खुदी हुईं हैं, जिससे प्रतीत होता है कि वह शैव था।

वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् कुषाण वंश की अवनति की गति तीव्रतर हो गई। एक–एक करके उसके अधीन प्रदेश स्वतन्त्र होने लगे। भारत के पश्चिम और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में शकों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किए। उत्तरी भारत में नाग–भारशिवों, यौधेयों तथा मालवों आदि वंशों की शक्ति बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप क्षीण कुषाण राज्य पूर्णतः विलुप्त हो गया।

3.8 परवर्ती कुषाण

वासुदेव के बाद कुषाणों का इतिहास अंधकारपूर्ण हैं सिक्कों से कुछ कुषाण राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं, जिन्होंने द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तृतीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासन किया। इन्हें परवर्ती अथवा उत्तर–कुषाण कहा गया है।

3.8.1 कनिष्क तृतीय

परवर्ती कुषाण शासकों में सर्वप्रथम वासुदेव के बाद हमें एक तीसरे कनिष्क का पता चलता है जिसने संभवतः 180 से 210 ईसवी तक राज्य किया। बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान, गंधार, सीस्तान, पंजाब आदि से उसके बहुसंख्यक सिक्के मिलते हैं जो इस बात की सूचना देते हैं कि उसने दीर्घकाल तक शासन किया था। सतलुज के पूर्व से उसके सिक्के नहीं मिलते। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अब कुषाणों का शासन मथुरा अथवा उत्तर प्रदेश से समाप्त हो गया था। कनिष्क तृतीय के शासनकाल के अन्त तक कुषाण राज्य केवल पंजाब, कश्मीर, सीस्तान, अफगानिस्तान तथा बैक्ट्रिया तक ही सीमित रहा।

कनिष्क तृतीय के सिक्कों पर उसके कुछ प्रांतीय क्षत्रपों के नामांश प्राप्त होते हैं, जैसे 'वासु', 'विरू', 'मही' आदि। अल्तेकर महोदय ने इन्हें वासुदेव, विरूपाक्ष तथा महीश्वर बताया है। वासुदेव सम्भवतः उसका पुत्र था तथा विरूपाक्ष और महीश्वर उसके भाई रहे होंगे। वासुदेव सीस्तान में तथा विरूपाक्ष एवं महीश्वर क्रमशः पंजाब और अफगानिस्तान में क्षत्रप थे। क्षत्रपों के हिन्दू नाम से स्पष्ट है कि इस समय तक कुषाणों के भारतीयकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। सिक्कों पर क्षत्रपों का नाम उनके बढ़ते हुए प्रभाव का द्योतक है।

3.8.2 वासुदेव द्वितीय

अल्तेकार के अनुसार कनिष्क तृतीय के बाद वासुदेव द्वितीय राजा हुआ। वह कनिष्क तृतीय का पुत्र था। शिव तथा नन्दी प्रकार के सिक्के, जिन पर 'वासु' नाम उत्कीर्ण है, बैक्ट्रिया तथा अफगानिस्तान से मिले हैं। इससे पता चलता है कि उसका अधिकार इसी क्षेत्र में था तथा सीस्तान और पंजाब में उसके राज्यपाल स्वतन्त्र हो गये थे। उसने सम्भवतः 210 ई0 से 230 ई0 तक राज्य किया।

वासुदेव द्वितीय के समय तक कुषाण साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। इस काल में भारत में अनेक जातियों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। मथुरा तथा पद्मावती में नागवंशों का उदय हुआ। नागवंश के अतिरिक्त यौधेय, मालव, कुणिन्द आदि गणराज्यों ने भी अपनी

स्वतन्त्रता घोषित कर दी। पश्चिमोत्तर सीमाओं पर ईरान के ससैनियन राजाओं के आक्रमण प्रारम्भ हुए। अब यह सिद्ध हो चुका है कि ससैनियों द्वारा पराजित कुषाण नरेश वासुदेव द्वितीय ही था, न कि वासुदेव प्रथम। उसके सिक्के वासुदेव प्रथम से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उन पर यूनानी का अधिक विकृत रूप मिलता है, मोनोग्राम भिन्न है तथा क्षत्रपों के नामांश भी अंकित हैं। ससैनियनों ने वासुदेव द्वितीय को परास्त कर उसके शिव तथा नन्दी प्रकार के सिक्कों को ग्रहण कर लिया। इन सिक्कों को ससैनियन–कुषाण–सिक्के कहा जाता है। इनके अग्रभाग ससैनियन तथा पृष्ठ भाग परवर्ती कुषाण सिक्कों की भांति हैं। चीनी दरबार में 230 ई0 में जो राजदूत भेजा गया था उसे सम्भवतः वासुदेव द्वितीय ने ही भेजा था। यह कुषाण वंश का अंतिम ज्ञात शासक प्रतीत होता है। इसके पश्चात् धीरे–धीरे भारतवर्ष में कुषाण साम्राज्य नष्ट होने लगा तथा उसका गौरव और महत्वपूर्ण स्थान खो सा गया। इनके स्थान पर अन्य वंशों और सत्ताओं का उदय हुआ।

3.9 सारांश

शकों को दक्षिण की ओर यू–ची लोगों ने धकेला था। एक चीनी स्रोत में लिखा है कि उनके कुजुल कडफिसस नामक सरदार ने पांचों यू–ची कबीलों को एक सूत्र में बांधा और अपने नेतृत्व में उन्हें उत्तरी पर्वतों को लांघकर पश्चिमोत्तर भारत में ले आया, उसने बैक्ट्रिया में अपनी सत्ता प्रतिष्ठित की और अपना नियंत्रण काबुल और कश्मीर तक फैलाया। इस प्रकार उसने कुषाण राज्य की स्थापना की और कनिष्क ने इसे अपने उत्कर्ष पर पहुँचाया। कुषाण राज्य में मध्य एशिया के काशगर तक के प्रदेशों के शामिल होने से वह एक ऐसा विस्तृत राज्य बन गया जिसमें साम्राज्य के सभी तत्व विद्यमान थे। ऐसा लगता है कि कुषाण साम्राज्य ने भारत, चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया एवं मध्य एशिया को एक सूत्र में पिरो लिया हो। कुषाणों के माध्यम से इन क्षेत्रों के मध्य नए व्यापारिक एवं सांस्कृतिक आयाम स्थापित हुए। इन सम्बन्धों से आर्थिक समृद्धि बढ़ी। संपर्क के क्षेत्रीय विस्तार तथा लोगों के पारस्परिक सम्मिश्रण के फलस्वरूप अनेक धर्मों को राज–संरक्षण प्राप्त हुआ। उत्तर के बौद्धों ने कनिष्क को अपना संरक्षण बताया और बौद्ध सिद्धांत के स्पष्टीकरण के लिए आयोजित चौथी बौद्ध संगीति से उसे संबद्ध दिखाया। महायान सम्प्रदाय के राज्य प्रश्रय से मूर्ति कला शैलियों का विकास अपने चरम तक पहुँचा। कुषाण राजाओं ने भारत में मुद्रा निर्माण के क्षेत्र में भी नए युग का सूत्रपात किया। कनिष्क के काल में कुषाण शक्ति अपने चरम पर पहुँचती है। कनिष्क ने मध्य तथा पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रवेश का द्वार खोल दिया।

कालांतर में कुषाण शक्ति का धीरे–धीरे क्षय होने लगा। इसका कारण एक ओर तो यह था कि उनके मुकाबले में ईरान की उदीयमान ससानी शक्ति खड़ी हो गई थी और दूसरी ओर उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान के हठी गणसंघ कुषाण शक्ति को घुन की तरह खाने लगे थे। साथ ही साथ कुषाणों की विलक्षणता भी धीरे–धीरे तिरोहित होती चली गई और कुषाण वंश इतिहास के गर्त में विलीन हो गया।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कुषाण कौन थे ? सम्राट कनिष्क की सैनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. कनिष्क से पूर्व कुषाण साम्राज्य विस्तार पर चर्चा कीजिए।

3. भारत से बाहर कुषाण साम्राज्य के विस्तार पर एक निबन्ध लिखिए।

4. परवर्ती कुषाण कौन थे ? भारत में इनके साम्राज्य पर एक लेख लिखिए।

5. कुषाण शासकों के मध्य एशिया से सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

6. कुषाण वंश के राजनीतिक इतिहास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

7. कनिष्क एक साम्राज्य निर्माता था। आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं ?

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
2. रोमिला थापर – पूर्वकालीन भारत (प्रारम्भ से 1300 ई0 तक)
3. डी.एन. झा और के.एम. श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास
4. विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1
5. हेमचन्द्र रायचौधरी – प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास
6. आर.एन. पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
7. एल.पी. शर्मा – प्राचीन भारत